सांसों का आपातकाल

भारत के दमघोंटू वायु प्रदूषण को समझने और उसे भूलने की दास्तान

Slow Murder Continues_Hindi.indd 2 16/07/25 11:25 AM

सांसों का
आपातकाल

भारत के दमघोंटू वायु प्रदूषण को समझने और उसे भूलने की दास्तान

सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट

सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट (सीएसई) की स्थापना 1980 में हुई थी। नई दिल्ली में स्थित यह संगठन जनहित से जुड़े मुद्दों का अनुसंधान एवं पैरवी करता है। सीएसई का शोध टिकाऊ और न्यायसंगत विकास की वकालत करता है।

यह पुस्तक सीएसई द्वारा तीन दशकों से अधिक समय तक किए गए अनुसंधान और रिपोर्टिंग पर आधारित है। इस रिपोर्ट में निम्न व्यक्तियों का योगदान रहा है:
अनुमिता रॉयचौधरी, अनिल अश्विनी शर्मा, अविकल सोमवंशी, आदित्य मिश्रा, भागीरथ, कालेब फिलिप, दाक्षीयाणी पलीचा, हिमांशु नितनवरे, जयंत बासु, ज्योति कुमारी, किरण पांडेय, किमी कोलनी, कल्याणी टेंभे, एमपी जॉर्ज, मौशुमी मोहंती, मोहम्मद इमरान खान, नंदिता बनर्जी, प्रीथा बनर्जी, पुलाहा रॉय, राजित सेनगुप्ता, राजू सजवान, रोहिणी कृष्णमूर्ति, रिचर्ड महापात्रा, ऋचा पांडेय, सुनीता नारायण, स्निग्धा दास, शगुन, शांभवी शुक्ला, शरनजीत कौर, शुभम श्रीवास्तव, सायन रॉय, सत्येंद्र सार्थक, विभा वार्ष्णेय, विवेक मिश्रा और जुंबिश

पुस्तक में उल्लिखित व्यक्तियों और अधिकारियों के पदनाम मूल रिपोर्ट के समय के हैं

आवरण डिजाइन: अजीत बजाज
डिजाइन: अजीत बजाज, चैतन्य चंदन
ग्राफिक्स: तरुण सहगल, विनीत त्रिपाठी
प्रोडक्शन: राकेश श्रीवास्तव, गुंधर दास
संपादन : भागीरथ

भारत में प्रथम प्रकाशन: 2025
प्रकाशक: सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट (सीएसई)
41, तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली – 110062
फोन: 91–11–40616000
फैक्स: 91–11–26085879
ईमेल: cse@cseindia.org, वेबसाइट: www.cseindia.org

© 2025 सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट। सभी अधिकार विश्वभर में सुरक्षित हैं। किसी भी रूप में पुनरुत्पादन निषिद्ध है

सीएसई की अन्य पुस्तकों
के बारे में जानने के लिए
क्यूआर कोड स्कैन करें

अनुक्रमणिका

08 भूमिका : मां के गर्भ से प्रदूषण से जंग की शुरुआत

10 राहत की सांस नहीं

28 स्वास्थ्य आपातकाल : अमिट काले धब्बे

55 एक समान नहीं असर

81 दिल्ली : जन-संहार के पीछे की राजनीति

102 हर सेकंड जुड़ते वाहन

125 इलेक्ट्रिक वाहनों की ओर

141 राष्ट्रीय प्राथमिकता

164 अनुलग्नक

Slow Murder Continues_Hindi.indd 6 16/07/25 11:25 AM

पर्यावरण का प्रबंधन दो सिद्धांतों पर आधारित है। एक है संतुलन सिद्धांत और दूसरा एहतियाती सिद्धांत। अब व्यापक रूप से माना जाता है कि आर्थिक विकास, पर्यावरणीय समस्याएं पैदा करता है। इसलिए, राज्य को आर्थिक विकास को बढ़ावा देते हुए पर्यावरणीय सद्भाव के साथ संतुलन बिठाने के लिए अपनी विनियामक और राजकोषीय शक्तियों का उपयोग करना चाहिए। अगर आप जल्द ही कैंसर से मरने वाले हों तो मोटर वाहन रखने और उसमें घूमने का क्या औचित्य है? दूसरा सिद्धांत मांग करता है कि यह संतुलन कार्रवाई पर्यावरणीय क्षति शुरू होने से पहले की जानी चाहिए, उसके बाद नहीं।

अनिल अग्रवाल

"स्लो मर्डर, द डेडली स्टोरी ऑफ व्हीकलर पॉल्यूशन इन इंडिया", 1996

Slow Murder Continues_Hindi.indd 7 16/07/25 11:25 AM

भूमिका

मां के गर्भ से प्रदूषण से जंग की शुरुआत

वायु प्रदूषण का जहरीला सफर गर्भ से शुरू होता है। गर्भावस्था के दौरान जब माएं प्रदूषित हवा के संपर्क में आती हैं तो गर्भ में पल रहे बच्चे को गंभीर खतरा पैदा हो जाता है। यही हवा नवजात शिशु से लेकर किशोर तक के लिए जीवन भर का बोझ बन जाती है। वायु प्रदूषण भारत सहित पूरे ग्लोबल साउथ (विकासशील एवं गरीब देश) में भयावह स्तर पर पहुंच चुका है। भारत इस बात के लिए बदनाम है कि वायु प्रदूषण के कारण दुनिया भर में जन्म के एक महीने के भीतर होने वाली शिशुओं की मृत्यु में से एक-चौथाई यहीं होती हैं।

स्थानीय और वैश्विक स्तर पर बढ़ते प्रमाण और अच्छी तरह से डिकोड किए गए विज्ञान में उन जैविक मार्गों को परिभाषित किया जा चुका है, जिनके माध्यम से प्रदूषक शरीर में प्रवेश करते हैं और अंगों को प्रभावित करते हैं। इनसे न केवल शिशुओं को प्रभावित करने वाले निचले श्वसन संक्रमण का पता चला है, बल्कि जन्म के समय कम वजन और समय पूर्व जन्म के कारण

Slow Murder Continues_Hindi.indd 8 16/07/25 11:25 AM

बच्चों की सेहत पर होने वाले असर के तथ्य सामने आए हैं। जीवन के पहले पड़ाव में बच्चे बेहद नाजुक होते हैं। वायु प्रदूषण उनके जीवन को बेहद असुरक्षित बना देता है। खासकर गरीब घरों के बच्चों को इसका खतरा अधिक होता है।

हवा में व्याप्त विषाक्त धूल कणों के संपर्क में आने वाली मां के गर्भ में पल रहे भ्रूण के जीवित रहने की संभावना कम हो सकती है। प्रदूषित हवा के कारण मृत बच्चे का जन्म, समय से पहले जन्म और जन्म के समय कम वजन जैसी घटनाएं हो सकती है। उन्हें बाद के जीवन में अंतःस्त्रावी (इंडोक्राइन) और चयापचय (मेटाबोलिक) के साथ-साथ मधुमेह जैसी कई बीमारियों का खतरा रहता है। यदि वायु प्रदूषण मां के श्वसन स्वास्थ्य पर असर डालता है तो गर्भ में पल रहे भ्रूण में ऑक्सीजन और पोषक तत्वों की कमी का कारण भी बन सकता है। गर्भाशय में फेफड़ों के खराब विकास से वायुमार्ग की बीमारी का खतरा बढ़ जाता है।

वैज्ञानिक समझाते हैं कि कणीय पदार्थ यानी पार्टिकुलेट मैटर की वजह से मांताओं की इम्युनिटी कम हो सकती है। समय से पहले या मृत बच्चे का जन्म या अविकसित दिमाग वाले बच्चे के जन्म का खतरा बढ़ सकता है। पैदा होने वाले कमजोर बच्चे अधिक संवेदनशील होते हैं और निचले फेफड़ों का संक्रमण (एलआरआई), दस्त, मस्तिष्क क्षति और सूजन, रक्त विकार और पीलिया के जोखिम का सामना नहीं कर सकते हैं।

प्रदूषित हवा के जल्दी संपर्क में आने से 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए खतरा ज्यादा बढ़ जाता है। यह मस्तिष्क व तंत्रिका संबंधी विकास, फेफड़ों की कार्यप्रणाली को प्रभावित करता है और मोटापे का कारण बन सकता है। इसके अलावा मानसिक विकार पैदा हो सकते हैं, जैसे ध्यान में कमी, कम बुद्धि, अविकसित दिमाग आदि। यहां तक कि बच्चों के फेफड़ों की कार्यक्षमता में स्थायी कमी हो सकती है, जिससे वे बड़े होने के बाद भी फेफड़ों की बीमारी की पुरानी बीमारी की चपेट में आ सकते हैं, जो उनके जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। ■

Slow Murder Continues_Hindi.indd 9 16/07/25 11:25 AM

राहत की सांस नहीं

भारतीय शहरों में प्रदूषण के स्तर में निरंतर वृद्धि वायु गुणवत्ता के गंभीर संकट को उजागर करती है

जिंदगी की बागडोर थामने वाली सांसें ही अब भारत में जानलेवा साबित हो रही हैं। यहां हर सांस धीरे-धीरे मौत की तरफ धकेलती है। स्वीडन स्थित कारोलिंस्का इंस्टीट्यूट की एक रिसर्च के मुताबिक, 2009-2019 के दशक में भारत में वायु प्रदूषण की वजह से 38 लाख लोगों की जान गई, क्योंकि हवा में पीएम 2.5 की मात्रा मानक स्तर 40 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर से कहीं ज्यादा पहुंच गई। कारोलिंस्का इंस्टीट्यूट ने कहा कि विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के मानक इस मामले में और भी सख्त हैं। डब्ल्यूएचओ के मुताबिक, सिर्फ 5 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर तक ही वायु की गुणवत्ता सामान्य मानी जाती है। इससे तुलना करें तो प्रदूषण से होने वाली मौतों की संख्या कई गुना बढ़कर 1.66 करोड़ तक पहुंच जाती है। यह आंकड़े पूरे रिसर्च पीरियड के दौरान कुल मृत्यु दर का 25 फीसदी हैं।

अध्ययन में इस पर खासतौर पर ध्यान दिलाया गया है कि भारत की पूरी आबादी ऐसे इलाकों में रहती है, जहां पीएम 2.5 का स्तर डब्ल्यूएचओ के मानकों से ज्यादा है। पीएम 2.5 बहुत ही बारीक कण होते हैं, जिनका व्यास

Slow Murder Continues_Hindi.indd 10 16/07/25 11:25 AM

2.5 माइक्रोमीटर या उससे कम होता है। इंटरनेशनल एडवोकेसी ग्रुप द नेचुरल रिसोर्स डिफेंस काउंसिल के मुताबिक, पीएम 2.5 के आकार को ऐसे समझ सकते हैं, "अधिकतर बैक्टीरिया कम से कम 5 माइक्रोन चौड़े होते हैं। एक रेड ब्लड सेल का व्यास करीब 6 माइक्रोन होता है, जबकि एक बाल की मोटाई लगभग 70 माइक्रोन तक होती है। एक पीरियड (पूर्णविराम) पर हजारों पीएम 2.5 कण समा सकते हैं। कारोलिंस्का इंस्टीट्यूट ने अपने अध्ययन में यह चेतावनी भी दी है कि पीएम 2.5 में हर 10 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर की वृद्धि से मौतों में 8.6 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। 2009 से 2019 तक हुई रिसर्च के दौरान भारत के 655 जिलों के लोगों पर यह दुष्प्रभाव देखा गया।

दुनिया के सबसे ज्यादा आबादी वाले देश भारत के लगभग सभी लोग जिंदा रहने के लिए जरूरी सबसे बुनियादी काम "सांस लेने" के दौरान भी प्रदूषित हवा की चपेट में आ जाते हैं। इससे उनके ऊपर बीमारियों का बोझ और बढ़ जाता है। विभिन्न अध्ययनों में यह साबित हो चुका है कि कई क्षेत्रों में पीएम 2.5 का स्तर लगातार बढ़ रहा है। इतना ही नहीं, पीएम 2.5 के कण सैकड़ों किलोमीटर की दूरी तय कर सकते हैं। इससे दूर-दराज के बड़े इलाकों तक प्रदूषण फैल जाता है।

भारत के शहरों में बढ़ता वायु प्रदूषण गंभीर चिंता का विषय बन चुका है। बड़े महानगरों और छोटे शहरों के बीच हवा की गुणवत्ता में काफी अंतर है। वहीं, अब एक और परेशान करने वाला ट्रेंड दिखाई दे रहा है। पहले जिन छोटे शहरों को अपेक्षाकृत साफ माना जाता था, वे अब खतरनाक रूप से उच्च स्तर का प्रदूषण झेल रहे हैं। असम-मेघालय सीमा पर स्थित एक छोटा औद्योगिक शहर है बर्नीहाट। यह शहर अब भारत में प्रदूषण का नया हॉटस्पॉट बन गया है। यहां के सालाना पीएम 2.5 स्तर ने दिल्ली को भी पीछे छोड़ दिया है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) के आंकड़ों के अनुसार, बर्नीहाट में पीएम 2.5 का स्तर 133.4 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर दर्ज किया गया। यह राष्ट्रीय मानक से 3.3 गुना अधिक है।

यह भारत में वायु प्रदूषण संकट की दिशा में हो रहे बड़े बदलाव का संकेत है। अब छोटे शहर भी उसी खतरनाक स्तर के प्रदूषण से जूझ रहे हैं, जिसे पहले कभी सिर्फ मेट्रो शहरों की समस्या माना जाता था। बर्नीहाट में हवा इतनी ज्यादा प्रदूषित हो चुकी है कि इसे सुरक्षित माने जाने वाले सालाना स्तर तक

Slow Murder Continues_Hindi.indd 11 16/07/25 11:25 AM

लाने के लिए पीएम 2.5 में 70 प्रतिशत की भारी कमी करनी होगी। दिल्ली अपनी खतरनाक रूप से जहरीली हो चुकी हवा के लिए लंबे समय तक चर्चा में रही है। लेकिन, बर्नीहाट के मुकाबले दिल्ली में वार्षिक औसत पीएम 2.5 स्तर 104.9 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर दर्ज किया गया। यहां 2024 के 101 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर की तुलना में 4 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है। हाल ही में सीपीसीबी के आंकड़ों के साथ एक्यूएयर की तरफ से जारी वायु गुणवत्ता रिपोर्ट में भारत के सबसे प्रदूषित शहरों को चिन्हित किया गया है। इन शहरों में पीएम 2.5 का स्तर बेहद खतरनाक पाया गया। यह धारणा कि वायु प्रदूषण केवल "बड़े शहरों की समस्या" है, अब टूटती दिख रही है। आंकड़े साफ तौर पर दिखाते हैं कि अब छोटे शहर और औद्योगिक क्षेत्र भारत के "वायु प्रदूषण संकट" के बदतर हालात का सामना कर रहे हैं।

शहरों में लगातार बढ़ता प्रदूषण का स्तर यह दिखाता है कि वायु गुणवत्ता संकट गहराता जा रहा है और यह समस्या अब सिर्फ महानगरों तक सीमित नहीं है। भारत के सबसे प्रदूषित शहरों की लिस्ट में गुरुग्राम, हरियाणा (91.7 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर), श्री गंगानगर, राजस्थान (87.2 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर), फरीदाबाद, हरियाणा (84.7 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर), ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश (83.6 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर) और मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश (83.4 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर) शामिल हैं। ये आंकड़े दिखाते हैं कि औद्योगिक क्षेत्रों के साथ ही जिन इलाकों में शहरीकरण तेजी से हो रहा है, वे बढ़ते उत्सर्जन का सबसे ज्यादा खामियाजा भुगत रहे हैं। हवा की गुणवत्ता में आ रहे बदलावों से जुड़े रुझानों से यह बात भी साफ हो जाती है कि अब तक वायु प्रदूषण की राष्ट्रीय बहस में जिन छोटे शहरों को नजरअंदाज किया जाता रहा है, वे ही अब गंभीर संकट से जूझ रहे क्षेत्रों में तब्दील होते जा रहे हैं, जहां तुरंत हस्तक्षेप की जरूरत है।

"एयर क्वॉलिटी टेक्नोलॉजी" पर काम करने वाली स्विट्जरलैंड की कंपनी एक्यूआई की एक हालिया रिपोर्ट भी यही संकेत देती है। हालांकि, आंकड़ों में मामूली अंतर भले ही हो, लेकिन संदेश एक ही है कि भारत में वायु प्रदूषण की समस्या का दायरा जितनी तेजी से फैल रहा है, उसकी तीव्रता भी उतनी ही बढ़ती जा रही है। लगातार नए इलाके इस संकट की चपेट में आते जा रहे हैं।

Slow Murder Continues_Hindi.indd 12 16/07/25 11:25 AM

दिल्ली स्थित गैर-लाभकारी संस्था सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट (सीएसई) की रिपोर्ट के अनुसार, 2024-25 की सर्दियों (1 अक्टूबर, 2024- 31 जनवरी, 2025) के दौरान भारत के महानगरों दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, बेंगलुरु, हैदराबाद और चेन्नई में पीएम 2.5 का स्तर और भी बदतर हो गया, जबकि इन सभी महानगरों की भौगोलिक स्थितियां और जलवायु अलग-अलग हैं। सीएसई की यह रिपोर्ट इन शहरों में सर्दियों के दौरान रीयलटाइम पीएम 2.5 डेटा के विश्लेषण पर आधारित है।

चारों तरफ जमीन से घिरे "इंडो-गैंगेटिक प्लेन्स" यानी गंगा के मैदानी इलाकों में स्थित और मौसम की प्रतिकूल स्थितियों का सामना करने वाली दिल्ली में सबसे ज्यादा प्रदूषण स्तर दर्ज किया गया। इंडो-गैंगेटिक क्षेत्र के दूसरे सिरे पर स्थित कोलकाता दूसरा सबसे प्रदूषित महानगर रहा। वहीं, इंडो-गैंगेटिक क्षेत्र से बाहर स्थित महानगरों मुंबई, चेन्नई, हैदराबाद और बेंगलुरु में भी पीएम 2.5 के औसत स्तर में बढ़ोतरी दर्ज की गई, जबकि इन महानगरों की जलवायु परिस्थितियां बाकी शहरों की तुलना में बेहतर हैं और यहां ताजी हवा के लिए वेंटिलेशन की प्राकृतिक व्यवस्था भी है।

दिल्ली और चेन्नई को छोड़कर बाकी सभी महानगरों में तो प्रदूषण का स्थानीय औसत पिछली 3 सर्दियों के मुकाबले तो कम दर्ज हुआ, लेकिन इन शहरों में अलग-अलग जगहों पर प्रदूषण स्तर काफी ज्यादा रहा, जिससे लोगों को गंभीर स्तर के प्रदूषण से जूझना पड़ा। अलग-अलग जलवायु वाले सभी क्षेत्रों में सर्दियों के दौरान प्रदूषण स्तर के चरम पर पहुंच जाने से यह साफ हो जाता है कि जहां शहरीकरण और गाड़ियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है, वहां वायु प्रदूषण स्थायी समस्या बन चुका है। सर्दियां आते ही दिल्ली की वायु गुणवत्ता हर तरफ चर्चा होती है, लेकिन दूसरे महानगरों में बढ़ते प्रदूषण को अक्सर नजरअंदाज कर दिया जाता है। मौसमी प्रदूषण के रुझानों में कुछ सुधार के बावजूद सर्दियों के दौरान प्रदूषण चरम पर पहुंच रहा है और कई इलाकों में यह और ज्यादा बढ़ रहा है।

दिल्ली स्थित क्लाइमेट-टेक स्टार्ट-अप रेस्पिरर लिविंग साइंसेज ने 11 महानगरों की वायु गुणवत्ता पर 4 साल (2021-2024) तक अध्ययन किया। इस रिसर्च में भारत के प्रमुख शहरी केंद्रों में पार्टिकुलेट मैटर से होने वाले प्रदूषण के खतरनाक स्तर दिखाई दिए। अध्ययन में पाया गया कि सभी

Slow Murder Continues_Hindi.indd 13 16/07/25 11:25 AM

11 महानगरों में पीएम 10 का स्तर राष्ट्रीय परिवेशी वायु गुणवत्ता मानकों को लगातार पार करता रहा। सरकारी नीतियों के बावजूद प्रदूषण का स्तर ज्यादा ही बना रहा। सबसे खराब हालात उत्तर भारत में रहे। दिल्ली, पटना, लखनऊ और चंडीगढ़ जैसे शहरों में वायु गुणवत्ता विशेष रूप से बेहद खतरनाक दर्ज की गई। 2024 में दिल्ली के आनंद विहार निगरानी केंद्र ने पीएम 10 का स्तर 313.8 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर दर्ज किया। वहीं पटना के समनपुरा क्षेत्र में यह स्तर 237.7 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर तक पहुंच गया। यह दोनों आंकड़े राष्ट्रीय सुरक्षा मानक 60 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर से कई गुना अधिक हैं।

यहां तक कि जिन शहरों की वायु गुणवत्ता पारंपरिक तौर पर बेहतर मानी जाती रही है, वे भी सुरक्षा मानकों को पूरा करने में असफल रहे। बेंगलुरु, चेन्नई और हैदराबाद जैसे कुछ दक्षिणी और तटीय शहरों में कुछ निगरानी केंद्रों पर कुछ सुधार जरूर देखा गया, लेकिन लगातार पिछले चार वर्षों से कोई भी शहर सुरक्षा मानकों पर खरा नहीं उतर पाया है। रेस्पिरर लिविंग साइंसेज के संस्थापक और सीईओ रोनक सुतारिया ने कहा, "यह बात सिर्फ कभी-कभार प्रदूषण बढ़ने से संबंधित नहीं है। हम पूरे साल लगातार प्रदूषण से जूझना पड़ रहा है, जिसकी वजह से शहरी आबादी लंबे समय तक खतरनाक कणों के संपर्क में रहती है।" उन्होंने कहा, "हमारे आंकड़ों में ज्यादातर जगहों पर प्रदूषण में कोई ठोस या दीर्घकालिक गिरावट नहीं दिखाई दी।"

भारत के ग्रामीण इलाकों में भी वायु प्रदूषण का स्तर खतरनाक रूप से बढ़ रहा है। गैर-लाभकारी संगठन क्लाइमेट ट्रेंड्स ने आईआईटी-दिल्ली के वैज्ञानिकों द्वारा तैयार सैटेलाइट डेटा का विश्लेषण किया, जिसमें कई चौंकाने वाले तथ्यों का पता चला। इस विश्लेषण के अनुसार, साल 2022 में सबसे जहरीले वायु प्रदूषक अल्ट्राफाइन पार्टिकुलेट मैटर पीएम 2.5 का वार्षिक औसत ग्रामीण भारत में उतना ही खराब था जितना शहरी भारत में। सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट के एक अन्य विश्लेषण के अनुसार, वायु प्रदूषण के कारण ग्रामीण लोगों की जीवन प्रत्याशा में शहरी लोगों की तुलना में अधिक गिरावट आई है। यानी शहर के लोगों की तुलना में गांवों में रहने वालों को प्रदूषण का ज्यादा बुरा असर पड़ रहा है।

क्लाइमेट ट्रेंड्स के विश्लेषण के अनुसार, 2022 में ग्रामीण भारत में पीएम 2.5 का औसत वार्षिक स्तर 46.4 माइक्रोग्राम था, यह शहरी भारत के

Slow Murder Continues_Hindi.indd 14 16/07/25 11:25 AM

पीएम 2.5 स्तर 46.8 माइक्रोग्राम से थोड़ा ही कम था (राष्ट्रीय स्तर पर यह लिमिट 40 माइक्रोग्राम है।) क्लाइमेट ट्रेंड्स रिपोर्ट से पता चलता है कि 2017 से अब तक भारत के ग्रामीण और शहरी इलाकों में पीएम 2.5 का प्रदूषण स्तर लगभग बराबर ही रहा है, दोनों के आंकड़ों के बीच शायद ही कोई अंतर हो।

बोस इंस्टीट्यूट के अभिजीत चटर्जी ने 2023 में अपना शोध पत्र में प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक था, "अ डीप इनसाइट इनटू स्टेट-लेवल एरोसोल पॉल्यूशन इन इंडियाः लॉन्ग-टर्म (2005-2019) कैरेक्टरिस्टिक्स, सोर्स अपॉर्शनमेंट, एंड फ्यूचर प्रोजेक्शन (2023)।" अभिजीत ने इस शोध पत्र में लिखा, "भारत के ग्रामीण इलाकों पर ध्यान दिए बिना हाल के दशक में देश में वायु प्रदूषण की समस्या हल नहीं की जा सकती।" भारत में 47 प्रतिशत आबादी वायु गुणवत्ता निगरानी नेटवर्क से बाहर रहती है और 62 प्रतिशत लोगों को स्थानीय वायु गुणवत्ता सूचकांक से जुड़े रोजाना के अलर्ट मिल ही नहीं पाते। पूरा ग्रामीण भारत वायु प्रदूषण नेटवर्क के दायरे से बाहर है। सीएसई के एक विश्लेषण से पहले पता चलता है कि वायु प्रदूषण के कारण भारत के गांवों में रहने वालों की उम्र 5 साल और 2 महीने घट गई, जबकि शहर के लोगों की जिंदगी औसतन 4 साल, 5 महीने कम हो गई। कुछ राज्यों में हालात और भी गंभीर हैं। प्रदूषण के कारण उत्तर प्रदेश के ग्रामीणों की जिंदगी के 8 से ज्यादा साल कम हो रहे हैं। वहीं, बिहार और हरियाणा में ग्रामीण लोग औसतन 7 साल से अधिक की उम्र गंवा रहे हैं।

भारत में वायु प्रदूषण की गंभीरता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 2018 से 2021 के बीच, भारत में सबसे ज्यादा मानवजनित वायु प्रदूषण दर्ज किया गया। यहां तक कि कोविड-19 महामारी के तीन चरणों (पूर्व, दौरान और बाद) में जब भारत में लॉकडाउन लगने से आवाजाही और आर्थिक गतिविधियां बहुत कम हो गई थीं, तब भी कोई खास राहत नहीं मिली। 17 मई, 2023 को नेचर जर्नल में प्रकाशित एक अध्ययन में इन तथ्यों का उल्लेख किया गया है। इस अध्ययन के मुताबिक, इस अवधि में भारत में वायु प्रदूषण बढ़ने के प्रमुख कारण परिवहन का विकास, औद्योगिक पावर प्लांट्स का विस्तार, हरित क्षेत्रों की कमी और अव्यवस्थित शहरीकरण था।

यह शोध बिजय हलदर, इमान अहमदियानफार, सलीम हेड्डुम, जैनब हैदर मुसा और लियोनार्डो गोलिएथ ने किया। उन्होंने सेंटिनल-5पी सैटेलाइट

Slow Murder Continues_Hindi.indd 15 16/07/25 11:25 AM

और गूगल अर्थ इंजन (जीईई) का उपयोग करके मशीन लर्निंग आधारित देश स्तरीय सालाना वायु प्रदूषण की निगरानी की। सेंटिनल-5पी ने 2018 से 2021 तक वायुमंडल में वायु प्रदूषकों और रासायनिक स्थितियों की निगरानी की। क्लाउड कंप्यूटिंग-आधारित जीईई प्लेटफॉर्म का उपयोग वायुमंडल में वायु प्रदूषकों और रासायनिक घटकों का विश्लेषण करने के लिए किया गया। 2020 और 2021 में वायु गुणवत्ता सूचकांक (एक्यूआई) में भारी उतार-चढ़ाव देखा गया, जबकि 2018 और 2019 में पूरे साल एक्यूआई अपेक्षाकृत कम रहा। अध्ययन अवधि के दौरान दिल्ली, कोलकाता, मुंबई, पुणे और चेन्नई में वायु प्रदूषण के मामले में भारी उतार-चढ़ाव दर्ज किया गया।

भारत की हवा में सिर्फ पार्टिकुलेट मैटर ही प्रदूषण नहीं फैला रहे हैं, बल्कि दूसरी वजहें भी यह खतरा बढ़ा रही हैं। सीएसई के एक अध्ययन में एक परेशान करने वाला ट्रेंड सामने आया है कि भारत के प्रमुख शहरों में ग्राउंड-लेवल ओजोन प्रदूषण बढ़ रहा है। यह गैस अदृश्य होती है और कुख्यात हो चुके पार्टिकुलेट मैटर की तुलना में सेहत के लिए ज्यादा खतरनाक होती है। खासकर सांस की बीमारियों से जूझ रहे लोगों के लिए यह स्वास्थ्य से संबंधित गंभीर परेशानियों की वजह बनती है। ग्राउंड-लेवल ओजोन किसी स्रोत से सीधे नहीं निकलती। यह तब बनती है जब वाहनों, फैक्ट्रियों, पावर प्लांट्स और अन्य दहन स्रोतों से नाइट्रोजन ऑक्साइड्स (एनओएक्स) और वोलाटाइल ऑर्गैनिक कंपाउंड्स निकलते हैं और सूरज की रोशनी में आपस में रासायनिक क्रियाएं करते हैं। वोलाटाइल ऑर्गैनिक कंपाउंड्स (वीओसी) कुछ प्राकृतिक स्रोतों, जैसे पेड़-पौधों से भी निकलते हैं। यह गैस सांस की बीमारियों जैसे अस्थमा, फेफड़ों की पुरानी बीमारियों से जूझ रहे लोग, समय से पहले जन्मे बच्चों के फेफड़े और बुजुर्ग व्यक्तियों के लिए बहुत ज्यादा खतरनाक है। यह गैस श्वास नलियों में सूजन की वजह बन सकती है, उन्हें नुकसान पहुंचा सकती है, फेफड़ों को संक्रमण के प्रति संवेदनशील बना सकती है, दमा, ब्रोंकाइटिस, एम्फायसेमा को बिगाड़ सकती है, दमा के दौरे बढ़ा सकती है, जिससे बार-बार अस्पताल में भर्ती होना पड़ सकता है।

सीएसई की रिपोर्ट, "एयर क्वालिटी ट्रैकरः एन इनविजिबल थ्रेट" में भारत के कई मेट्रो शहरों का विश्लेषण किया गया। इन शहरों में बेंगलुरु (कर्नाटक), चेन्नई (तमिलनाडु), कोलकाता (पश्चिम बंगाल), मुंबई और

Slow Murder Continues_Hindi.indd 16 16/07/25 11:25 AM

पुणे (महाराष्ट्र) के महानगरीय क्षेत्र शामिल हैं। इसमें दिल्ली-एनसीआर, ग्रेटर अहमदाबाद (गुजरात), ग्रेटर हैदराबाद (तेलंगाना), ग्रेटर जयपुर (राजस्थान) और ग्रेटर लखनऊ (उत्तर प्रदेश) के आंकड़ों को भी देखा गया। इन सभी क्षेत्रों में ओजोन प्रदूषण स्तर राष्ट्रीय मानक से ज्यादा पाया गया। रिपोर्ट में दिल्ली सबसे ज्यादा प्रभावित शहर पाया गया। रिपोर्ट में यह भी पाया गया कि अहमदाबाद और पुणे जैसे छोटे शहरों में ओजोन प्रदूषण बहुत तेजी से बढ़ रहा है।

2024 में अप्रैल से जुलाई के बीच दिल्ली-एनसीआर में 176 दिन ग्राउंड-लेवल ओजोन प्रदूषण का अधिकतम स्तर दर्ज किया गया, जो 10 मेट्रो शहरों में सबसे ज्यादा था। सीएसई शोधकर्ताओं ने 2020 से 2024 तक के 1 अप्रैल से 18 जुलाई के बीच के डेटा को ट्रैक किया। 5 साल की अवधि का यह विश्लेषण केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के विस्तृत और रियल टाइम डेटा (औसतन 15 मिनट के) पर आधारित है। मुंबई और पुणे दोनों शहरों में 138 दिन तक प्रदूषण स्तर बहुत ज्यादा रहा। इसके बाद जयपुर में 126 दिन और हैदराबाद में 86 दिन तक लोग प्रदूषण से बेहाल रहे। कोलकाता में 63 दिन, बेंगलुरु में 59 दिन, लखनऊ में 49 दिन और अहमदाबाद में 41 दिन प्रदूषण स्तर अधिक दर्ज हुआ। चेन्नई में सबसे कम सिर्फ 9 दिन प्रदूषण स्तर चरम पर पहुंचा। 2024 (जुलाई) में अत्यधिक प्रदूषण स्तर वाले दिनों की तुलना पिछले साल की उसी अवधि से करने पर पाया गया कि अध्ययन में शामिल 10 में से 7 मेट्रो शहरों में अत्यधिक प्रदूषण वाले दिनों में बढ़ोतरी हुई है। यह बढ़ोतरी छोटे मेट्रो शहरों में सबसे ज्यादा पाई गई। अहमदाबाद में अत्यधिक प्रदूषण वाले दिनों में 4,000 प्रतिशत की वृद्धि हुई, पुणे में 500 प्रतिशत और जयपुर में 152 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई। मुंबई-एमएमआर और बेंगलुरू में क्रमशः 18 प्रतिशत और 1 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई। दिल्ली-एनसीआर और लखनऊ में 5 प्रतिशत से कम बदलाव देखा गया। वहीं, कोलकाता-केएमए और चेन्नई में सीमा से अधिक प्रदूषण वाले दिनों की संख्या में कमी आई। कोलकाता में 19 प्रतिशत और चेन्नई में 40 प्रतिशत की कमी दर्ज हुई।

उम्मीदों के विपरीत, रात में भी ओजोन का स्तर बढ़ा पाया गया। मुंबई में रात के वक्त ओजोन के स्तर में सबसे ज्यादा बढ़ोतरी दर्ज की गई।

Slow Murder Continues_Hindi.indd 17 16/07/25 11:25 AM

शोधकर्ताओं ने पाया कि अधिकतर शहरों में लोग 12 से 15 घंटे तक ओजोन के संपर्क में रहते हैं। यह अवधि गंभीर चिंता का विषय है। विडंबना यह है कि उच्चवर्गीय और हरित क्षेत्र, जहां दूसरे प्रदूषकों का स्तर कम होता है, वे ओजोन के निर्माण के लिए अधिक संवेदनशील हैं। गर्मी के मौसम में ओजोन का स्तर चरम पर रहता है, लेकिन यह समस्या कई क्षेत्रों में साल भर बनी रहती है। विशेष रूप से अधिक धूप वाले दक्षिणी शहरों में यह समस्या पूरे वर्ष देखने को मिलती है। अन्य प्रदूषकों के कम स्तर वाले उच्च-स्तरीय और हरे-भरे पड़ोस विडंबना यह है कि ओजोन के निर्माण के लिए अधिक संवेदनशील हैं। जबकि गर्मी ओजोन के लिए चरम मौसम है, यह समस्या कई क्षेत्रों में साल भर बनी रहती है, खासकर धूप वाले दक्षिणी शहरों में।

ओजोन गैस केवल मेट्रो शहरों तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि यह सैकड़ों किलोमीटर की दूरी तय कर दूसरे इलाकों तक पहुंच सकती है और प्रदूषण बढ़ा देती है। ऐसे में इसके समाधान के लिए क्षेत्रीय और स्थानीय, दोनों स्तरों पर कदम उठाने जरूरी हैं। रिपोर्ट के मुताबिक, फिलहाल निगरानी की व्यवस्था अपर्याप्त है, डेटा सीमित है और रुझानों के विश्लेषण की विधियां भी प्रभावी नहीं हैं। इस वजह से बढ़ते सार्वजनिक स्वास्थ्य के खतरे को पूरी तरह से समझ पाना मुश्किल हो रहा है।

ग्राउंड-लेवल ओजोन की रासायनिक प्रक्रिया बहुत जटिल होती है। इसे ट्रैक करना और नियंत्रित करना कठिन है। इसके अत्यधिक विषैले प्रभावों के कारण भारत में ओजोन के लिए वायु गुणवत्ता मानक केवल अल्पकालिक संपर्क के आधार पर तय किए गए हैं। ये मानक एक घंटे और आठ घंटे की औसत अवधि पर आधारित हैं। इसका मूल्यांकन इस आधार पर किया जाता है कि कितने दिनों में यह मानक पार हो जाता है। शोधकर्ताओं ने इस बात पर जोर दिया है कि जोखिम कम करने के लिए समय रहते कदम उठाने बहुत जरूरी हैं।

25 अप्रैल, 2023 को जर्नल *ईलाइफ* में प्रकाशित एक शोध के अनुसार, घर के अंदर का वायु प्रदूषण भी एक गंभीर और लगातार बनी रहने वाली समस्या है। भारत में खराब इनडोर एयर क्वालिटी 2 साल से छोटे बच्चों के मस्तिष्क विकास को प्रभावित कर सकती है। यही वह उम्र होती है, जब मस्तिष्क का विकास सबसे तेज होता है। यूनिवर्सिटी ऑफ ईस्ट एंग्लिया (यूईएस) के शोधकर्ताओं के इस अध्ययन में चेतावनी दी गई है कि मस्तिष्क

Slow Murder Continues_Hindi.indd 18 16/07/25 11:25 AM

पर पड़ा यह दुष्प्रभाव बच्चे के पूरे जीवन पर गहरा प्रभाव डाल सकता है। घर के अंदर होने वाले वायु प्रदूषण की सबसे बड़ी वजह खाना पकाने में इस्तेमाल होने वाले ईंधन होते हैं। शोधकर्ताओं ने भारत के ग्रामीण इलाकों में स्थित घरों से हवा की गुणवत्ता का डेटा एकत्रित किया। इस दौरान उन्होंने पीएम 2.5 स्तर को खासतौर पर ध्यान में रखा। पीएम 2.5 वे सूक्ष्म कण होते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक माने जाते हैं। यह पहली रिसर्च है, जिसने दो साल से कम उम्र के शिशुओं में खराब वायु गुणवत्ता और मस्तिष्क संबंधी समस्याओं के बीच संबंध स्थापित किया है। यूईए के स्कूल ऑफ साइकोलॉजी से प्रमुख शोधकर्ता जॉन स्पेंसर ने कहा, "इससे पहले हुए अध्ययनों में भी यह पाया गया है कि खराब वायु गुणवत्ता से बच्चों में मानसिक, भावनात्मक और व्यवहारिक समस्याएं हो सकती हैं, जिनका पूरे परिवार पर बहुत बुरा असर पड़ता है।"

शोधकर्ताओं ने उत्तर प्रदेश स्थित शिवगढ़ गांव में विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि वाले परिवारों के साथ काम किया। उन्होंने पाया कि जिन घरों में ठोस ईंधन जैसे गोबर के कंडे इस्तेमाल होते हैं, वहां घर के भीतर वायु गुणवत्ता बहुत खराब थी। ऐसे घरों में 6 और 9 महीने की उम्र में भी बच्चों का विजुअल मेमोरी स्कोर कम मिला। 6 से 21 महीने की उम्र के बीच उनकी विजुअल प्रोसेसिंग स्पीड भी धीमी पाई गई। स्पेंसर ने कहा कि हवा में मौजूद बेहद सूक्ष्म कण चिंता का मुख्य कारण हैं, क्योंकि ये कण फेफड़ों के जरिए मस्तिष्क तक पहुंच सकते हैं।

"स्टेट ऑफ ग्लोबल एयर 2019" रिपोर्ट के अनुसार, भारत ठोस ईंधनों (लकड़ी, गोबर, बायोमास) पर खाना पकाने वाले घरों की संख्या में कुछ हद तक कमी लाने में सफल रहा है। 2005 में 76 प्रतिशत घरों में ठोस ईंधन का इस्तेमाल किया जाता था, जो 2017 में घटकर 60 प्रतिशत पर आ गया। ठोस ईंधन के इस्तेमाल में यह कमी तरल पेट्रोलियम गैस यानी एलपीजी की उपलब्धता में सुधार होने की वजह से आई है।

हालांकि, निम्न आय वर्ग के बहुत से परिवार अभी भी ठोस ईंधन पर निर्भर हैं। इनसे होने वाला प्रदूषण नवजात शिशुओं पर सबसे बुरा असर डालता है। नवजात बच्चों में पीएम 2.5 से जुड़ी बीमारियों के दो-तिहाई मामलों का कारण अब भी घर में होने वाला वायु प्रदूषण है। भारत में वायु प्रदूषण के स्तर पर लैंगिक असमानता भी है। निचले आय वर्ग, विशेषकर

शहरों की झुग्गी बस्तियों में रहने वाली महिलाएं पारंपरिक चूल्हों पर खाना बनाती हैं, जहां वेंटिलेशन की व्यवस्था बदतर होती है।

ये चूल्हे बायोमास से जलते हैं और कार्बन मोनोऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन और सूक्ष्म कण (पीएम2.5) जैसे खतरनाक प्रदूषक छोड़ते हैं। पीएम 2.5 से होने वाले वायु प्रदूषण का लगभग 24 प्रतिशत हिस्सा इन्हीं चूल्हों से फैलता है। पहले से कुपोषण का शिकार ये महिलाएं हर दिन घंटों तक घर के अंदर होने वाले इस वायु प्रदूषण को झेलती हैं। इससे उनके फेफड़े, हृदय और प्रजनन तंत्र पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। बुनियादी सुविधाओं तक असमान पहुंच और कमजोर सामाजिक-आर्थिक स्थिति के कारण मृत्यु दर बढ़ जाती है। इसके साथ ही ग्लोबल वार्मिंग के कारण होने वाला जलवायु परिवर्तन भी अब हमारी जिंदगी में परेशानी का नया सबब बन चुका है। वैज्ञानिक अब इस बात पर स्पष्ट हैं कि जलवायु में बदलाव वायु गुणवत्ता को गहराई से प्रभावित करेगा। वायुमंडल में होने वाले बदलावों को वायु प्रदूषण से गहरा संबंध है।

प्रदूषण की मार झेल रहे दिल्ली जैसे शहरों में रहने वाले लोगों में सर्दियों के दौरान पेड़ों की ओर देखना अब आदत बन गई है। वे पेड़ों की ओर देखकर यह जानने की कोशिश करते हैं कि पत्ते हिल रहे हैं या नहीं। पत्ते हिल रहे हैं, तो इसका मतलब है कि हवा चल रही है और दिल्ली समेत पूरे इंडो-गैंगेटिक प्लेन (आईजीपी) में छाई स्मॉग की चादर कुछ हद तक हल्की पड़ेगी। लेकिन जब हवा एकदम थमी हो, तो इसका मतलब है कि जहरीली धुंध शहर में बनी रहेगी और यह हर किसी के लिए बहुत बुरी खबर है। हर साल सर्दियों में दिल्ली समेत पूरा इंडो-गैंगेटिक प्लेन को जहरीली धुंध में लपेट लेने वाला स्मॉग आम लोगों के बीच बहस का मुद्दा बन जाता है। इस स्मॉग की वजह हवा और तापमान में होने वाले बदलाव होते हैं, जिनके कारण प्रदूषकों का एक बड़ा हिस्सा हमारी नाक के स्तर के करीब फंस जाता है। लेकिन, आम लोग मौसम और प्रदूषण के इस जटिल संबंध को ठीक से समझ नहीं पाते।

उत्तर भारत में हर साल सर्दियों में छाने वाले जानलेवा स्मॉग की एक प्रमुख वजह है, जिसे वैज्ञानिक भाषा में “विंटर इनवर्जन” कहा जाता है। सर्दियों में जमीन ठंडी हो जाती है, जिससे जमीन के पास की हवा भी ठंडी हो जाती है। इस ठंडी हवा की परत के ऊपर गर्म हवा की परत जम जाती है, जो एक ढक्कन की तरह काम करती है और प्रदूषण को नीचे फंसा देती है। इस

Slow Murder Continues_Hindi.indd 20 16/07/25 11:25 AM

स्थिति में प्रदूषित हवा ऊपर नहीं उठ पाती और उसके हवा में घुलने की प्रक्रिया रुक जाती है। ऐसी परिस्थिति में हवा ही एकमात्र सहारा भी होती है। अगर हवा न चले, तो प्रदूषक तत्व वहीं जमे रहते हैं, जिससे स्थिति और गंभीर हो जाती है। हवा की रफ्तार, दिशा और तापमान में बदलाव, ये सब मिलकर तय करते हैं कि जहरीली गैसें और कण फैलेंगे या जमा रहेंगे। गर्म हवा ऊपर उठती है और पीछे कम दबाव वाला क्षेत्र छोड़ती है। गैसें उच्च दबाव से कम दबाव की ओर बहती हैं, यही प्रक्रिया प्रदूषण के फैलाव में मदद करती है। लेकिन, जब हवा चलती ही नहीं, तब ये गैसें एक जगह ठहरी रह जाती हैं और हवा जहर बन जाती है।

2023-24 की सर्दियों में दिल्ली में सीएसई द्वारा किए गए एक अध्ययन में हवा के पैटर्न और प्रदूषण की सघनता के बीच यह घातक रिश्ता स्पष्ट रूप से सामने आया। उस सीजन में पंजाब और हरियाणा में पराली जलाने की घटनाएं लगभग उतनी ही थीं, जितनी पिछले वर्षों में। इतना ही नहीं, उस दौरान अच्छी बारिश भी हुई। उस क्षेत्र में प्रदूषण को बढ़ाने वाली गतिविधियों में ऐसी कोई असामान्य वृद्धि भी नहीं हुई। इसके बावजूद दिल्ली में पीएम 2.5 का स्तर बढ़ा और वार्षिक औसत खराब हुआ। इस बढ़े हुए प्रदूषण की प्रमुख वजह थी धीमी हवा। नवंबर 2023 में दिल्ली में सतह पर बहने वाली हवा की रफ्तार औसतन 9.8 मीटर प्रति सेकंड रही, जो पिछले 6 सालों में दर्ज हुई सबसे धीमी औसत रफ्तार थी। उस अवधि में बीते वर्षों की तुलना में नवंबर, 2023 में हवा की गति 21 फीसदी कम रही। इनवर्जन की वजह से हवा और प्रदूषकों के ऊपर की तरफ उठने पर पहले से ही रोक लग गई थी। हवा की धीमी गति ने प्रदूषकों के क्षैतिज बहाव को भी बाधित कर दिया। इस तरह प्रदूषित हवा फंसी रही और इसका असर पूरे साल के औसत पीएम 2.5 स्तर पर पड़ा। यह क्षेत्र में प्रदूषण के अत्यधिक उच्च स्तर तथा धीमी गति से चल रही हवा का जानलेवा मेल था।

2023 की सर्दियों में मुंबई में जब प्रदूषण के मामले ने सुर्खियां बटोरीं, तब एक बार फिर यह साफ हो गया कि मौसम की भूमिका प्रदूषण के स्तर को किस हद तक प्रभावित कर सकती है। आमतौर पर मुंबई को इसकी समुद्र तटीय भौगोलिक स्थिति का प्राकृतिक फायदा मिलता है। यहां सतह पर बहने वाली तेज हवाएं प्रदूषण को जल्दी से उड़ा देती हैं। इसके अलावा, हवा की

Slow Murder Continues_Hindi.indd 21 16/07/25 11:25 AM

दिशा में उलटफेर भी समय-समय पर प्रदूषकों को दूर करने में मदद करता है। लेकिन 2023 में ये "प्राकृतिक सुरक्षा कवच" टूट गया। भारतीय उष्णकटिबंधीय मौसम विज्ञान संस्थान से जुड़े रहे जाने-माने वायुमंडलीय वैज्ञानिक डॉ. गुफरान बेग ने कई मौकों पर ध्यान दिया है कि 2022 से पश्चिम भारत में मौसम प्रणालियों में बड़े पैमाने पर अस्थिरता देखी जा रही है। यह अस्थिरता प्रदूषण के बढ़ते स्थानीय स्रोतों के साथ मिलकर शहर समेत पूरे क्षेत्र की वायु गुणवत्ता को बिगाड़ रही है। 2023 के अक्टूबर-नवंबर महीनों के दौरान पश्चिम भारत के अधिकतर हिस्सों में सतह पर हवा की रफ्तार काफी धीमी हो गई थी जिससे वहां प्रदूषक तत्व जमा हो गए। इसी दौरान मॉनसून की वापसी भी सामान्य से देरी से हुई, एंटी-साइक्लोन सर्कुलेशन ने भी हालात को और गंभीर बना दिया।

वैज्ञानिक अब आगाह कर रहे हैं कि बढ़ती ग्लोबल वार्मिंग से दुनिया भर में मौसम प्रणाली पर असर पड़ने की उम्मीद है और इसका सीधा असर विभिन्न स्थानीय भौगोलिक क्षेत्रों के प्रदूषण स्तर पर भी पड़ेगा। इन प्रभावों के स्थानीय साक्ष्य अब भारत में भी दिखाई देने लगे हैं। उदाहरण के तौर पर, "इंडो-गैंगेटिक मैदान" में किए गए वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चलता है कि कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन और उसके कारण होने वाली गर्मी सतह पर हवाओं की रफ्तार को घटा रही है। धीमी हवाओं का मतलब है कि सर्दियों में पीएम 2.5 का स्तर और ज्यादा बढ़ेगा। इस तरह, ग्लोबल वार्मिंग के कारण मौसम में होने वाले बदलाव "इंडो-गैंगेटिक मैदान" में प्रदूषण की चुनौती को बढ़ा सकते हैं। इसलिए प्रदूषण स्तर में और अधिक तेजी से कमी की लाने की जरूरत होगी। सितंबर 2022 में एडवांसिंग अर्थ स्पेस साइंसेज जर्नल में प्रकाशित एक अध्ययन में भी "इंडो-गैंगेटिक मैदान" में पीएम 2.5 की सघनता और कार्बन डाई ऑक्साइड उत्सर्जन के बीच ऐसा ही संबंध पाया गया है। रिपोर्ट के मुताबिक हर, एक डिग्री वैश्विक तापमान वृद्धि के साथ इंडो गैगेंटिक मैदानों में सर्दियों के दौरान पीएम 2.5 में औसतन 1 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है, जिससे गंभीर प्रदूषण की घटनाएं ज्यादा बार होने लगेंगी। साथ ही, बढ़ते कार्बन डाई ऑक्साइड के कारण पश्चिमी विक्षोभों की तीव्रता और आवृत्ति में कमी भी देखी जा सकती है, जो पहले प्रदूषण के फैलाव में मददगार होते थे। यह एक तरह से दोहरी मार है, एक तरफ प्रदूषण बढ़ रहा है, दूसरी

Slow Murder Continues_Hindi.indd 22 16/07/25 11:25 AM

शून्य दृश्यता
वायु प्रदूषण
दिल्ली

तरफ उसे दूर करने वाली प्राकृतिक प्रणालियां कमजोर हो रही हैं।

हाल के वर्षों में "शॉर्ट-लिव्ड क्लाइमेट पॉल्युटेंट्स (एसएलसीपी)" को लेकर वैश्विक तापवृद्धि की बहस में तेजी आई है। इनमें सबसे प्रमुख है ब्लैक कार्बन। इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आईपीसीसी) अब तक मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड और हाइड्रोफ्लोरोकार्बन को ग्रीनहाउस गैसों के रूप में मान्यता देता रहा है। लेकिन 2000 के दशक के मध्य में इसमें ब्लैक कार्बन को भी शामिल किया गया। ब्लैक कार्बन, कार्बन आधारित ईंधनों के अधूरे दहन से बनता है, खासतौर पर तब जब तापमान कम हो। यह पार्टिकुलेट मैटर (पीएम 10 और पीएम 2.5) का एक ठोस और अत्यंत सूक्ष्म हिस्सा होता है, जो प्रकाश को पूरी तरह से सोख लेता है और इस ऊर्जा को गर्मी में बदल देता है। इससे जलवायु पर भी असर पड़ता है और स्वास्थ्य पर भी। पीएम 2.5 में शामिल यह ब्लैक कार्बन उन लाखों लोगों के लिए खतरा बन चुका है, जो ऐसी हवा में सांस ले रहे हैं, जो विश्व स्वास्थ्य संगठन के वायु गुणवत्ता मानकों से कहीं अधिक प्रदूषित है।

कार्बन डाई ऑक्साइड की तुलना में ब्लैक कार्बन बहुत अल्पकालिक होता है। आज उत्सर्जित हुआ कार्बन डाई ऑक्साइड भविष्य में अगले 30 से 100 साल तक पर्यावरण में बना रहेगा और उसे प्रभावित करता रहेगा, जबकि ब्लैक कार्बन कुछ मिनट, घंटों और दिन से लेकर करीब एक हफ्ते तक ही हवा में रहता है। ब्लैक कार्बन का उत्सर्जन डीजल और पेट्रोल वाहनों, धूल पैदा करने वाली गतिविधियों और सेकेंडरी पार्टिकुलेट्स (जैसे नाइट्रेट और सल्फेट) से होता है। डीजल और पेट्रोल से होने वाले उत्सर्जन पर हुए कुछ शुरुआती अध्ययनों से पता चलता है कि पेट्रोल वाहनों की तुलना में डीजल वाहनों से उत्सर्जित महीन कणों में ब्लैक कार्बन कई गुना ज्यादा होता है, खासतौर पर यूरो VI से पहले के मॉडल्स तो और भी ज्यादा ब्लैक कार्बन छोड़ते हैं। ब्लैक कार्बन की संरचना इस बात पर निर्भर करती है कि कौन-सा ईंधन इस्तेमाल किया गया, दहन की प्रक्रिया कैसी थी और प्रदूषण नियंत्रण तकनीकों का स्तर क्या था।

आईपीसीसी की छठी मूल्यांकन रिपोर्ट (एआर 6) में ब्लैक कार्बन के प्रभावों की विस्तृत पड़ताल की गई है, जिसमें बढ़ती गर्मी, पिघलते ग्लेशियर और बारिश के पैटर्न पर पड़ने वाले प्रभाव आदि शामिल हैं। वैज्ञानिकों के

Slow Murder Continues_Hindi.indd 24 16/07/25 11:25 AM

अनुसार, ब्लैक कार्बन सूर्य के प्रकाश को अवशोषित कर उसे ऊष्मा में बदलता है, जिससे आसपास का वातावरण गर्म हो जाता है। इसके प्रभाव को "रेडिएटिव फोर्सिंग" यानी प्रति वर्ग मीटर सतह पर अवशोषित सूर्य ऊर्जा और वापस विकिरणित ऊर्जा के अंतर से मापा जाता है। आईपीसीसी की एआर 5 रिपोर्ट के अनुसार, 20 वर्षों की समयावधि में कार्बन डाई ऑक्साइड की तुलना में ब्लैक कार्बन लगभग 900 गुना अधिक गर्मी पैदा कर सकता है। हालांकि आईपीसीसी द्वारा प्रस्तुत रेडिएटिव फोर्सिंग के आंकड़े दूसरे शोधों की तुलना में रूढ़िवादी माने जाते हैं, फिर भी ब्लैक कार्बन जैसे एसएलसीपी ब्लैक कार्बन जैसे एसएलसीपी (शॉर्ट-लिव्ड क्लाइमेट पॉल्यूटेंट्स) कार्बन डाई ऑक्साइड की तुलना में ज्यादा गर्मी सोखते हैं और वैश्विक तापमान में वृद्धि तेज कर सकते हैं। ब्लैक कार्बन का उत्सर्जन और सघनता हर क्षेत्र में समान नहीं है, इसलिए इसके प्रभाव कार्बन डाई ऑक्साइड की तरह वैश्विक न होकर अधिक क्षेत्रीय होते हैं। लेकिन, जब तक वे वायुमंडल में बने रहते हैं, तब तक पर्यावरण पर गहरा असर डालते रहते हैं। वैज्ञानिक मानते हैं कि ब्लैक कार्बन के ग्लोबल वॉर्मिंग पोटेंशियल (जीडब्ल्यूपी) और ग्लोबल टेम्परेचर चेंज पोटेंशियल (जीटीपी) जैसे उत्सर्जन मानकों में अभी भी कुछ अनिश्चितता बनी हुई है, जिससे अलग-अलग क्षेत्रों में इसके प्रभाव के आकलन में अंतर आ सकता है। लेकिन, इसके बावजूद इसके प्रभावों को नकारा नहीं जा सकता है।

यह ब्लैक कार्बन बर्फ पर जम जाए तो ग्लेशियर के पिघलने की प्रक्रिया भी तेज हो सकती है। बर्फ की चमकीली सतहें सौर ऊर्जा की एक बड़ी मात्रा को वापस अंतरिक्ष में परावर्तित कर देती हैं। लेकिन जब उस पर ब्लैक कार्बन जम जाता है, तो वह उस ऊर्जा को अवशोषित कर गर्मी के रूप में छोड़ता है। यही कारण है कि आर्कटिक और हिमालय जैसे संवेदनशील क्षेत्र विशेष रूप से खतरे में हैं। हिमनदों पर जमा ब्लैक कार्बन ग्लेशियरों के पिघलने के मौसमी चक्र को बदल सकता है, जिससे जल संतुलन और जल आपूर्ति प्रभावित हो सकती है। प्रदूषण की स्थानीय प्रवृत्ति और प्रदूषण की गति से प्रभावित ये क्षेत्रीय प्रभाव चिंता का विषय हैं। इसके साथ ही ब्लैक कार्बन वर्षा और बादल बनने की प्रक्रियाओं को भी प्रभावित करता है। यह सतह तक पहुंचने वाले सूर्य के प्रकाश को बाधित कर दृश्यता को प्रभावित कर सकता है। वैज्ञानिक

Slow Murder Continues_Hindi.indd 25 16/07/25 11:25 AM

बताते हैं कि उत्सर्जन संवहन यानी ऊष्मा की स्थानांतरण प्रक्रिया को दबा सकता है और वायुमंडल की स्थिति को इस तरह से स्थिर कर सकता है, जिससे बारिश का सामान्य पैटर्न बाधित हो सकता है।

वैज्ञानिक इसे धरती की सतह के मंद पड़ने की प्रक्रिया (डिमिंग) कहते हैं, जिससे वाष्पीकरण की दर घटती है और बादलों के बनने में बाधा आती है। अगर ब्लैक कार्बन वायुमंडल की उस परत को गर्म कर देता है, जहां बदल बनते हैं, तो वहां बनने वाले बादल वाष्पित हो जाएंगे। इस तरह ब्लैक कार्बन की कालिख से ढंके बादल सूर्य के प्रकाश को अंतरिक्ष में वापस परावर्तित नहीं कर पाएंगे और वातावरण गर्म हो जाएगा। वहीं, अगर ब्लैक कार्बन निचले स्तर के बादलों के ऊपर जमा होता है, तो यह ऊपर की हवा को स्थिर कर देता है, जिससे बादल अधिक बनने लगते हैं। ये बादल किसी ढाल की तरह सूर्य के प्रकाश को रोक देते हैं। इस प्रक्रिया में ब्लैक कार्बन स्थानीय स्तर पर ग्रह को ठंडा भी कर सकता है।

अब ऐसे कई अध्ययन और साक्ष्य मौजूद हैं, जिनसे ब्लैक कार्बन के विभिन्न प्रभावों के बारे में जानकारी मिलती है। चाहे बादल बनने की प्रक्रिया हो, वर्षा चक्र में बदलाव हो या मौसम प्रणाली, हिमपात या जल स्रोतों पर असर, क्षेत्रीय स्तर पर ब्लैक कार्बन का असर अलग-अलग और गहराई से हो सकता है। आईपीसीसी की एआर 6 रिपोर्ट बताती है कि उत्तरी गोलार्ध में ब्लैक कार्बन के कारण वसंत ऋतु की शुरुआत में ही बर्फ के पिघलने को बढ़ावा मिल सकता है, हालांकि इसकी मात्रा अभी स्पष्ट नहीं है। दक्षिण एशिया में वायुमंडल में उपस्थित अवशोषक कण वर्षा के पैटर्न को प्रभावित कर सकते हैं। यह तिब्बती पठार में वायुमंडलीय प्रवाह में परिवर्तन, बर्फ पर काली परत के जमने और हिमनदों के पिघलने का कारण बन सकता है, हालांकि इसके प्रभाव की तीव्रता पर असहमति बनी हुई है।

इन सभी प्रभावों से निपटने के लिए स्थानीय परिस्थिति के अनुसार रणनीतियां अपनाना आवश्यक है। अमेरिका स्थित स्क्रिप्स इंस्टीट्यूशन ऑफ ओशनोग्राफी ने विमान आधारित अध्ययन और मॉडलिंग के जरिए यह दिखाया है कि ब्लैक कार्बन देशों की सीमाएं पार कर लंबी दूरियां तय कर सकता है। अध्ययन में पाया गया कि जैसे-जैसे ऊंचाई बढ़ती है, ब्लैक कार्बन का वह अंश, जो एशिया में उत्पन्न हुआ है, वह भी बढ़ता जाता है। जब

Slow Murder Continues_Hindi.indd 26 16/07/25 11:25 AM

प्रदूषण वायुमंडलीय परत की सीमा में पहुंचता है, तो वह स्थिर हो जाता है और लंबी दूरी तय कर सकता है। जबकि, धरती की सतह के करीब मौजूद ब्लैक कार्बन का उत्सर्जन स्थानीय स्त्रोतों से अधिक होता है। जब प्रदूषण सीमा परत तक पहुंचता है, तो यह स्थिर हो जाता है और लंबी दूरी तय करता है। जमीनी स्तर पर ब्लैक कार्बन स्थानीय स्त्रोतों से अधिक होता है। ■

Slow Murder Continues_Hindi.indd 27 16/07/25 11:25 AM

स्वास्थ्य आपातकाल: अमिट काले धब्बे

प्रदूषित हवा के कारण भारतीयों की मृत्यु समय से पहले हो रही है और इसका असर गर्भधारण से पहले ही शुरू हो जाता है

साल 2021 में वायु प्रदूषण दुनिया में उच्च रक्तचाप के बाद दूसरा सबसे बड़ा हत्यारा साबित हुआ। इसकी वजह से कुल 81 लाख लोगों की मृत्यु हुई। इनमें से दक्षिण एशिया में ही 26 लाख मौतें दर्ज की गईं। इससे जुड़ी बीमारियां न केवल जानलेवा हैं, बल्कि लंबे समय तक जीवन की गुणवत्ता को भी प्रभावित करती हैं। एक अरब से अधिक की आबादी वाले भारत में 21 लाख लोगों की जान वायु प्रदूषण के कारण चली गई, जिनमें से 2.37 लाख मौतें ओजोन के प्रदूषण से जुड़ी थीं। लेकिन, 5 साल से कम उम्र के 7 लाख से अधिक बच्चों की मौतें झकझोर देने वाला आंकड़ा था जिसने दुनिया भर में बच्चों के लिए वायु प्रदूषण को कुपोषण के बाद दूसरा सबसे बड़ा खतरा बना दिया। इनमें से 5 लाख से अधिक बच्चों की मौतें अफ्रीका और एशिया में घर के भीतर पैदा हुए वायु प्रदूषण के कारण हुईं। इस वायु प्रदूषण की वजह खाना पकाने के लिए इस्तेमाल हुआ खराब ईंधन था। इनमें से 2,60,600 से अधिक बच्चों

Slow Murder Continues_Hindi.indd 28 16/07/25 11:25 AM

की मौतें सिर्फ दक्षिण एशिया में ही दर्ज की गईं। ये आंकड़े बताते हैं कि घरेलू वायु प्रदूषण इन क्षेत्रों में रहने वाले बच्चों के लिए बड़ा खतरा बना हुआ है। दक्षिण एशिया में पांच साल से कम उम्र के बच्चों में वायु प्रदूषण से जुड़ी मृत्यु दर 1,00,000 बच्चों पर 164 थी, जबकि वैश्विक औसत 108/100,000 था। मौतों के ये आंकड़े तब भी इतने ज्यादा रहे, जब खाना पकाने के लिए स्वच्छ ऊर्जा तक बढ़ती पहुंच, बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं, पोषण और जागरुकता के कारण साल 2000 के बाद मृत्यु दर में 53 प्रतिशत की गिरावट आ चुकी थी। प्रदूषित हवा बच्चों में निमोनिया, श्वसन संक्रमण और एलर्जिक रोगों का बड़ा कारण बन रही है।

ये भयावह आंकड़े "स्टेट ऑफ ग्लोबल एयर 2024 (एसओजीए)" रिपोर्ट से सामने आए हैं, जिसे अमेरिका स्थित हेल्थ इफेक्ट्स इंस्टीट्यूट (एचईआई) और इंस्टिट्यूट फॉर हेल्थ मेट्रिक्स एंड इवैल्यूएशन (आईएचएमई) के ग्लोबल बर्डन ऑफ डिजीज (जीबीडी) प्रोजेक्ट ने संयुक्त रूप से तैयार किया है। ये नतीजे करीब 200 देशों में साल 2021 के लिए अनुमानित बीमारियों के बोझ से जुड़े थे। एसओजीए रिपोर्ट का नेतृत्व करने वाली एचईआई की ग्लोबल हेल्थ प्रमुख पल्लवी पंत ने कहा, "यह नई रिपोर्ट इस बात को पूरी गंभीरता से याद दिलाती है कि वायु प्रदूषण का मानव स्वास्थ्य पर कितना गहरा असर पड़ता है और इसका अधिकतर बोझ छोटे बच्चों, बुजुर्गों और निम्न व मध्यम आय वाले देशों को उठाना पड़ता है।"

वायु प्रदूषण के स्वास्थ्य पर प्रभाव का पता लगाने वाली इस सालाना रिपोर्ट का मुख्य फोकस पीएम 2.5 और ओजोन पर बना हुआ है, लेकिन इस बार पहली बार रिपोर्ट में नाइट्रोजन डाईऑक्साइड (एनओ2) को भी जोखिम मूल्यांकन में शामिल किया गया है। हालांकि, वायु प्रदूषण से पड़ने वाले बीमारियों के बोझ के 90 फीसदी से अधिक हिस्से के लिए भले ही पीएम 2.5 (घरेलू और बाह्य दोनों मिलाकर) जिम्मेदार है, लेकिन एनओ और ओजोन भी अब वैश्विक स्तर पर बढ़ते जोखिम कारक बन चुके हैं। एनओ के संपर्क पर नए फोकस ने इस ओर ध्यान खींचा है कि घनी आबादी वाले शहरी क्षेत्रों में वाहनों से निकलने वाले धुएं के कारण स्वास्थ्य जोखिम लगातार बढ़ रहा है। यह बचपन में ही अस्थमा हो जाने के प्रमुख कारणों में से एक है। रिपोर्ट के अनुसार, अध्ययन में शामिल 194 देशों में से 55 प्रतिशत देश अब भी

विश्व स्वास्थ्य संगठन की वार्षिक वायु गुणवत्ता गाइडलाइन (10 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर) को पूरा नहीं करते। इसके कारण दुनिया की 42 प्रतिशत आबादी एनओ के अस्वीकार्य स्तरों के संपर्क में है। रिपोर्ट में बताया गया है कि पीएम 2.5 के विपरीत एनओ के सबसे अधिक जोखिम वाले शीर्ष 10 देशों में से 7 पश्चिम एशिया के उच्च आय वाले देश हैं, जिनमें बहरीन, कतर, कुवैत, लेबनान और संयुक्त अरब अमीरात शामिल हैं। इसके अलावा रूस और तुर्की में भी एनओ का स्तर अधिक पाया गया। सिंगापुर, जापान और कनाडा जैसे उच्च सामाजिक-विकास सूचकांक (एसडीआई) वाले देशों में भी उच्चतम स्तर का एनओ एक्सपोजर दर्ज किया गया है।

2021 में एनओ2 के संपर्क में आने से बच्चों और किशोरों के जीवन के 1,77,000 स्वस्थ वर्ष नष्ट हो गए। रिपोर्ट में यह चेतावनी भी दी गई कि लंबे समय तक वाहन जनित वायु प्रदूषण के संपर्क में रहने और हृदय रोग, फेफड़ों के कैंसर, बच्चों और वयस्कों में अस्थमा और बच्चों में बेहद गंभीर श्वसन संक्रमण के कारण समय से पहले होने वाली मौतों के बीच गहरा संबंध है। एनओ ओजोन बनने में उत्प्रेरक की भूमिका निभाता है। यह वायुमंडल में दूसरे केमिकल्स के साथ मिलकर पार्टिकुलेट मैटर और ओजोन दोनों बनाता है। एसओजीए की रिपोर्ट के अनुसार, करीब 4.9 लाख लोगों की जान ओजोन की वजह से गई। इनमें पश्चिम एशिया (कतर, बहरीन, कुवैत, सऊदी अरब, इराक), दक्षिण एशिया (नेपाल, भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान) और पूर्व एशिया (दक्षिण कोरिया) के देशों में 2020 में सबसे अधिक ओजोन एक्सपोजर दर्ज किया गया।

दक्षिण एशिया में भी ओजोन का स्तर बढ़ा है। 2021 में दुनिया भर में ओजोन की वजह से हुई मौतों में से 56 फीसदी जानें इसी क्षेत्र में हुई थीं। रिपोर्ट में बताया गया है कि अमेरिका में आंशिक तौर पर इसकी बड़ी आबादी, फैला हुआ ओजोन का प्रदूषण और क्रॉनिक ऑब्सट्रक्टिव पल्मोनरी डिजीज (सीओपीडी) की उच्च दर के कारण 2021 में 14,000 मौतें हुईं, जो किसी भी अन्य उच्च आय वाले देश की तुलना में सबसे अधिक है। 2010 से अब तक ओजोन से जुड़ी सीओपीडी मौतों की संख्या में 20 फीसदी तक बढ़ोतरी हुई है। आने वाले वर्षों में जैसे-जैसे लोगों की उम्र बढ़ेगी, इन मौतों में और बढ़ोतरी की आशंका है।

दक्षिण एशिया, विशेषकर भारत अब भी कणीय प्रदूषण (पीएम) जनित स्वास्थ्य संकट का सबसे बड़ा भार झेल रहा है। लेकिन अब ओजोन प्रदूषण के उच्च स्तर का सामना करने वाली आबादी की संख्या भी भारत, नाइजीरिया, पाकिस्तान और ब्राजील में बढ़ रही है। इन देशों में पिछले दशक में बाह्य ओजोन एक्सपोजर में 10 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि दर्ज की गई है। एक तरफ भारत समेत दक्षिण एशिया पार्टिकुलेट मैटर के प्रदूषण से जुड़े स्वास्थ्य संकट का सबसे बड़ा खामियाजा झेल रहा है, तो दूसरी तरफ भारत, नाइजीरिया, पाकिस्तान और ब्राजील में ओजोन के उच्च स्तर प्रदूषण का सामना करने वाली आबादी की संख्या भी बढ़ रही है। इन देशों में पिछले एक दशक में बाहरी वातावरण में उच्च स्तर के ओजोन एक्सपोजर में 10 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि दर्ज की गई है। एक-एक अरब से अधिक की आबादी वाले देशों भारत और चीन में क्रमशः 21 लाख और 23 लाख मौतें दर्ज की गईं। दुनिया भर में पार्टिकुलेट मैटर की वजह से होने वाली बीमारियों के बोझ 55 फीसदी हिस्सा इन दोनों देशों को उठाना पड़ा। 2021 में दुनिया भर में ओजोन से संबंधित कुल सीओपीडी मौतों में से करीब 50 फीसदी भारत में हुई थीं, इसके बाद चीन और बांग्लादेश का स्थान था।

एसओजीए रिपोर्ट में "जलवायु दंड" शब्द का खासतौर पर उल्लेख किया गया है। इसमें बताया गया है कि खासतौर पर हीटवेव के दौरान जब हवा गर्म होती है, तब ओजोन बनाने वाली रासायनिक प्रतिक्रियाएं बढ़ जाती हैं। साक्ष्यों से पता चला है कि चीन और यूरोप में हीटवेव के दौरान ओजोन के स्तर में तेज बढ़ोतरी दर्ज की गई। गौरतलब है कि ओजोन एक ग्रीनहाउस गैस भी है और इसके संपर्क में आने से सीओपीडी जैसे गंभीर और दीर्घकालिक श्वसन रोगों का खतरा बढ़ जाता है। यही नहीं, ओजोन का असर फसलों, वनस्पतियों और जैव विविधता पर भी पड़ता है। इसकी वजह से फसलों की पैदावार में कमी आ सकती है, जैव विविधता को नुकसान पहुंच सकता है, खाद्य सुरक्षा और पोषण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। हीटवेव के दौरान जलवायु परिवर्तन दिल और फेफड़ों की बीमारियों सहित गैर-संचारी रोगों के बोझ को बढ़ा सकता है।

बाहरी और घरेलू वायु प्रदूषण के बीच एक छुपा हुआ, लेकिन गहरा रिश्ता है। भारत सरकार के केंद्रीय स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के

अधीन "स्टीयरिंग कमेटी ऑन एयर पॉल्यूशन एंड हेल्थ" की 2015 की रिपोर्ट के अनुसार, घर के भीतर पैदा होने वाला वायु प्रदूषण भी बाहर के वायु प्रदूषण को 25-30 प्रतिशत तक बढ़ा सकता है। घर में होने वाले वायु प्रदूषण के प्रभाव पर भारत में महामारी विज्ञान से संबंधित कई अध्ययन हुए हैं। चेन्नई के श्री राम मेडिकल कॉलेज की कल्पना बालकृष्णन और उनकी टीम ने देश की पहली "मदर–चाइल्ड कोहोर्ट स्टडी" की है। इस रिसर्च में गर्भावस्था के दौरान पीएम 2.5 के संपर्क और नवजात शिशुओं के वजन में गिरावट के बीच के संबंध को ट्रैक किया गया। इससे पता चला कि गर्भावस्था के दौरान पीएम 2.5 के संपर्क में 10 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर की बढ़ोतरी होने से जन्म के समय शिशु के वजन में औसतन 4 ग्राम वजन की कमी आ सकती है जिससे कम वजन वाले बच्चों की संख्या में 2 प्रतिशत तक वृद्धि देखी गई। वहीं, जिन घरों में ठोस ईंधन का इस्तेमाल किया जाता है, वहां शिशुओं के जन्म में औसतन 70 ग्राम तक की गिरावट पाई गई।

हालांकि, मार्च 2023 में प्रकाशित एक वैश्विक अध्ययन "ग्लोबल, रीजनल, एंड नेशनल बर्डन ऑफ एंबिएंट एंड हाउसहोल्ड पीएम 2.5 रिलेटेड नियोनेटल डिसऑर्डर्स, 1990-2019" के अनुसार, घरेलू पीएम 2.5 के कारण होने वाले वैश्विक नवजात विकारों के बोझ में पिछले 30 वर्षों में 38.35 प्रतिशत की कमी आई है। इकोटॉक्सिकोलॉजी एंड एनवायरनमेंटल सेफ्टी में प्रकाशित अध्ययन के अनुसार, इसकी प्रमुख वजह इस दौरान घरेलू पीएम 2.5 से जुड़े नवजात रोगों में 52.33 प्रतिशत की गिरावट दर्ज हुई है। आईएचएमई की रिपोर्ट "स्टेट ऑफ ग्लोबल एयर 2019" के अनुसार, भारत में खाना पकाने के लिए 2005 में 76 प्रतिशत घरों में ठोस ईंधन का इस्तेमाल किया जाता था, जो 2017 में घटकर 60 प्रतिशत पर आ गया। यह कमी देश में एलपीजी जैसी स्वच्छ ऊर्जा की उपलब्धता में हुए सुधार के बाद आई है। हालांकि, अभी भी निम्न आय वर्ग के बीच ठोस ईंधन का इस्तेमाल अधिक हो रहा है और पीएम 2.5 से होने वाले नवजात रोगों के दो तिहाई बोझ के लिए यही ठोस ईंधन जिम्मेदार है।

8 अप्रैल, 2022 को साइंस एडवांस में प्रकाशित एक शोध के अनुसार, 2005-2018 के दौरान भारत के प्रमुख महानगरों में वायु प्रदूषण के कारण एक लाख से ज्यादा लोगों की असमय जान चली गई। बेंगलुरु, हैदराबाद,

Slow Murder Continues_Hindi.indd 32 16/07/25 11:25 AM

कोलकाता और पुणे उन शहरों में हैं, जहां प्रति एक लाख जनसंख्या पर असमय मौतें सबसे ज्यादा रहीं। इस अवधि के दौरान बेंगलुरु में प्रति लाख 93.9, हैदराबाद में 96.4, कोलकाता में 82.1 और पुणे में 73.6 असमय मौतें हुईं। मुंबई, सूरत, चेन्नई और अहमदाबाद में भी प्रति एक लाख जनसंख्या पर क्रमशः 65.5, 58.4, 48 और 47.7 अकाल मौतें दर्ज की गईं। इस शोध पत्र के प्रमुख लेखक और यूनिवर्सिटी कॉलेज लंदन के रिसर्च फेलो कर्ण वोहरा ने कहा, "हम उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में तेजी से बढ़ते शहरों पर अध्ययन करना चाहते थे, जिनके साल 2100 तक मेगासिटी बनने का अनुमान है और इनमें से 8 शहर भारत में हैं।"

इस अध्ययन का मकसद उन शहरों में हवा की गुणवत्ता में होने वाले दीर्घकालिक बदलावों को आंकना था, जहां ग्राउंड-लेवल मॉनिटरिंग नेटवर्क सीमित हैं। 2005 से 2018 के बीच उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में वायु प्रदूषकों का डेटा इकट्ठा करने के लिए वोहरा और उनके सहयोगियों ने नासा और यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी के उपग्रहों पर लगे उपकरणों पर भरोसा किया। वोहरा ने कहा, "उष्णकटिबंधीय क्षेत्र वायु प्रदूषण का नया केंद्र हैं, जहां जनसंख्या अभूतपूर्व गति से बढ़ रही है, लेकिन प्रदूषण से निपटने के लिए नीतियां और बुनियादी ढांचा अब तक नहीं विकसित हो पाया है।"

शोध में यह पाया गया कि 2005 से 2018 के बीच पूरी दुनिया में वायु प्रदूषकों का स्तर हर साल लगातार बढ़ा। उष्णकटिबंधीय शहरों में वायुमंडल में नाइट्रोजन डाइऑक्साइड (एनओ2) में 14 फीसदी तक बढ़ गई, जबकि पार्टिकुलेट मैटर (पीएम 2.5) की मात्रा 8 फीसदी बढ़ी। टीम ने पाया कि 2005 में कोलकाता में 39,200, अहमदाबाद में 10,500, सूरत में 5,800, मुंबई में 30,400, पुणे में 7,400, बेंगलुरु में 9,500, चेन्नई में 11,200 और हैदराबाद में 9,900 अकाल मौतें दर्ज की गई थीं। 2018 में ये आंकड़े कोलकाता के लिए बढ़कर 54,000, अहमदाबाद के लिए 18,400, सूरत के लिए 15,000, मुंबई के लिए 48,300, पुणे के लिए 15,500, बेंगलुरु के लिए 21,000, चेन्नई के लिए 20,800 और हैदराबाद के लिए 23,700 हो गए। कुल मिलाकर, भारत में 2005 में लंबे समय तक पीएम 2.5 के संपर्क में रहने से 1,23,900 अकाल मौतें हुईं, जो 2018 में बढ़कर 2,23,200 तक पहुंच गईं।

Slow Murder Continues_Hindi.indd 33 16/07/25 11:25 AM

खराब हवा की वजह से भारत के लोग अपनी उम्र का एक बड़ा हिस्सा खो रहे हैं। 2022 में यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो द्वारा प्रकाशित एक विश्लेषण रिपोर्ट के अनुसार, दिल्ली दुनिया की सबसे प्रदूषित राजधानी मानी जाती है और इस कारण यहां के लोगों की उम्र में औसतन 10 साल तक की कमी आ रही है। वायु प्रदूषण के कारण हर भारतीय की उम्र औसतन 5 साल कम हो रही है। शिकागो विश्वविद्यालय के द एनर्जी पॉलिसी इंस्टीट्यूट की तरफ से जुलाई 2022 में जारी एयर क्वालिटी लाइफ इंडेक्स (एक्यूएलआई) के अनुसार, उम्र में कम हो रहे सालों का आकलन डब्ल्यूएचओ द्वारा निर्धारित पीएम 2.5 की गाइडलाइन (5 माइक्रोग्राम प्रति घनमीटर) के आधार पर किया गया है। यह रिपोर्ट कहती है कि अगर हमारे देश की हवा विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानकों जितनी साफ होती, तो हम 5 साल ज्यादा जीते। यह बहुत गंभीर बात है, क्योंकि बाल और मातृ कुपोषण से उम्र 1.8 साल घटती है और धूम्रपान से लगभग 2 साल। इसका मतलब है कि वायु प्रदूषण, कुपोषण और धूम्रपान से भी ज्यादा खतरनाक है।

भारत की पूरी 1.4 अरब आबादी ऐसी हवा में सांस ले रही है, जिसमें पीएम 2.5 स्तर डब्ल्यूएचओ की सीमा से कहीं ऊपर है। 63 प्रतिशत आबादी तो भारत के अपने राष्ट्रीय मानक 40 माइक्रोग्राम प्रति घनमीटर से भी अधिक प्रदूषित हवा में जी रही है। भारत की करीब 40 फीसदी आबादी वहां के इंडो-गैंगेटिक क्षेत्र में रहती है, जिसमें बिहार, चंडीगढ़, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल आते हैं। इन राज्यों में रहने वाले लोग औसतन 7.6 साल की जीवन प्रत्याशा खो रहे हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि अगर मौजूदा प्रदूषण स्तर ऐसा ही बना रहता है, तो लखनऊ में रहने वालों की उम्र में 9.5 साल कम हो जाएंगे। अगर डब्ल्यूएचओ के प्रदूषण स्तर के मानक पूरे हो जाएं, तो उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा और त्रिपुरा के लोगों की उम्र सबसे ज्यादा बढ़ जाएगी। उत्तर प्रदेश के लोगों की औसत उम्र में 8.2 साल, बिहार के लोगों की उम्र में 7.9 साल, हरियाणा में 7.4 साल और त्रिपुरा में रहने वालों की उम्र में 6 साल की बढ़ोतरी होगी।

रिपोर्ट में बताया गया है कि “1998 से अब तक भारत में औसत वार्षिक पीएम 2.5 प्रदूषण 61.4 प्रतिशत बढ़ चुका है, जिससे जीवन प्रत्याशा में 2.1 साल की अतिरिक्त गिरावट आई है। 2013 के बाद से विश्व स्तर पर वायु

Slow Murder Continues_Hindi.indd 34 16/07/25 11:25 AM

प्रदूषण में हुई कुल वृद्धि का 44 प्रतिशत हिस्सा अकेले भारत से आया है।"

स्थानीय और वैश्विक स्तर पर ऐसे बेशुमार प्रमाण मौजूद हैं, जिनसे साबित होता है कि वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए तत्काल कार्रवाई की जानी चाहिए। इसके बावजूद बहुत से लोग यह नहीं समझ पाते कि वायु प्रदूषण कैसे गंभीर बीमारियों और मौतों की वजह बन रहा है।

2013 में दक्षिण लंदन में घटी एक दर्दनाक घटना से भी यह बात और स्पष्ट हो चुकी है, जिसमें 9 साल की एला किस्सी डेब्राह की बेहद तेज अस्थमा अटैक के कारण जान चली गई। बच्ची की मां ने अदालत का दरवाजा खटखटाया और कहा कि वायु प्रदूषण ही उनकी बेटी की मौत का असली कारण था। आखिरकार, इस मामले में 2020 में एक ऐतिहासिक फैसला और कोरोनर की रिपोर्ट सामने आई, जिसमें पहली बार वायु प्रदूषण को किसी व्यक्ति की मृत्यु का औपचारिक कारण माना गया। एला इस तरह दुनिया की पहली ऐसी इंसान बनीं, जिनकी मौत के लिए वायु प्रदूषण को जिम्मेदार ठहराया गया।

इस संबंध में डॉ. कल्पना बालाकृष्णन बताती हैं, "विज्ञान में प्रमाणों की कमी कभी पूरी तरह समाप्त नहीं होती। लेकिन, प्रदूषण के जोखिम और प्रभाव को समझने के लिए पहले से ही पर्याप्त प्रमाण मौजूद हैं। यह बात भी याद रखी जानी चाहिए कि अगर किसी चीज का सबूत नहीं मिला है, तो इसका मतलब यह नहीं है कि उस चीज का अस्तित्व ही नहीं है। प्रमाण की अनुपस्थिति, अनुपस्थिति का प्रमाण नहीं होती।" और भारत में तो हर पल यही देखते हैं कि जहरीली हवा में सांस लेना धीरे-धीरे क्रूरता के साथ जान लेना है।

3 नवंबर 2023 की रात, जब दिल्ली में अंधेरा छाया हुआ था, सांस की तकलीफ से परेशान सैकड़ों हांफते, खांसते बच्चे चाचा नेहरू बाल चिकित्सालय ओपीडी और इमरजेंसी वार्ड में पहुंच गए। हालात इतने भयावह थे कि पूर्वी दिल्ली के सरकारी सुपर स्पेशियलिटी बाल अस्पताल में नेब्युलाइजर और बेड कम पड़ गए। डॉक्टरों को इस संकट का अंदेशा पहले से था, क्योंकि अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से ही राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली की औसत वायु गुणवत्ता लगातार 6 दिनों तक "बहुत खराब" श्रेणी में बनी रही और 3 नवंबर को यह "गंभीर" हो गई और वायु गुणवत्ता सूचकांक (एक्यूआई) 468 तक पहुंच गया, जबकि 100 के ऊपर एक्यूआई को ही

Slow Murder Continues_Hindi.indd 35 16/07/25 11:25 AM

स्वास्थ्य के लिए हानिकारक माना जाता है। राष्ट्रीय राजधानी और आसपास के इलाकों के डॉक्टर हर साल सर्दियों में इस मौसमी कहर से परिचित हैं। धूल और धुएं से दम घोंटती हवा के बीच, अस्पतालों में सांस से जुड़ी बीमारियों के मरीजों की बाढ़ आ जाती है। केंद्र सरकार द्वारा संचालित देश के प्रमुख अस्पतालों में से एक अटल बिहारी वाजपेयी आयुर्विज्ञान संस्थान और डॉ. राम मनोहर लोहिया (एबीवीआईएमएस-आरएमएल) अस्पताल के निदेशक व चिकित्सा अधीक्षक अजय शुक्ला ने कहा कि गंभीर प्रदूषण वाले दिनों में अस्पताल में सांस की बीमारियों से परेशान मरीजों में 30 फीसदी तक का इजाफा हो जाता है। लेकिन, 3 नवंबर को बढ़े प्रदूषण के बाद बने हालात सारे अनुमानों से बहुत ज्यादा था।

6 नवंबर 2023 को एबीवीआईएमएस-आरएमएल अस्पताल में देश की पहली साप्ताहिक "प्रदूषण ओपीडी" शुरू की गई, जो प्रदूषण से प्रभावित मरीजों के लिए समर्पित है। डॉ. अजय शुक्ला ने बताया कि इस पहल का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि खांसी से लेकर आंखों में जलन और सिरदर्द तक, प्रदूषण से संबंधित हर लक्षण के मरीजों को एक ही जगह पर अलग-अलग विशेषज्ञ डॉक्टरों द्वारा देखा जा सके। उत्तर दिल्ली स्थित वल्लभभाई पटेल चेस्ट इंस्टीट्यूट (वीपीसीआई) में भी अस्पताल के कर्मचारियों में चिंताजनक आंकड़े साझा किए। 2 से 10 नवंबर के बीच अस्पताल में हर दिन औसतन 50 नए मरीज भर्ती हुए, जो सांस की बीमारियों से परेशान थे। सबसे ज्यादा परेशान करने वाली बात यह थी कि इनमें से अधिकतर मरीज 14 साल से कम उम्र के बच्चे थे। एबीवीआईएमएस-आरएमएल अस्पताल के इमरजेंसी वार्ड के एक वरिष्ठ रेजिडेंट डॉक्टर अंबावसन ए ने बताया कि सांस की समस्या वाले बच्चों से अस्पताल भर गया था। इनमें से बहुत से बच्चों की हालत बेहद गंभीर थी। मरीजों की संख्या और लक्षणों की तीव्रता सीधे प्रदूषण स्तर पर निर्भर कर रही थी।" चाचा नेहरू बाल चिकित्सालय की एंडोक्राइनोलॉजिस्ट मेधा मित्तल ने कहा, "दिल्ली के वायु प्रदूषण के कारण बच्चों में सांस संबंधी बीमारियां तेजी से बढ़ रही हैं।"

बच्चे वयस्कों की तुलना में वायु प्रदूषण के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं और इसके पीछे कई वैज्ञानिक कारण हैं। बच्चों, खासकर नवजात और शिशुओं का श्वसन तंत्र पूरी तरह विकसित नहीं होता, इसीलिए वे पर्याप्त

Slow Murder Continues_Hindi.indd 36 16/07/25 11:25 AM

वाह! अब किसी का दम घुटने पर हम
अस्पताल पहुंच सकते हैं

ऑक्सीजन रक्त में पहुंचाने के लिए वयस्कों की तुलना में तेजी से सांस लेते हैं। बच्चों का मेटाबॉलिक रेट भी ज्यादा होता है, यानी वे ऊर्जा को तेजी से उपयोग करते हैं। इससे उनकी ऑक्सीजन की मांग बढ़ जाती है और इसी कारण उनकी सांस लेने की दर भी वयस्कों से कहीं ज्यादा होती है। अध्ययन बताते हैं कि बच्चे औसतन प्रति मिनट 40 बार सांस लेते हैं, जो वयस्कों की तुलना में दोगुनी दर है। जर्मनी और चेक गणराज्य के शोधकर्ताओं द्वारा 4 जून, 2022 को "अर्बन क्लाइमेट" में प्रकाशित एक अध्ययन में कहा गया है, "बच्चे अपने शरीर के आकार के अनुपात में अधिक हवा सांस में लेते हैं और वयस्कों की तुलना में उनके श्वसन मार्ग छोटे होते हैं, इस कारण अस्थमा जैसी बीमारियों का खतरा बच्चों में अधिक होता है।"

बच्चों द्वारा सांस के साथ लिए जाने वाले वायु प्रदूषकों में से सबसे खतरनाक है पीएम 2.5 यानी 2.5 माइक्रोन से छोटे महीन कण, जो वाहनों, उद्योगों और कचरा जलाने जैसी स्थानीय गतिविधियों से निकलते हैं और जहरीले रसायनों से लिपटे होते हैं। ये कण लाल रक्त कोशिकाओं से भी छोटे होते हैं और फेफड़ों में गहराई तक जा सकते हैं, फिर वहां से रक्त प्रवाह में प्रवेश कर सकते हैं और यहां तक कि ब्रेन-ब्लड बैरियर को भी पार कर सकते हैं। इन सूक्ष्म कणों से सैकड़ों ज्ञात और अज्ञात बीमारियों का खतरा जुड़ा हुआ है। जर्मन और चेक शोधकर्ताओं के अध्ययन में पाया गया कि जर्मन और चेक गणराज्य के शोधकर्ताओं ने शहरी क्षेत्र में बच्चों और वयस्कों के बीच पीएम 2.5 के संपर्क में संभावित अंतर की जांच की और पाया कि जैसे-जैसे जमीन से ऊंचाई बढ़ती है, पीएम 2.5 की सांद्रता घटती है। लेकिन, बच्चों का सांस लेने का स्तर जमीन के बहुत करीब होता है, इसलिए ट्रैफिक से निकलने वाले प्रदूषक और जमीन से उड़ते सूक्ष्म कण बच्चों को अधिक प्रभावित करते हैं।

गुरुग्राम के मेदांता में इंस्टीट्यूट फॉर चेस्ट सर्जरी-चेस्ट ऑन्को सर्जरी एंड लंग ट्रांसप्लांटेशन के चेयरपर्सन और लंग केयर फाउंडेशन के संस्थापक अरविंद कुमार ने डाउन टू अर्थ पत्रिका के साथ फेफड़ों की कुछ तस्वीरें साझा कीं, ताकि खराब वायु गुणवत्ता वाले क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के श्वसन स्वास्थ्य पर वायु प्रदूषण के प्रभाव को दिखाया जा सके। कुमार ने बताया, "स्वस्थ फेफड़े एकदम गुलाबी दिखाई देते हैं। हालांकि, हम धूम्रपान न करने वाले लगभग उन सभी वयस्कों और 14 साल तक की उम्र के बच्चों के फेफड़ों

में भी काले रंग का जमाव देखते हैं, जो हमारे पास सांस की बीमारियों का इलाज कराने आते हैं। फेफड़ों में जम चुके ये काले धब्बे हटाए नहीं जा सकते और धीरे-धीरे उन्हें नुकसान पहुंचाते रहते हैं।" उन्होंने बताया कि वयस्कों की तुलना में बच्चे ज्यादा जहरीली हवा में सांस ले रहे हैं।

बच्चों के स्वास्थ्य पर वायु प्रदूषण का असर उनके गर्भधारण से पहले ही शुरू हो जाता है। पुरुष और महिला, दोनों की प्रजनन क्षमता पर बुरे असर से इसकी शुरुआत होती है। 1 फरवरी, 2023 को *एनवायर्नमेंटल रिसर्च* में प्रकाशित चीन के एक अध्ययन में पाया गया कि वायु प्रदूषण के संपर्क में आने से महिलाओं के अंडाशय में बचे अंडों की मात्रा और उनकी गुणवत्ता में गिरावट आने लगती है। चीन में महिलाओं पर किए गए अध्ययन से पता चला है कि वायु प्रदूषण बढ़ने के साथ ही एंटी-म्यूलरियन हार्मोन में कमी आने लगती है। एंटी-म्यूलरियन हार्मोन एक प्रोटीन हार्मोन है, जिससे पता चलता है कि किसी महिला की डिम्बग्रंथि में कितने अंडे बचे हैं। शोध के मुताबिक, पीएम 1, पीएम 2.5, पीएम 10 और एनओ 2 में हर 10 माइक्रोग्राम प्रति घनमीटर बढ़ोतरी पर एंटी-म्यूलरियन हार्मोन में क्रमशः -8.8%, -2.1%, -1.9% और -4.5% की गिरावट आई। शोधकर्ताओं के मुताबिक, "पीएम 1 जैसे सूक्ष्म पार्टिकुलर मैटर अपने छोटे आकार और बड़े सतही क्षेत्रफल की वजह से फेफड़ों की पतली रक्त वाहिकाओं को पार करके सीधे रक्त प्रवाह में पहुंच सकते हैं और ओवरी के कार्यों को प्रभावित कर सकते हैं।" हालांकि, वायु प्रदूषकों के कारण महिलाओं की प्रजनन क्षमता में गिरावट के इस पूरे तंत्र को वैज्ञानिक अब तक स्पष्ट नहीं कर पाए हैं, लेकिन सीमित साक्ष्यों के आधार पर ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस और सूजन के प्रति होने वाली प्रतिक्रिया को इसकी प्रमुख वजह माना जा रहा है। इसी तरह, चीन में 33,876 पुरुषों पर किए गए एक अन्य अध्ययन से पता चला कि पीएम 2.5 और पीएम 10 के संपर्क में आने से स्पर्म की कुल और सक्रिय गतिशीलता में कमी आती है। यह शोध पत्र 17 फरवरी, 2022 को *जामा नेटवर्क्स* में प्रकाशित किया गया।

अगर सभी प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद गर्भधारण हो भी जाता है, तब भी वायु प्रदूषण गर्भ में शिशु के विकास को बाधित कर सकता है, क्योंकि प्रदूषक गर्भनाल को पार कर सीधे भ्रूण के रक्त में प्रवेश कर सकते हैं। जून 2017 में *जर्नल ऑफ फैमिली एंड रिप्रोडक्टिव हेल्थ* में प्रकाशित ईरान के एक

Slow Murder Continues_Hindi.indd 39 16/07/25 11:25 AM

अध्ययन में शोधकर्ताओं ने पाया कि गर्भावस्था की पहली तिमाही में वायु प्रदूषण के संपर्क में आने से प्लेसेंटा के वजन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्लेसेंटा भ्रूण के विकास को बनाए रखने वाला महत्वपूर्ण अंग है। द *लैंसेट प्लैनेटरी हेल्थ* में प्रकाशित अध्ययनों की एक व्यापक समीक्षा में बताया गया कि कॉर्ड ब्लड यानी गर्भनाल के रक्त में ब्लैक कार्बन के कण पाए गए, जो भ्रूण के यकृत, फेफड़ों और मस्तिष्क तक पहुंच जाते हैं। इन प्रदूषकों की उपस्थिति विकसित हो रहे भ्रूण को लगातार नुकसान पहुंचाती रही है, जिससे समय से पहले जन्म का खतरा बढ़ गया। इसके परिणामस्वरूप, मृत बच्चे के जन्म, जन्म के समय वजन कम होने, नवजात के फेफड़ों के अविकसित होने और जन्म के समय या उसके तुरंत बाद उसकी मृत्यु जैसे खतरों की आशंका बढ़ जाती है।

बाबा राघव दास (बीआरडी) मेडिकल कॉलेज, गोरखपुर में स्त्री रोग विभाग के पूर्व अध्यक्ष सुधीर गुप्ता कहते हैं कि प्रदूषण के कारण गर्भवती महिलाओं को पर्याप्त ऑक्सीजन नहीं मिल पाती, जो भ्रूण के प्राकृतिक विकास को प्रभावित करती है। इसके अलावा वायु प्रदूषण में सल्फर की मात्रा जितनी अधिक होगी, गर्भपात का खतरा उतना ही अधिक होगा। बीआरडी मेडिकल कॉलेज के बाल रोग विभाग के अध्यक्ष भूपेन्द्र शर्मा कहते हैं कि वायु प्रदूषण के कारण गर्भवती महिलाओं में अनीमिया भी हो सकता है, जिससे स्वस्थ बच्चे को जन्म देने की संभावना कम हो जाती है।

कई अध्ययनों से पता चला है कि अगर बच्चा गर्भ में प्रदूषकों के हमले से बच भी जाता है, तो जन्म से पहले और बाद में प्रदूषण के संपर्क में आने से उसके मानसिक और शारीरिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ सकता है। मई 2022 में *न्यूरोसाइंस एंड बिहेवियरल रिव्यूज* में प्रकाशित 30 शोध पत्रों की समीक्षा में कहा गया है कि वायु प्रदूषण से बच्चों के बौद्धिक कौशल, स्मृति और सीखने की क्षमता, ध्यान और निर्णय लेने की शक्ति, भाषा, गणना क्षमता, मोटर व सेंसरी स्किल्स पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इनमें सबसे खतरनाक प्रदूषक पीएम 2.5, एनओ 2 और पॉलीसाइक्लिक एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन हैं। जैसे वयस्कों में वायु प्रदूषण ब्लड प्रेशर बढ़ाता है, वैसे ही गर्भावस्था के दौरान प्रदूषण के संपर्क में आने से बच्चों का ब्लड प्रेशर भी बढ़ जाता है। खासकर गर्भावस्था की तीसरी तिमाही के दौरान औसत पीएम 2.5 और ब्लैक कार्बन

Slow Murder Continues_Hindi.indd 40 16/07/25 11:25 AM

का संपर्क जितना ज्यादा होगा, नवजात का सिस्टोलिक ब्लड प्रेशर उतना ही अधिक बढ़ा होगा। गर्भावस्था में वायु प्रदूषण के संपर्क से बच्चों में जन्मजात हृदय दोष की आशंका भी बढ़ती है, जिससे जीवन की शुरुआत ही मुश्किल हो जाती है। प्रदूषण की मार से फेफड़े भी अछूते नहीं रहते। यह देखा गया है कि बचपन में वायु प्रदूषण के संपर्क में आने से फेफड़ों की क्षमता कम हो जाती है। पीएम2.5 के ज्यादा संपर्क में रहने वाले बच्चों में गंभीर श्वसन संक्रमण होने का खतरा भी बढ़ जाता है। पांच साल से कम उम्र के बच्चों पर किए गए एक सर्वेक्षण से पता चला कि पीएम 2.5 में 10 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर की वृद्धि से सांस से जुड़े संक्रमण की आशंका और अधिक बढ़ जाती है।

वायु प्रदूषण के चक्रव्यूह से आंतें भी नहीं बच पाती हैं। जन्म के पहले छह महीनों में सांस के साथ शरीर में घुसे प्रदूषक बच्चों की आंतों में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीवों की संरचना को प्रभावित करते हैं, जिससे एलर्जी, मोटापा, मधुमेह और यहां तक कि मस्तिष्क विकास पर भी गहरा असर पड़ सकता है। 2020 में *गट माइक्रोब्स* में प्रकाशित एक अध्ययन में बताया गया कि आंतों में मौजूद ये सूक्ष्मजीव और उनके उप-उत्पाद बच्चे की भूख, इंसुलिन के प्रति संवेदनशीलता, रोग-प्रतिरोधक क्षमता, मूड और संज्ञानात्मक क्षमता को आकार देते हैं। इन सूक्ष्मजीवों की विविधता में असंतुलन होने पर बच्चों में अस्थमा, टाइप-2 डायबिटीज और अन्य पुरानी, गंभीर बीमारियों की आशंका बढ़ जाती है। गर्भावस्था में वायु प्रदूषण के संपर्क में आने से बच्चे की कोशिकाओं की प्रोटीन एक्टिविटी तक में बदलाव आ जाता है। 12 सितंबर, 2023 को मिलान (इटली) में आयोजित "यूरोपीयन रेस्पिरेटरी सोसाइटी इंटरनेशनल कांग्रेस" में प्रस्तुत एक अध्ययन के मुताबिक, प्रदूषक ऑटोफैगी प्रक्रिया पर भी असर डालते हैं। तनाव के दौरान कोशिकाओं द्वारा स्वयं को खाकर मरम्मत करने की प्रक्रिया ऑटोफैगी कहलाती है। एनओ 2 (नाइट्रोजन डाइऑक्साइड) के उच्च स्तर के संपर्क से एसआईआरटी 1 नामक प्रोटीन की मात्रा घटती है, जो आमतौर पर शरीर को तनाव, सूजन और उम्र से संबंधित होने वाले नुकसानों से सुरक्षा प्रदान करता है। यूरोप के कई अध्ययनों में यह साबित हुआ है कि वाहनों से निकलने वाला धुआं न सिर्फ बच्चों के फेफड़ों को, बल्कि मस्तिष्क के न्यूरॉन्स के विकास को भी प्रभावित करता है, विशेषकर उन बच्चों में जो हाइवे या व्यस्त सड़कों के पास रहते हैं। 2013 के

एक अध्ययन में तो यातायात प्रदूषण के संपर्क और बचपन में होने वाले कई तरह के कैंसर के बीच संबंध भी पाया गया।

शोधों के अनुसार, वायु प्रदूषण के संपर्क में आने से किशोरियों के प्रजनन स्वास्थ्य पर भी असर पड़ता है। गर्भ और बाल्यावस्था के दौरान पार्टिकुलेट मैटर एंडोक्राइन (हार्मोन) सिस्टम को बाधित कर देते हैं, जिससे शरीर की प्राकृतिक प्रजनन घड़ी बिगड़ सकती है और किशोरियों में जल्दी मासिक धर्म शुरू होने की संभावना बढ़ जाती है। भारत में स्वास्थ्य विशेषज्ञ पहले से इस बात के सबूत जुटा रहे हैं कि देश में बच्चों की उच्च मृत्यु दर और खराब स्वास्थ्य की एक प्रमुख वजह वायु प्रदूषण बन चुका है। नवंबर, 2023 में एम्स, दिल्ली और आईआईटी की तरफ से संचालित राष्ट्रीय अनुसंधान नेटवर्क "कोलैबोरेशन फॉर एयर पॉल्यूशन एंड हेल्थ इफेक्ट रिसर्च, इंडिया" ने एक नीतिगत रिपोर्ट जारी की। इस रिपोर्ट में बताया गया कि वायु प्रदूषण भारत में पांच साल से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु का तीसरा प्रमुख कारक बन गया है, जबकि 14 साल से कम उम्र के बच्चों में यह दूसरा प्रमुख कारक है। 2010 के बाद से दिल्ली, पंजाब और हरियाणा में बाहरी पीएम 2.5 प्रदूषण से संबंधित बच्चों की मौतों का प्रतिशत सबसे अधिक देखा गया। भारत में हुए प्रमुख अध्ययनों की समीक्षा पर आधारित यह नीतिगत रिपोर्ट चेतावनी देती है कि अगर अभी भी कोई कार्रवाई नहीं हुई तो हमारी आने वाली पीढ़ी सांस तक नहीं ले सकेगी।

अप्रैल 2022 में *साइंस ऑफ द टोटल एनवायरनमेंट* जर्नल में प्रकाशित अध्ययन से पता चलता है कि पीएम 2.5 और शिशु, नवजात और प्रसव के तुरंत बाद मृत्यु दर के बीच संबंध हैं। अध्ययन इस बात का सबूत देता है कि पीएम 2.5 की वजह से नवजात मृत्यु दर एवं शिशु मृत्यु दर प्रभावित होती है। जर्मनी के हीडलबर्ग विश्वविद्यालय और फ्रांस के रेनेस विश्वविद्यालय के *जर्नल ऑफ एनवायरमेंटल इकोनॉमिक्स एंड मिर्जामिर* में प्रकाशित अपने अध्ययन में इस बारे में स्पष्ट तौर पर बताया गया है। मई 2022 में प्रकाशित इस शोध के अनुसार, यदि औसत प्रदूषण स्तर को विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानक तक कम कर दिया जाए, तो भारत में अविकसित और गंभीर रूप से अविकसित बच्चों में क्रमशः 10.4 और 5.17 प्रतिशत कमी आएगी।

पॉपुलेशन काउंसिल, नई दिल्ली और इंटरनेशनल डेवलपमेंट डिपार्टमेंट,

यूनिवर्सिटी ऑफ बर्मिंघम, यूके ने एक व्यापक अध्ययन किया, जिसकी रिपोर्ट जुलाई 2020 में *बीएमजे ग्लोबल हेल्थ* जर्नल में प्रकाशित हुई। इस अध्ययन के अनुसार, पीएम 10 के संपर्क से न सिर्फ बच्चों पर, बल्कि गर्भवती महिलाओं पर भी असर पड़ता है और समय से पहले प्रसव का खतरा बढ़ जाता है। पीएम 10 के स्तर में हर 10 यूनिट की बढ़ोतरी से नवजात मृत्यु दर की आशंका 6 प्रतिशत तक बढ़ जाती है।

बच्चों के स्वास्थ्य पर पीएम 2.5 के प्रभावों पर किए गए अपनी तरह के पहले अध्ययन में पाया गया कि भारत में पांच साल से कम उम्र बच्चों में पीएम 2.5 और जन्म के वक्त कम वजन (एलबीडब्ल्यू), अनीमिया, श्वसन संबंधी संक्रमण (एक्यूट रेस्पिरेटरी इंफेक्शन) के बीच एक महत्वपूर्ण संबंध है। हाल ही में 31 अक्टूबर, 2023 को *नेचर* जर्नल में प्रकाशित अध्ययन "कम्युलेटिव इफेक्ट ऑफ पीएम 2.5 कंपोनेंटस इज लार्जर देन दी इफेक्ट ऑफ पीएम 2.5 मास ऑन चाइल्ड हेल्थ इन इंडिया" से पता चला है कि पीएम 2.5 में हर 10 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर की वृद्धि होने से भारत में पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों में अस्थमा, श्वसन संक्रमण और एलबीडब्ल्यू में क्रमशः 10 प्रतिशत, 11 प्रतिशत व 5 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है। पीएम 2.5 कई अलग-अलग स्त्रोत से निकलने वाले प्रदूषकों का मिश्रण है।

इस अध्ययन से पता चला है कि भारत में बच्चों के स्वास्थ्य पर पीएम 2.5 के कुल द्रव्यमान से ज्यादा असर इसके घटकों का होता है, जिनमें अमोनिया (एनओ 3), फाइन अमोनियम (एनएच 4), एलिमेंटल कार्बन (ईसी) और ऑर्गेनिक कार्बन (ओसी) शामिल हैं। अप्रैल 2022 में दिल्ली आधारित एक और अध्ययन प्रकाशित हुआ, उसमें भी सर्दियों के दौरान पीएम 2.5 के रासायनिक घटकों के तीव्र संपर्क और मृत्यु दर के बीच संबंध पाया गया। *नेचर* पत्रिका में प्रकाशित अध्ययन की शोधकर्ता और लेखिका एकता चौधरी ने कहा, "अध्ययनों के तरीकों और डिजाइन, जैसे कि टाइम सीरीज, क्रॉस-सेक्शनल, एक्सपोजर पर आधारित स्वास्थ्य परिणाम आदि में अंतर हो सकता है, लेकिन रोचक तथ्य यह है कि इन दोनों ही अध्ययनों में एनओ 3 (नाइट्रेट) का प्रभाव सबसे अधिक देखा गया।"

जांच का एक और विषय बचपन में होने वाला कैंसर है। यह साबित करने के लिए तो काफी सबूत हैं कि वायु प्रदूषण के संपर्क में आने से वयस्कों

Slow Murder Continues_Hindi.indd 43 16/07/25 11:25 AM

को कैंसर हो सकता है, भारत में बच्चों में कैंसर और वायु प्रदूषण के इस संबंध पर शोध अभी बेहद सीमित है। आमतौर पर, दुनिया भर में शोध अध्ययनों से पता चलता है कि वायु प्रदूषण का संपर्क तीव्र माइलॉयड ल्यूकेमिया (एएमएल) और नॉन-हॉजकिन लिंफोमा से जुड़ा हुआ है। बेंजीन, एनओएक्स और पार्टिकुलेट मैटर जैसे प्रदूषकों को बच्चों में नॉन हॉजकिन लिम्फोमा के लिए जिम्मेदार माना गया है। *नेचर* जर्नल में जनवरी 2023 में प्रकाशित एक अध्ययन में पीएम 2.5 स्तर के संपर्क और बच्चों में तीव्र लिम्फोब्लास्टिक ल्यूकेमिया के जोखिम के बीच संबंध पाया गया।

राष्ट्रीय कैंसर रजिस्ट्री कार्यक्रम द्वारा नवीनतम उपलब्ध आंकड़े 2012 से 2016 तक हैं। यह आंकड़ा दिखाता है कि विभिन्न शहरों में सभी आयु वर्गों के मुकाबले शून्य से 14 साल तक के बच्चों में कैंसर का अनुपात 0.7 प्रतिशत और 3.7 प्रतिशत के बीच है। कैंसर रजिस्ट्री के मुताबिक, दिल्ली में सबसे अधिक कैंसर प्रभावित हैं। यहां प्रति 10 लाख पर 203.1 लड़के सभी प्रकार के कैंसर से प्रभावित थे, जबकि अरुणाचल प्रदेश के पासीघाट में केवल 12.2 लड़के प्रति 10 लाख थे। पटियाला की कैंसर रजिस्ट्री में प्रति 10 लाख लड़कों पर 121.2 मामले दर्ज किए गए। प्रदूषण से जूझ रही मुंबई भी 10वें स्थान पर रही। इसके अलावा 0-14 वर्ष की आयु की लड़कियों के मामले में दिल्ली में यह संख्या 125.4 प्रति 10 लाख थी, जबकि पूर्वी खासी हिल्स जिले में यह संख्या 12.1 प्रति 10 लाख थी। प्रति 10 लाख पर 74 मामलों के साथ पटियाला 9वें स्थान पर रहा।

भारत के राष्ट्रीय कैंसर रजिस्ट्री कार्यक्रम के आंकड़ों से पता चलता है कि दिल्ली भी ल्यूकेमिया से बुरी तरह प्रभावित है। यहां 0-14 वर्ष की आयु के बीच 84.2 युवा प्रति 10 लाख ल्यूकेमिया से पीड़ित मिले, जबकि मेघालय में केवल 7.3 प्रति 10 लाख युवक प्रभावित थे, वहीं 47.2 प्रति 10 लाख लड़कियां प्रभावित थीं। कछार जिले में यह केवल 4.9 प्रति 10 लाख है। लिम्फोमा के मामले में दिल्ली में लड़कों में यह संख्या 30.7 प्रति 10 लाख है, जो मेघालय में देखे गए 2.3 प्रति 10 लाख मामलों से काफी कम है। लड़कियों के मामले में, दिल्ली में लिम्फोमा के मामले तीसरे स्थान पर हैं, जो हर 10 लाख पर केवल 10 है। रिपोर्ट से यह भी पता चलता है कि अध्ययन में शामिल एशियाई देशों में दिल्ली में सबसे अधिक लड़के प्रभावित हैं, इसके

Slow Murder Continues_Hindi.indd 44 16/07/25 11:25 AM

बाद चीन का जियानमेंग है। लड़कियों के मामले में दिल्ली छठे स्थान पर है। अध्ययन में शामिल सभी देशों में लड़कों के मामले में दिल्ली छठे स्थान पर और लड़कियों के मामले में 10वें स्थान पर है।

अगर आप उत्तरी भारत के विशाल इंडो-गैंगेटिक क्षेत्र (आईजीपी) में रहते हैं, जो पूर्वी पाकिस्तान, दक्षिणी नेपाल और बांग्लादेश के अधिकतर हिस्सों तक फैला है, तो आप देश के अन्य हिस्सों के लोगों की तुलना में सात साल कम जीएंगे। यह अध्ययन 2019 में शिकागो विश्वविद्यालय के एनर्जी पॉलिसी इंस्टीट्यूट (ईपीआईसी) ने किया था। इसके अनुसार, अगर आप बिहार, चंडीगढ़, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल के राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के निवासी हैं, तो आपका औसत जीवन भारत के बाकी हिस्सों के लोगों की तुलना में कम होगा।

इसके कई कारण हैं। फसल जलाने से निकलने वाला धुआं प्रमुख कारणों में से एक है, लेकिन यह इकलौता कारण नहीं है। नासा के अनुसार, पश्चिम में थार रेगिस्तान से आने वाली धूल, मोटर वाहन उत्सर्जन, औद्योगिक और निर्माण गतिविधियां, पटाखे, और हीटिंग के साथ ही खाना पकाने के लिए जलने वाली आग भी पार्टिकुलेट मैटर और अन्य प्रदूषकों का उत्पादन करती है। नासा के मुताबिक, "भूगोल और मौसम इस क्षेत्र में हवा की गुणवत्ता को खराब कर सकते हैं। नवंबर और दिसंबर में तापमान पलटना आम बात है। जब ठंडी हवा तिब्बती पठार से नीचे आती है, तो इंडो-गैंगेटिक क्षेत्र के धुएं वाली हवा से मिल जाती है। यह उलटफेर एक ढक्कन की तरह काम करता है, जहां गर्म हवा प्रदूषकों को सतह के पास फंसा लेती है। इस तरह कम ऊंचाई पर छाई धुंध उत्तर में हिमालय और दक्षिण में विंध्य पर्वतमाला के बीच फंसकर रह जाती है।" यह खबर उन लोगों के लिए अच्छी नहीं है, जो इस क्षेत्र में रहते हैं। आईजीपी क्षेत्र में विश्व की लगभग 9 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। भारत में आईजीपी के अधिकतर हिस्से शामिल हैं और यहां देश की 40 प्रतिशत आबादी रहती है। शिकागो विश्वविद्यालय के अध्ययन के अनुसार, 1998 से 2016 के बीच आईजीपी में वायु प्रदूषण 72 प्रतिशत बढ़ गया। *डाउन टू अर्थ* ने 2019 में रिपोर्ट दी थी कि हवा में मौजूद सूक्ष्म प्रदूषण कणों का स्तर विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा तय की गई सुरक्षित सीमा से कहीं ज्यादा था। यानी, हवा उतनी साफ नहीं थी, जितनी

Slow Murder Continues_Hindi.indd 45 16/07/25 11:25 AM

डब्ल्यूएचओ के मानकों के हिसाब से होनी चाहिए।

डॉक्टरों का कहना है कि इंडो-गैंगेटिक क्षेत्र में बच्चों में श्वसन रोगों में तेजी से वृद्धि हुई है। यहां की वायु गुणवत्ता लगभग पूरे साल "खराब" श्रेणी में रहती है। पुणे की क्लाइमेट टेक्नोलॉजी कंपनी रेस्पिरर लिविंग साइंसेज प्राइवेट लिमिटेड के विश्लेषण के अनुसार, देश के 10 सबसे प्रदूषित शहरों में से 7 शहर इंडो-गैंगेटिक क्षेत्र के ही हैं। 2018 में गैर-लाभकारी संस्था क्लाइमेट एजेंडा ने उत्तर प्रदेश के 14 जिलों का अध्ययन किया और वायु प्रदूषण पर "एयर किल्स" नाम से एक रिपोर्ट जारी की। पेपर में पाया गया कि गोरखपुर और मऊ जैसे छोटे शहर राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली और यूपी की राजधानी लखनऊ से भी अधिक प्रदूषित हैं। इसमें कहा गया है कि वायु प्रदूषण से ग्रामीण क्षेत्र भी प्रभावित हैं और पूरा राज्य "स्वास्थ्य आपातकाल" का सामना कर रहा है। दिल्ली स्थित सीएसई ने अक्टूबर 2022 से फरवरी 2023 तक, सर्दियों के दौरान बिहार की वायु गुणवत्ता का विश्लेषण किया। इसमें पाया गया कि राज्य के कम से कम 10 कस्बों में पीएम 2.5 का स्तर दिल्ली से भी काफी अधिक है।

यह स्थिति चिंताजनक है। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार, इंडो-गैंगेटिक क्षेत्र वाले राज्यों पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, असम और बिहार में देश के लगभग आधे बच्चे (0-14 वर्ष) रहते हैं। वहीं, वायु प्रदूषण के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील 5 साल से कम उम्र के लगभग दो-तिहाई बच्चे भी यहीं रहते हैं। सीएसई के वैज्ञानिक मोहन पी जॉर्ज ने कहा, "आईजीपी में एक चार सप्ताह का शिशु, जिसका वजन 4 किलो है और जो प्रति मिनट 40 बार सांस लेता है, वह प्रति दिन 184 माइक्रोग्राम पीएम 2.5 सांस के जरिए ग्रहण करता है।" जॉर्ज की गणना क्षेत्र की हवा में पीएम 2.5 के 100 माइक्रोग्राम के वार्षिक औसत स्तर पर आधारित थी।

कोलकाता में नवंबर 2023 में आयोजित इंडियन एकेडमी ऑफ पीडियाट्रिक्स (आईएपी) के एक राष्ट्रीय सम्मेलन में तीन दशकों से अधिक समय से कार्यरत बाल रोग विशेषज्ञ सुभमोय मुखर्जी ने बताया, "मैं शहर के उत्तरी क्षेत्र में बच्चों का इलाज करता हूं और दावे के साथ कह सकता हूं कि पिछले कुछ दशकों में रोगियों की संख्या कई गुना बढ़ गई है, लेकिन

दीर्घकालिक और अल्पकालिक दोनों ही वास्तविक प्रभाव को बताना मुश्किल है क्योंकि आंकड़े अपर्याप्त हैं।" एक अन्य प्रसिद्ध पल्मोनोलॉजिस्ट अरूप हलदर ने बताया कि बच्चों में पहली पीढ़ी के अस्थमा के मरीज बढ़ रहे हैं। विशेषकर सर्दियों में जब वायु प्रदूषण बढ़ता है तो श्वसन संबंधी समस्याएं बढ़ रही हैं। पहले अस्थमा के रोगियों के मामले में हम आमतौर पर पारिवारिक इतिहास देखते थे, लेकिन अब बिना पारिवारिक इतिहास के बच्चे भी प्रभावित हो रहे हैं। ऐसा लगता है कि वे वायु प्रदूषण की वजह से बीमार पड़ रहे हैं।

इसी तरह, सर्दियों के दौरान जब वायु प्रदूषण बढ़ता है तो बिहार के सरकारी अस्पतालों और निजी क्लीनिकों में सांस की बीमारी की वजह से बच्चों, खासकर शिशुओं की संख्या में बढ़ जाती है। इलाज करने वाले डॉक्टरों ने इसके लिए वायु प्रदूषण को जिम्मेदार बताया। पटना स्थित सरकारी नालंदा मेडिकल कॉलेज (एनएमसीएच) में बाल चिकित्सा विभाग के प्रोफेसर अतहर अंसारी बताते हैं कि अस्पताल आने वाले करीब एक तिहाई बच्चे और नवजात शिशुओं को सांस लेने में कठिनाई हो रही होती है। डॉ. अंसारी ने कहा, "वायु प्रदूषण के कारण बच्चों में एलर्जी बढ़ रही है। हम बड़ी संख्या में बच्चों के स्वास्थ्य पर वायु प्रदूषण का प्रभाव देख रहे हैं, क्योंकि वे खराब वायु गुणवत्ता का सामना नहीं कर पा रहे हैं।" पटना मेडिकल कॉलेज एंड हॉस्पिटल (पीएमसीएच) के स्त्री रोग विभाग के एक वरिष्ठ डॉक्टर ने अपना नाम न बताने की शर्त पर कहा, "हमारे सामने ऐसे कुछ मामले आए हैं जैसे नवजात बच्चे प्रसव के तुरंत बाद नहीं रोते हैं और वायु प्रदूषण के प्रभाव के कारण उनके अति सक्रिय वायु मार्गों में ऑक्सीजन की कमी के कारण उन्हें सांस लेने में कठिनाई होती है।"

हवा के बहाव से होने वाला प्रदूषण का फैलाव इस क्षेत्र के वायु गुणवत्ता प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके लिए न केवल प्रदूषण के स्थानीय स्त्रोतों को देखना होगा, बल्कि हवा के साथ बहकर आए प्रदूषण के बाहरी स्त्रोतों पर भी ध्यान देना होगा। जहां बड़े पैमाने पर प्रदूषण होता है, वहां से हवा जिस दिशा में बहती है, उस दिशा में आने वाले इलाकों में प्रदूषण का असर सबसे ज्यादा महसूस होगा। हवा प्रदूषण को अपने साथ उड़ाकर ले जाती है और जिस तरफ वह जाती है, उधर प्रदूषण ज्यादा फैलता है। प्रदूषक लंबी दूरी तय कर सकते हैं, जिससे हवा के बहाव वाले क्षेत्रों के लिए स्वच्छ

वायु मानकों को पूरा करना कठिन हो जाता है। इस बात के सबूत पहले से मौजूद हैं कि दिल्ली जैसे शहर में प्रदूषण का 60 फीसदी हिस्सा दूसरे शहरों से आता है। जबकि, सर्दियों के दौरान उत्तर प्रदेश (यूपी) के नोएडा में पार्टिकुलेट मैटर के प्रदूषण का 40 फीसदी हिस्सा खुद दिल्ली से उड़कर पहुंचता है। आईजीपी क्षेत्र में प्रदूषण की यह घटना बड़ी चिंता का विषय बन चुकी है। यह क्षेत्र कई मायनों में खास है। यहां का मौसम प्रदूषण के अनुकूल है, यह इलाका चारों तरफ से जमीन से घिरा हुआ है और यहां प्रदूषण के साथ-साथ आबादी भी बहुत ज्यादा है। इन वजहों से यहां प्रदूषण की समस्या बहुत गंभीर हो गई है। इसी गंभीरता को देखते हुए नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने 9 सितंबर 2021 को एक आदेश जारी किया। इसमें एनजीटी ने कहा कि दूसरे इलाकों के मुकाबले आईजीपी में प्रदूषण बहुत ज्यादा है और इसे कम करने के लिए और बेहतर व उन्नत तरीके अपनाए जाने चाहिए।

इस आदेश के बाद केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के तहत विशेषज्ञ समिति ने आईजीपी का एकीकृत मूल्यांकन किया और एक क्षेत्रीय उत्सर्जन सूची तैयार की। इसमें बताया गया कि इस क्षेत्र में उत्तर प्रदेश सबसे अधिक पीएम 2.5 उत्सर्जित करने वाला राज्य है, उसके बाद पश्चिम बंगाल, बिहार, पंजाब और हरियाणा का स्थान आता है। इस क्षेत्र में कुल उत्सर्जन के 48.5 प्रतिशत हिस्से के लिए अकेले उद्योग क्षेत्र ही जिम्मेदार है। 19 फीसदी उत्सर्जन घरों में खाना पकाने के लिए इस्तेमाल किए गए ठोस ईंधन से होता है, जिसमें सबसे अधिक योगदान यूपी, बिहार और पश्चिम बंगाल का पाया गया। खाना पकाने के किफायती ऊर्जा स्रोत चुनौती बने हुए हैं। परिवहन प्रदूषण में सबसे ज्यादा योगदान दिल्ली, कोलकाता, लखनऊ जैसे महानगरों और औद्योगिक क्षेत्रों का है।

आईजीपी के किसी भी शहर या कस्बे के लिए स्वच्छ वायु के लक्ष्य को हासिल करना तब तक मुश्किल साबित होगा, जब तक पूरे क्षेत्र का प्रदूषण कम करने के लिए कदम न उठाए जाएं। ऐसे बड़े भौगोलिक क्षेत्र एयरशेड कहलाते हैं, जहां प्रदूषक वायुमंडल में फंस जाते हैं और हवा के प्रवाह के साथ बहते हुए प्रदूषण फैलाते हैं। अभी तक आईजीपी में एयरशेड के एकीकृत प्रबंधन का कोई औपचारिक ढांचा मौजूद नहीं है, जिससे प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सके। यह ढांचा इसलिए जरूरी है, क्योंकि प्रदूषण किसी एक शहर

Slow Murder Continues_Hindi.indd 48 16/07/25 11:25 AM

या राज्य की सीमा में नहीं रहता, बल्कि हवा के साथ कई प्रशासनिक और राजनीतिक क्षेत्रों में फैल जाता है। इसे नियंत्रित करने के लिए सभी संबंधित राज्यों और अधिकारियों को मिलकर काम करना होगा, जिसके लिए एक खास कार्यकारी ढांचे और राज्य परिषदों की जरूरत पड़ेगी। अच्छी बात यह है कि दिल्ली और एनसीआर में ऐसे एक मॉडल की स्थापना हो चुकी है। लोगों के आंदोलन, अदालतों के दखल और फिर "वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग" के बनने से यह साबित हो गया है कि एनसीआर के चार राज्यों में प्रदूषण को क्षेत्रीय स्तर पर एकसाथ मिलकर नियंत्रित किया जा सकता है। अब इस सफल उदाहरण का इस्तेमाल भारत के बाकी हिस्सों में भी ऐसे ही ढांचे के निर्माण के लिए किया जाना चाहिए। दुनिया भर में कई देशों ने अपने यहां और दूसरे देशों के साथ मिलकर सीमा पार प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए ऐसे ढांचे बनाना शुरू कर दिए हैं।

डब्ल्यूएचओ के जलवायु, पर्यावरण और स्वास्थ्य विभाग की प्रमुख मारिया नेइरा ने कहा कि सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए वायु प्रदूषण सबसे बड़ी चुनौती बन चुका है। नवंबर-दिसंबर 2023 में दुबई में आयोजित संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन फ्रेमवर्क कन्वेंशन (यूएनएफसीसीसी) के 28वें सम्मेलन (सीओपी28) में 123 देशों ने जलवायु और स्वास्थ्य से संबंधित एक नई घोषणा पर हस्ताक्षर किए। यह घोषणा जलवायु और स्वास्थ्य के बीच संबंध को स्वीकार करती है। सीओपी 28 प्रेसीडेंसी और डब्ल्यूएचओ ने मिलकर "जलवायु और स्वास्थ्य पर सीओपी 28 यूएई घोषणापत्र" जारी किया। इस घोषणापत्र का प्रमुख उद्देश्य सार्वजनिक स्वास्थ्य और समुदायों को बढ़ते जलवायु प्रभावों से बचाने के लिए कार्रवाई में तेजी लाना और अत्यधिक गर्मी, वायु प्रदूषण, संक्रामक व जूनोटिक बीमारियों और पर्यावरणीय जोखिम कारकों के प्रभावों से निपटने के लिए स्वास्थ्य सेवा प्रणालियों को मजबूत करना है।

इस घोषणापत्र में कहा गया है कि वायु प्रदूषण से हर साल लगभग 90 लाख मौतें होती हैं। इसके अलावा लगभग 18.9 करोड़ लोग हर साल चरम मौसम से जुड़ी घटनाओं के संपर्क में आते हैं। इसलिए स्वास्थ्य की सुरक्षा जलवायु कार्रवाई के केंद्र में होनी चाहिए। घोषणापत्र में ऐसी सरकारी नीतियां बनाने की मांग की गई है, जो जलवायु परिवर्तन के असर से लड़ने के लिए

Slow Murder Continues_Hindi.indd 49 16/07/25 11:25 AM

हमारे स्वास्थ्य सिस्टम को मजबूत बनाएं, उत्सर्जन कम करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग बढ़े, जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए जो कदम उठाए जाएं, उनसे स्वास्थ्य को मिलने वाले लाभों को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाया जा सके और जलवायु व स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याओं के समाधान के लिए फंड बढ़ाया जाए।

जिन देशों या संगठनों ने इस घोषणा पर हस्ताक्षर किए हैं, उन्होंने यह भी वादा किया कि वे अपने देशों की जलवायु योजनाओं में स्वास्थ्य से जुड़े लक्ष्य भी शामिल करेंगे। साथ ही, जलवायु परिवर्तन के स्वास्थ्य संबंधी खतरों से निपटने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बेहतर सहयोग करेंगे। भविष्य में होने वाली जलवायु परिवर्तन पर वैश्विक बैठकों (जैसे सीओपी सम्मेलन) और स्वास्थ्य मंत्रियों की बैठकों में भी इस प्रगति पर नजर रखी जाएगी। इस पहल का सबसे खास पहलू यह है कि इसमें फंड के लिए प्रतिबद्धताएं हासिल करने की कोशिश की गई है। कई सारे साझेदारों और संगठनों ने मिलकर यह वादा किया है कि वे जलवायु-स्वास्थ्य संकट की बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिए एक अरब डॉलर समर्पित करेंगे।

जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए उठाए जाने वाले कदमों और स्वास्थ्य संरक्षण को एकीकृत करने के प्रयास 2016 में ही शुरू हो गए थे। उस समय सीओपी की अध्यक्षता कर रही फ्रांस सरकार ने डब्ल्यूएचओ के साथ मिलकर दूसरा वैश्विक सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन का मकसद था पेरिस समझौते के क्रियान्वयन के माध्यम से अधिक स्वस्थ समाज बनाना। यहां पेरिस जलवायु संधि को सार्वजनिक स्वास्थ्य संधि के रूप में भी देखने की अपील की गई। डब्ल्यूएचओ ने चेतावनी दी कि "ग्लोबल बर्डन ऑफ डिजीज" अध्ययन के अनुसार, 23 प्रतिशत वैश्विक मौतें पर्यावरणीय कारणों से होती हैं, जिनमें वायु प्रदूषण सबसे महत्वपूर्ण है, जो जलवायु परिवर्तन के कारण और भी बदतर हो गया है। जलवायु परिवर्तन के कारण 2030 तक प्रति वर्ष 2,50,000 से अधिक अतिरिक्त मौतें होने की संभावना है। इन मौतों के प्रमुख कारण जलवायु तनाव, खाद्य असुरक्षा और कीट जनित रोग होंगे। चरम मौसमीय घटनाओं के कारण विकासशील देशों पर स्वास्थ्य का बोझ और आर्थिक नुकसान कई गुना बढ़ जाएंगे। वायु प्रदूषण की वजह से दुनिया भर में हर साल लगभग 90 लाख लोगों की मौत होती है। जलवायु

Slow Murder Continues_Hindi.indd 50 16/07/25 11:25 AM

परिवर्तन से निपटने में वायु प्रदूषण भी बड़ी बाधा है।

अगर स्वास्थ्य को जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए उठाए जाने वाले कदमों के साथ एकीकृत किया जाता है, तो यह विभिन्न क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने और उनके अनुकूल ढलने के अवसरों को लक्षित करने में मदद कर सकता है। यानी हम उन जगहों और तरीकों की पहचान कर पाएंगे, जहां प्रदूषण कम करके और मौसम के हिसाब से ढलकर स्वास्थ्य को बेहतर बना सकते हैं। स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर प्रदूषण कम करने की एक साथ रणनीति बन पाएगी। प्रमुख सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणालियां और भी मजबूत होंगी, ताकि वे जलवायु परिवर्तन से जुड़ी स्वास्थ्य समस्याओं से निपट सकें। प्रदूषण फैलाने वाली गतिविधियों से कार्बन कम करने के प्रयास और बेहतर तरीके से हो पाएंगे। जब हम स्वास्थ्य के जोखिमों और लाभों पर ठोस सबूतों के आधार पर काम करेंगे, तो सही फैसले लेना आसान होगा। वैश्विक स्तर पर भी सभी देश मिलकर आम जनता के भले के लिए ज्यादा असरदार तरीके से काम कर पाएंगे। यह केवल दुनिया भर से आने वाले पैसों को ही नहीं बढ़ाएगा, बल्कि देशों के अपने बजट और कार्यों को भी प्रभावित करेगा, ताकि जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाले भारी स्वास्थ्य खर्चों से निपटा जा सके। साफ है कि स्वास्थ्य को एक "शक्तिशाली हथियार" के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है, जिससे विभिन्न क्षेत्रों में के लिए किए जा रहे समाधानों में "समानता" को सुनिश्चित किया जा सके।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) ने पहले ही "क्लाइमेट एंड क्लीन एयर कोएलिशन" का गठन कर लिया है। इसे कई वैश्विक एजेंसियों और बहुपक्षीय संस्थाओं का समर्थन हासिल है, जिनमें बड़ी संख्या में देश शामिल हैं। यह गठबंधन एसएलसीपी (शॉर्ट-लिव्ड क्लाइमेट पॉल्यूटेंट्स यानी अल्पकालिक जलवायु प्रदूषकों) पर संयुक्त कार्रवाई के लिए बना है। यूएनईपी ने इस संबंध और कार्रवाई के महत्व को और अधिक जोर देकर रेखांकित किया है। इस प्रयास को यूएनएफसीसीसी (यूनाइटेड नेशंस फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज) की प्रक्रिया से और बेहतर तरीके से जोड़ना जरूरी है, ताकि उत्सर्जन में और अधिक व्यापक कटौती की जा सके। इससे वायु गुणवत्ता, सार्वजनिक स्वास्थ्य और कल्याण में ज्यादा से ज्यादा फायदा मिल सकता है, साथ ही सीओ 2 को कम करने की प्रक्रिया को तेजी से आगे

Slow Murder Continues_Hindi.indd 51 16/07/25 11:25 AM

बढ़ाया जा सकता है और जलवायु संकट से लड़ने की क्षमता भी बढ़ाई जा सकती है। सीओपी 28 और आगे आने वाले समय में इस मुद्दे पर प्राथमिकता के साथ ध्यान देना जरूरी है।

कई देश पहले ही अपने-अपने स्वच्छ वायु और जलवायु कार्यक्रम, नीतियां और क्रियान्वयन रणनीतियां बना चुके हैं, ताकि स्वच्छ वायु के लक्ष्यों को हासिल किया जा सके। स्थानीय और वैश्विक स्तर पर इन कार्यक्रमों से मिलने वाले अनुभवों को आपस में जोड़ने और रणनीतिक सहयोग देने से असर कई गुना बढ़ सकता है। यूएनएफसीसीसी के लिए राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित प्रतिबद्धता (नेशनली डिटरमाइंड कॉन्ट्रिब्यूशन- एनडीसी) पर अपनी रिपोर्टिंग में वायु प्रदूषण को शामिल करने वाले देशों की संख्या बढ़ रही है और 2025 में इन एनडीसी को संशोधित किया जाएगा। इन एनडीसी में जनस्वास्थ्य लाभों और कार्बन उत्सर्जन में कमी से मिलने वाले फायदे भी शामिल किए जाने चाहिए। जो देश स्वच्छ वायु के लिए कदम उठा रहे हैं और इस प्रक्रिया से मिलने वाले अनुभवों को साझा कर रहे हैं, उन्हें साथ लाना और एकजुट करना आवश्यक है, ताकि आपसी सीख (क्रॉस-लर्निंग) को बढ़ावा मिल सके।

सीओपी प्रक्रिया के साथ-साथ कई वैश्विक मंच और प्लेटफॉर्म स्थापित किए गए हैं, ताकि विभिन्न क्षेत्रों में तेज और प्रभावी कार्रवाई की जा सके। इन क्षेत्रों में स्वच्छ ऊर्जा अपनाने, खाना पकाने के लिए स्वच्छ ईंधन इस्तेमाल करने और पारंपरिक वाहनों की जगह शून्य उत्सर्जन वाले वाहनों (जेडईवी) को लाने जैसे उपाय शामिल हैं। इन मंचों का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में लघुकालिक जलवायु प्रदूषकों (एसएलसीपी) पर कार्रवाई को तेज करने के लिए किया जा सकता है। ऐसे कुछ मंचों में "2030-2040 तक 100 प्रतिशत जीरो एमिशन में बदलाव की घोषणा", "जेडईवी ट्रांजिशन काउंसिल" (जो वैश्विक कार बाजार का 50 प्रतिशत प्रतिनिधित्व करती है) और "सोलर अलायंस" शामिल हैं।

लघुकालिक जलवायु प्रदूषक यानी एसएलसीपी ऐसे प्रदूषक हैं, जो वातावरण में बहुत कम समय तक रहते हैं, लेकिन तेजी से गर्मी बढ़ाते हैं। एसएलसीपी के बारे में जागरूक करने के लिए वैश्विक और राष्ट्रीय नेटवर्क को एक साथ लाना चाहिए। स्वच्छ हवा और जलवायु परिवर्तन से निपटने के

Slow Murder Continues_Hindi.indd 52 16/07/25 11:25 AM

Slow Murder Continues_Hindi.indd 53 16/07/25 11:25 AM

लिए उठाए जा रहे कदमों के बीच के संबंध के प्रति भी उन्हें जागरूक करना चाहिए। इसके साथ ही एक-दूसरे से सीखने को बढ़ावा देना चाहिए। इससे वैज्ञानिक डेटा, बेहतरीन तरीके और व्यावहारिक मॉडल के जरिए ग्लोबल साउथ (विकासशील देशों) में स्थानीय स्तर पर कार्रवाई को मजबूती मिलेगी। मोटरीकरण और औद्योगीकरण के शुरुआती चरणों में ही एहतियातन योजनाएं बनाकर प्रदूषण की रोकथाम करने और प्रदूषण फैलाने वाले तरीकों से भी बचने के काफी अवसर हैं। वैश्विक जलवायु वित्त व्यवस्था को प्रभावित करने के लिए भागीदारी बढ़ानी चाहिए। इसके साथ ही, नए वित्तीय स्रोतों जैसे द्विपक्षीय (दो देशों के बीच) व बहुपक्षीय (कई देशों के बीच) फंडिंग को खोला जाए और सही संकेतकों के साथ मुख्यधारा में शामिल किया जाए, ताकि इन निवेशों से होने वाले संयुक्त लाभों का मूल्यांकन किया जा सके।

इन गंभीर पर्यावरणीय मुद्दों के बारे में आम लोगों की जानकारी और जागरुकता बढ़ाने के लिए अभियान चलाने चाहिए। लोगों और नीति-निर्माताओं के बीच एसएलसीपी से संबंधित विज्ञान, नीतियों और उनके लिए की जा रही कार्रवाई की गहरी समझ होनी चाहिए, ताकि एक नई और प्रभावी सोच विकसित की जा सके। इसके लिए हमें अच्छे उदाहरणों और नए-नए तरीकों के बारे में रचनात्मक तरीके से बात करनी होगी, ताकि जनमत को प्रभावित किया जा सके। साथ ही, जनमत तैयार करने वाले अलग-अलग क्षेत्रों के व्यक्तियों और स्थानीय लोगों को इस काम से जोड़ा जा सके। एक और महत्वपूर्ण काम यह है कि ग्रीनहाउस गैसों और एसएलसीपी के स्रोतों और उनके उत्सर्जन का एक वैश्विक डेटाबेस और इन्वेंट्री तैयार की जाए। इसके अलावा, स्थानीय स्तर पर उन संस्थाओं को मजबूत करना चाहिए, जो इन मुद्दों पर काम करती हैं, ताकि वे सही जानकारी के आधार पर प्रभावी कदम उठा सकें। ■

Slow Murder Continues_Hindi.indd 54 16/07/25 11:25 AM

एक समान नहीं असर

दुनिया के करीब 71.60 करोड़ सबसे कम आय वाले लोग ऐसे इलाकों में रहते हैं, जहां वायु प्रदूषण का स्तर असुरक्षित है

स्वच्छ हवा हर पीढ़ी का अधिकार है। हमें ऐसे कदम उठाने चाहिए, ताकि आने वाली पीढ़ियों को भी साफ हवा मिल सके। प्रदूषण के बारे में अब तक यह पारंपरिक धारणा कायम रही है कि वायु प्रदूषण का असर हर किसी पर एक जैसा होता है। लेकिन, अब समझ में आया है कि ऐसा नहीं है। समय के साथ और अधिक सूक्ष्म दृष्टिकोण विकसित हुए हैं। अब यह जांचने के लिए नए तरीके अपनाए जा रहे हैं कि कैसे अलग-अलग उम्र, लिंग, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, पोषण स्तर और अन्य कारकों के आधार पर विभिन्न समूह वायु प्रदूषण से अलग-अलग रूप में प्रभावित होते हैं। ये कारक उनकी संवेदनशीलता और हाशिए पर होने की स्थिति को तय करते हैं।

कई रिसर्च में यह साफ हो चुका है कि नवजात बच्चों की मौत, खासकर जीवन के पहले महीने में, श्वासनली के निचले हिस्से में संक्रमण की वजह से होती है। कम वजन के बच्चे और समय से पहले जन्म लेने वाले बच्चे भी

Slow Murder Continues_Hindi.indd 55 16/07/25 11:25 AM

वायु प्रदूषण से ज्यादा प्रभावित होते हैं (इसका जिक्र पिछले अध्यायों में है)। अब यह भी देखा गया है कि गर्भ में पल रहे बच्चों तक भी प्रदूषित हवा के जहरीले कण पहुंच जाते हैं, क्योंकि वे आसानी से मां के शरीर से गर्भनाल के जरिए अंदर जा सकते हैं। बच्चों के फेफड़े और प्रतिरक्षा तंत्र यानी उसकी बीमारियों से लड़ने की ताकत अभी पूरी तरह विकसित नहीं होती, इसलिए प्रदूषण के संपर्क से उन्हें होने वाले खतरे भी ज्यादा होते हैं।

देश-दुनिया में हो रहे अध्ययनों से लगातार इस बात के सबूत मिल रहे हैं, जिनसे पता चलता है कि कमजोर समूहों पर वायु प्रदूषण का असर सबसे ज्यादा पड़ता है। कमजोर समूहों के लिए कोई निश्चित परिभाषा नहीं है। वायु प्रदूषण से संबंधित जोखिमों के प्रति भेद्यता और संवेदनशीलता को परिभाषित करने के लिए कई विशेषताओं पर विचार किया जाता है। इनमें उम्र, लिंग, सामाजिक-आर्थिक असमानताएं, पोषण की स्थिति, व्यावसायिक संपर्क और भौगोलिक स्थान शामिल हैं, जो समुदायों की प्रदूषण स्रोतों से निकटता निर्धारित करते हैं। अब यह बात साफ हो चुकी है कि सभी सामाजिक-आर्थिक समूहों में बच्चे, बुजुर्ग, महिलाएं (खासकर गर्भवती महिलाएं) और सामाजिक रूप से वंचित समुदाय वायु प्रदूषण से सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं। हमें इन अलग-अलग जोखिमों की प्रकृति को ठीक से समझने की जरूरत है, ताकि सही समाधान निकाले जा सकें।

भारत में महामारी विज्ञान से संबंधित कई अध्ययन उपलब्ध हैं, जिनसे गरीब और हाशिए पर रहने वाली महिलाओं में वायु प्रदूषण के प्रति खतरों का पता चलता है। इन अध्ययनों से यह साफ हो जाता है कि गरीबी और खाना पकाने के लिए स्वच्छ ईंधन तक उनकी पहुंच न होने के कारण वे प्रदूषण की मार झेल रही हैं। भारत में लिंग के आधार पर भी वायु प्रदूषण का असर अलग-अलग दिखाई देता है। जब महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति खराब होती है, तो उन्हें बुनियादी सुविधाएं नहीं मिल पातीं, जिससे उनकी मौत का खतरा बढ़ जाता है और मृत्यु दर और भी बदतर हो जाती है।

इतना ही नहीं, खासकर शहरी क्षेत्रों में निम्न आय वर्ग की महिलाएं खाना पकाने और गर्म करने के लिए बहुत खराब वेंटिलेशन वाले पारंपरिक चूल्हों का उपयोग करती हैं, जिनमें हवा के आने-जाने की कोई व्यवस्था नहीं होती है। ये चूल्हे जैव-ईंधन लकड़ी, गोबर, कोयला (बायोमास) से जलते हैं और

कार्बन मोनोऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन जैसी जहरीली गैसें व पार्टिकुलेट मैटर छोड़ते हैं, जो पीएम 2.5 से होने वाले कुल बाहरी वायु प्रदूषण का लगभग 24 प्रतिशत हिस्सा हैं। ये महिलाएं घर के अंदर लगातार इस वायु प्रदूषण के संपर्क में रहती हैं। ऊपर से उनका पोषण पहले से ही खराब होता है, जिससे उनके फेफड़े, दिल और प्रजनन तंत्र पर बहुत बुरा असर पड़ता है।

अब व्यापक तौर पर यह समझ बन चुकी है कि बुजुर्गों पर भी वायु प्रदूषण का असर ज्यादा होता है। उम्र बढ़ने के साथ उनका शरीर पहले से कई बीमारियां जैसे कि हाई ब्लड प्रेशर, डायबिटीज, दिल की बीमारियां और धीमा मेटाबॉलिज्म जैसी समस्याएं झेल रहा होता है। ऐसे में ज्यादा उम्र और वायु प्रदूषण मिलकर दिल का दौरा, स्ट्रोक, फेफड़ों के रोग (सीओपीडी, अस्थमा) और डायबिटीज आदि का खतरा और ज्यादा बढ़ जाता है।

बुजुर्गों की रोग प्रतिरोधक क्षमता (इम्यूनिटी) भी कमजोर हो जाती है। उन्हें न्यूरोलॉजिकल बीमारियों जैसे पार्किंसन और अल्जाइमर का भी खतरा बढ़ जाता है। साथ ही उनका मानसिक स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है। इन वजहों से उन्हें ज्यादा देखभाल की जरूरत पड़ती है, अचानक में भर्ती कराना पड़ सकता है और दवाओं का खर्च भी बढ़ जाता है। बुजुर्गों पर वायु प्रदूषण का असर इसलिए भी ज्यादा होता है, क्योंकि वे पहले ही लंबे समय से, बल्कि जिंदगी भर इसकी मार झेलते रहे हैं। इतने लंबे समय तक प्रदूषण के संपर्क में रहने का सेहत पर घातक असर पड़ता है। दुनिया भर के आंकड़े दिखाते हैं कि जिन देशों में आबादी ज्यादा और बुजुर्गों की संख्या अधिक है, वहां वायु प्रदूषण से होने वाली बीमारियां और मौतें भी ज्यादा होती हैं। भारत भी अब जनसांख्यिकीय परिवर्तन की उसी दिशा में आगे बढ़ रहा है। यहां की विशाल जनसंख्या, बुजुर्गों की बड़ी आबादी और सामाजिक-आर्थिक तौर पर पिछड़े हुए लोग, ये तीनों चीजें मिलकर खतरे को और गंभीर बना देती हैं।

स्वास्थ्य पर वायु प्रदूषण के असर का बोझ गरीबों पर सबसे ज्यादा पड़ता है। इसकी वजह है उनकी कमजोर सेहत, कुपोषण, बीमारी से उबरने की कम ताकत और जहरीली हवा के ज्यादा संपर्क में रहना। हालांकि अब कुछ शोध सामने आने लगे हैं, जो दिखाते हैं कि कम आमदनी वाले वर्ग पर वायु प्रदूषण का असर गंभीर होता है, लेकिन अभी भी इस पहलू पर ज्यादा रिसर्च नहीं हुई है और न ही इसे नीतियों में पूरी तरह शामिल किया गया है।

Slow Murder Continues_Hindi.indd 57 16/07/25 11:25 AM

भारत में इस विषय पर कुछ गिने-चुने अध्ययन हुए हैं, लेकिन जो भी जानकारी उपलब्ध है, वह यह साफ दिखाती है कि कम आमदनी वाले लोग वायु प्रदूषण के मामले में विशेष रूप से संवेदनशील होते हैं और इससे उनके स्वास्थ्य में बहुत असमानताएं आती है। 2021 के येल विश्वविद्यालय के एक अध्ययन में पाया गया कि भारत में अप्रत्यक्ष प्रदूषण स्रोतों से होने वाली मौत का खतरा गरीबों पर बहुत ज्यादा होता है। यानी, अगर उद्योगों से होने वाले प्रदूषण को नियंत्रित किया जाए, तो बाहरी हवा के प्रदूषण से होने वाले नुकसान में गरीबों और अमीरों के बीच की असमानता कम हो सकती है। हालांकि, गरीब परिवारों को घर के अंदर के वायु प्रदूषण से मौत का खतरा 10 गुना ज्यादा होता है। इसलिए भारत में वायु प्रदूषण से होने वाली असमय मौतों को कम करने का सबसे असरदार तरीका खाना पकाने के लिए स्वच्छ ईंधन, जैसे एलपीजी का इस्तेमाल करना है।

2023 में *नेचर सस्टेनेबिलिटी* में एक वैश्विक अध्ययन "ग्लोबल एयर पॉल्यूशन एक्सपोजर एंड पॉवर्टी" प्रकाशित हुआ। इस अध्ययन में पाया गया कि दुनिया के करीब 71.60 करोड़ सबसे कम आय वाले लोग (जो रोजाना 1.90 अमेरिकी डॉलर से कम पर जीवन यापन करते हैं) ऐसे इलाकों में रहते हैं, जहां वायु प्रदूषण का असुरक्षित स्तर पर है। प्रदूषण का स्तर मध्यम-आय वाले देशों में ज्यादा पाया गया है, जहां अभी भी ऐसे पुराने और गंदे उद्योग व तकनीकें इस्तेमाल में हैं, जिनसे प्रदूषण फैलता है।

यह अध्ययन दिखाता है कि भारत में ज्यादा आय वाले परिवार बाहरी वायु प्रदूषण में सबसे ज्यादा योगदान देते हैं, इसकी वजह है उनके द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली चीजें, परिवहन और उत्पादन से निकलने वाले धुएं और गैसें। लेकिन इसके बावजूद, कम आय वाले परिवारों को असमय मौत का खतरा उच्च आय वालों की तुलना में 9 गुना ज्यादा होता है। 2022 के विश्व बैंक के एक अध्ययन में भी कहा गया है कि खतरनाक स्तर के वायु प्रदूषण के संपर्क में आने वाले हर 10 में से एक व्यक्ति अत्यधिक गरीबी में रहता है। वायु प्रदूषण का यह स्तर अमीर परिवारों की तुलना में भीषण गरीबी में रहने वालों के लिए स्वास्थ्य से जुड़े गंभीर जोखिमों को बढ़ा देता है। इतना ही नहीं, गरीबी और स्वास्थ्य देखभाल तक पर्याप्त पहुंच न होने से वायु प्रदूषण का बुरा असर और भी बढ़ जाता है।

कुछ अध्ययनों में चेतावनी दी गई है कि गरीबी और हाशिए पर रहने वाले लोगों में कैंसर का खतरा बढ़ रहा है। इसकी वजह वायु प्रदूषण है और यह गंभीर चिंता का विषय है। दरअसल, किसी भी जहरीले असर का आखिरी पड़ाव कैंसर हो सकता है। मुंबई के टाटा मेमोरियल सेंटर के "प्रिवेंटिव ऑन्कोलॉजी विभाग" ने करीब 20 साल पहले एक शुरुआती सर्वे किया था। इसमें झुग्गियों में कैंसर के मामले ज्यादा पाए गए और इसके पीछे की एक बड़ी वजह वायु प्रदूषण को माना गया था। इस बात के गंभीर मायने गरीबों के लिए और भी डरावने हैं। अमेरिका में हार्वर्ड सेंटर फॉर कैंसर प्रिवेंशन ने भी शुरुआती वर्षों में पाया था कि गरीबों में फेफड़ों के कैंसर के मामले ज्यादा होते हैं। अमेरिकन कैंसर सोसाइटी ने भी अपनी एक रिपोर्ट में बताया था कि गरीबी में रह रहे लोगों को कैंसर का खतरा ज्यादा होता है और इसके साथ कई गंभीर मुद्दे जुड़े होते हैं। इनमें बीमारी से जुड़ी तकलीफें, इलाज का भारी खर्च, स्वास्थ्य सुविधाओं व बीमा का अभाव और जागरूकता की कमी जैसे मुद्दे शामिल थे।

बड़ी आबादी वाले ऐसे शहर, जहां गरीबों की संख्या काफी ज्यादा है, वहां यह मुद्दा एक गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य एजेंडे के तौर पर उभर सकता है। भारत के शहरों में भी बिना किसी योजना के अनाधिकृत बस्तियां बस गई हैं, जहां की झुग्गी-झोपड़पट्टियों में गरीब और हाशिए पर छोड़ दिए गए लोग गुजर-बसर करते हैं। सीएसई के एक अनुमान के मुताबिक, कम से कम हर 6 में से 1 शहरी भारतीय ऐसे ही बस्तियों में रहता है। जनगणना 2011 के आंकड़ों के मुताबिक, इन अनौपचारिक बस्तियों में रहने वाले 10 में से 6 लोग गंदे नालों के पास रहते हैं और हर छठे व्यक्ति को पीने के लिए साफ पानी तक नहीं मिलता। यानी जब ये लोग बीमार पड़ते हैं, तो उनके पास बीमारी से उबरने की जरूरी सुविधाएं नहीं होतीं। इससे उनकी स्थिति और खराब हो जाती है।

अध्ययन में यह भी पाया गया है कि झुग्गी या अनौपचारिक बस्तियां अक्सर उन जगहों पर स्थित होती हैं, जो वायु प्रदूषण के लिहाज से बेहद खतरनाक मानी जाती हैं। ये बस्तियां आमतौर पर कचरा डंपिंग स्थल, खुले में कचरा जलाने की जगहों, ट्रैफिक जाम वाले इलाकों, छोटे स्तर की निर्माण साइटें और असंगठित औद्योगिक इकाइयों के पास होती हैं, जो प्रदूषण के लिहाज से हॉटस्पॉट मानी जाती हैं। सीएसई द्वारा जयपुर और कोलकाता जैसे

Slow Murder Continues_Hindi.indd 59 16/07/25 11:25 AM

शहरों में किए जा रहे एक अध्ययन के दौरान "वल्नरेबिलिटी मैपिंग" में पाया गया है कि प्रदूषण के हॉटस्पॉट, हीट वेव हॉटस्पॉट, बाढ़ प्रभावित क्षेत्र और झुग्गी बस्तियों का स्थान अक्सर एक ही जगह पर मिलता है। यह बेहद गंभीर मामला है, क्योंकि बढ़ते शहरीकरण के साथ अनौपचारिक बस्तियां भी तेजी से बढ़ रही हैं। अनुमान है कि 2001 से 2011 के बीच, जहां शहरी आबादी 32 प्रतिशत बढ़ी, वहीं झुग्गी बस्तियों की आबादी 131 प्रतिशत बढ़ गई। 10 लाख से अधिक आबादी वाले 47 शहरों में से लगभग 11 शहर ऐसे हैं, जहां औसतन 30 प्रतिशत आबादी झुग्गी बस्तियों में रहती है। यह संख्या आने वाले वर्षों में दोगुनी हो सकती है।

यह समस्या इसलिए भी गंभीर है क्योंकि ज्यादातर झुग्गियां शहर के बाहरी और उपेक्षित हिस्सों में हैं। इसलिए आमतौर पर ये इलाके नगर निगम की सेवाओं, ट्रांसपोर्ट, सफाई और स्वास्थ्य सुविधाओं के दायरे से बाहर और हाशिए पर होते हैं। काफी लंबे समय तक आवास नीति का फोकस भी इन बस्तियों को शहर से बाहर विस्थापित करने पर रहा। इससे इन समुदायों की समस्याएं और बढ़ती गईं। सार्वजनिक आवास योजनाओं पर हाल की नीतियों में अब कुछ सुधार शुरू हुए हैं, जैसे "इन-सीटू डेवलपमेंट" (यानी जहां लोग हैं, वहीं पर बेहतर सुविधाएं देना) को बढ़ावा देना। इसमें झुग्गियों को हटाने की बजाय उन्हें शहर के भीतर ही बुनियादी सुविधाएं देना शामिल है। विश्व स्वास्थ्य संगठन का कहना है कि भले ही वायु प्रदूषण का असर सभी पर पड़ता है, लेकिन इसका बोझ सब पर बराबर नहीं पड़ता। गरीब और हाशिए पर रह रहे लोग, खासकर जो सड़क या उद्योगों के पास रहते हैं, वे सबसे ज्यादा जहरीली हवा के संपर्क में आते हैं। ये हालात शहरों में बदतर होते जा रहे हैं।

प्रदूषण के संपर्क में सबसे ज्यादा वे लोग आते हैं, जिन्हें बाहर खुले में काम करना पड़ता है या फिर विशेष प्रदूषण पैदा करने वाली गतिविधियों और औद्योगिक प्रक्रियाओं के बहुत करीब रहना पड़ता है। यह वायु प्रदूषण से जुड़ी एक और बड़ी समस्या है, पेशेवर जोखिम। इस बात के पुख्ता सबूत सामने आए हैं कि अनौपचारिक क्षेत्रों में काम करने वाले (जैसे दिहाड़ी मजदूर) बाहरी वायु प्रदूषण और मौसम के चरम बदलावों के प्रति ज्यादा संवेदनशील होते हैं। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) पहले से इस बात पर जोर देता रहा है कि जो लोग अपने काम की वजह से पर्यावरणीय जोखिमों के

संपर्क में आते हैं, उन्हें खास सुरक्षा की जरूरत है। अब भारत में भी इस विषय पर नए अध्ययन शुरू हुए हैं। दिल्ली स्थित गैर-लाभकारी संस्था चिंतन एनवायर्नमेंटल रिसर्च एंड एक्शन ग्रुप ने 2022 में एक विशेष अध्ययन किया। इस अध्ययन में उन्होंने उन लोगों की सेहत की जांच की, जो खुले में और ज्यादा प्रदूषण वाली जगहों पर काम करते हैं, जैसे कचरा बीनने वाले, नगर निगम के सफाई कर्मचारी और सुरक्षा गार्ड। शोधकर्ताओं ने इन कामगारों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, जीवनशैली, वायु प्रदूषण के बारे में उनकी जानकारी और उन्हें होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं को देखा। उन्होंने उनके फेफड़ों की कार्यप्रणाली (सांस लेने की क्षमता) की भी जांच की और यह पता लगाया कि सांस की बीमारियों का उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति और काम के माहौल से क्या संबंध है। यह अध्ययन दिल्ली के चुनिंदा स्थानों पर किया गया था। इसमें भलस्वा लैंडफिल, गाजीपुर लैंडफिल, महिपालपुर और विवेकानंद कैंप में कचरा बीनने वालों के साथ ही दक्षिणी दिल्ली नगर निगम (एसडीएमसी), नई दिल्ली नगर परिषद (एनडीएमसी) और पूर्वी दिल्ली नगर निगम (ईडीएमसी), नई दिल्ली नगर निगम (एनडीएमसी) और खान मार्केट में काम करने वाले नगर निगम के सफाई कर्मचारियों का अध्ययन किया गया। अध्ययन के दौरान सफदरजंग अस्पताल, कैग बिल्डिंग, आईटीओ, रिलायंस बिल्डिंग, चांदनी चौक आदि जगहों पर काम करने वाले सुरक्षा गार्डों के सेहत की विशेष तौर पर समीक्षा की गई। तुलना के लिए मध्य दिल्ली के आसपास की जगहों से एक कंट्रोल ग्रुप को लिया गया। इन समूहों के फेफड़ों की कार्यप्रणाली और श्वसन प्रक्रिया से जुड़ी जांचों के साथ ही स्पाइरोमीटर टेस्ट भी किया गया। अध्ययन से पता चला कि कचरा बीनने वालों में 86 प्रतिशत मामलों में बीमारियों का कारण वायु प्रदूषण था। इनके फेफड़ों की क्षमता अन्य समूहों की तुलना में काफी कम पाई गई। यही नहीं, इनमें सांस लेने में रुकावट और फेफड़ों में क्षति जैसी समस्याओं की गंभीरता 57 फीसदी तक देखी गई। कचरा बीनने वाली महिलाओं में सांस की बीमारी होने की आशंका पुरुषों की तुलना में 3.9 गुना अधिक होती है।

अध्ययन में शामिल हुए नगर निगम के 97 फीसदी सफाई कर्मचारी अपनी नौकरी के दौरान वायु प्रदूषण के संपर्क में पाए गए। 37 फीसदी सफाई कर्मचारी ऐसे थे, जिन्हें सर्दियों के दौरान ठंड से पर्याप्त सुरक्षा नहीं मिली। 23

Slow Murder Continues_Hindi.indd 61 16/07/25 11:25 AM

फीसदी कर्मचारियों ने पिछले एक साल में बुखार, सिरदर्द और रक्तचाप जैसी बीमारियां होने की सूचना दी, हालांकि इनमें से सिर्फ 11 फीसदी कर्मचारी ही इलाज कराने के लिए अस्पताल गए। सबसे चौंकाने वाली बात ये थी कि महिला सफाईकर्मियों में सांस की बीमारियां होने का खतरा पुरुषों की तुलना में लगभग 6 गुना ज्यादा पाया गया। सुरक्षा गार्डों की स्थिति भी चिंताजनक पाई गई। 45 प्रतिशत सुरक्षा गार्डों ने खांसी, गले में खराश, आंखों में जलन, सिरदर्द जैसी दिक्कतें बताईं। 86 प्रतिशत गार्डों की फेफड़ों की कार्यक्षमता सामान्य से खराब पाई गई।

इसी तरह, *एनवायरनमेंटल साइंस एंड पॉल्यूशन रिसर्च* जर्नल में 2022 में एक और अध्ययन प्रकाशित हुआ। इसमें ऑटो-रिक्शा चालक, फुटपाथ विक्रेता और सफाईकर्मियों को शामिल किया गया। अध्ययन में शामिल अधिकतर लोगों ने सिरदर्द, चक्कर आना, मिचली, मांसपेशियों में ऐंठन जैसी शिकायतें कीं। ऑटो चालकों ने सबसे ज्यादा आंखों में जलन और लाली की शिकायत बताई। इसकी वजह उनका वाहनों के धुएं का ज्यादा सामना करना पाया गया। फुटपाथ विक्रेताओं ने वाहन उत्सर्जन के बढ़ते संपर्क के कारण सिरदर्द और आंखों के लाल होने की परेशानियां बताईं। अधिकतर ऑटो-रिक्शा चालक, स्ट्रीट वेंडर और सफाई कर्मचारियों ने माना कि खराब हवा उनके स्वास्थ्य को बिगाड़ रही है। इनमें से अधिकतर के फेफड़ों की कार्यक्षमता भी कम पाई गई।

शहरों में निर्माण स्थल प्रदूषण के महत्वपूर्ण स्रोत हो सकते हैं। सीएसई (सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट) द्वारा की गई एक समीक्षा से पता चला है कि निर्माण स्थलों पर धूल के मुख्य स्रोतों में रेत, बजरी, कन्वेयर सिस्टम, ट्रक का आवागमन, मिट्टी की खुदाई, साइट की सफाई, निर्माण सामग्री को संभालना और भंडारण, बुलडोजर, क्रेन, क्रशर, पाइलिंग, दीवारों को तोड़ना, और कंक्रीट मिलाना शामिल हैं। निर्माण का हर चरण जहरीली धूल पैदा करता है। इनसे निकलने वाली धूल में अक्सर सिलिका पाई जाती है, जो रेत, पत्थर, चट्टान, बलुआ पत्थर, ईंट, कंक्रीट और मोर्टार से निकलती है। यह सिलिका फेफड़ों को गंभीर नुकसान पहुंचा सकती है। चिनाई के काम, सुरंग बनाने, सड़क की मिलिंग और सीमेंट व कंक्रीट को मिलाने से निकलने वाली धूल भी श्रमिकों की सेहत बिगाड़ती है। धूल के अन्य स्रोतों

Slow Murder Continues_Hindi.indd 62 16/07/25 11:25 AM

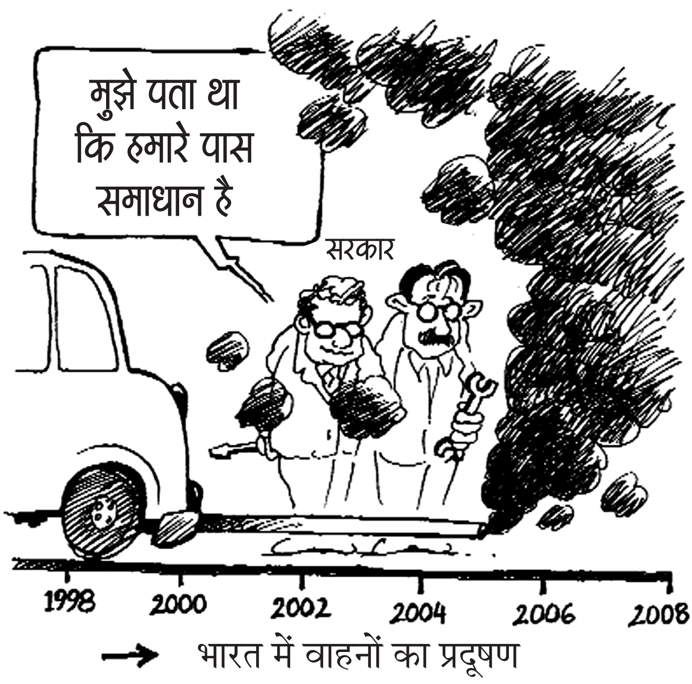

Slow Murder Continues_Hindi.indd 63 16/07/25 11:25 AM

में पत्थरों की कटाई, पॉलिशिंग और ड्रिलिंग जैसे काम भी शामिल हैं, जिनसे निकली धूल घातक हो सकती है। पुराने भवनों को तोड़ने के दौरान सीसा और एस्बेस्टस ज्यादा निकलता है, जो बहुत ज्यादा जहरीले होते हैं। कंस्ट्रक्शन के कचरे से निकलने वाले कणों से फेफड़ों का कैंसर, सिलिकोसिस (फेफड़ों की बीमारी), सीओपीडी (सांस की पुरानी बीमारी) और अस्थमा जैसी गंभीर समस्याएं होती हैं।

2023 के एक वैश्विक अध्ययन में पाया गया कि निर्माण स्थलों के विभिन्न चरणों में अलग-अलग काम करने वाले मजदूरों को अलग-अलग तरह की गंभीर बीमारियों का जोखिम होता है। उदाहरण के लिए, नींव के लिए गहरे गड्ढे खोदने वाले, सरिया बांधने वाले, प्लास्टर, चिनाई और पुट्टी का काम करने वाले श्रमिक निर्माण स्थलों पर सबसे ज्यादा खतरे में होते हैं। दिल्ली में हेल्प दिल्ली ब्रीद और महिला हाउसिंग ट्रस्ट द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण में पाया गया कि लैंडफिल (कचरा डंपिंग स्थल) के पास रहने वाले असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को सबसे ज्यादा प्रदूषण और असुरक्षित हालात का सामना करना पड़ता है। काम की खराब परिस्थितियां जैसे, बहुत ज्यादा ठंडी, गर्मी और बारिश जैसी मौसम की मार के साथ ही काम की असुरक्षित जगहें, स्वास्थ्य सेवाओं की कमी और असमानता समस्या को और भी बदतर बना देती हैं।

एक और चुनौती यह है कि जब सरकारें प्रदूषण फैलाने वाली फैक्ट्रियों और निर्माण कार्यों को बंद या सीमित करती हैं, तो वहां काम करने वाले गरीब और असंगठित मजदूरों की रोजी-रोटी पर सीधा असर पड़ता है। यानी साफ हवा की कोशिशें इन मजदूरों के लिए आर्थिक जोखिम भी बन जाती हैं। यह उदाहरण दिखाते हैं कि वायु प्रदूषण की मार सिर्फ एक स्वास्थ्य संकट नहीं है, बल्कि यह सामाजिक और आर्थिक अन्याय से भी संबंधित है।

नई रिसर्च से यह साफ हो गया है कि वायु प्रदूषण से जुड़ी समस्याएं सिर्फ स्वास्थ्य की नहीं, सामाजिक असमानता की भी हैं। गरीबी और सामाजिक पिछड़ापन ऐसे कारक हैं, जो लोगों की हालात सुधारने की क्षमता को सीमित कर देते हैं। खासकर दलित, पिछड़े और वंचित समुदायों के पास न तो संसाधन हैं और न ही आवाज, जिससे वे अपने लिए समाधान खोज सकें। ऐसे में समाज के कमजोर तबके के लिए प्रदूषण जैसी समस्याओं का समाधान निकालना मुश्किल हो जाता है। यह असमानता सामाजिक जाति व्यवस्था से

Slow Murder Continues_Hindi.indd 64 16/07/25 11:25 AM

भी जुड़ी हो सकती है। एक अध्ययन में भारत के ग्रामीण इलाकों में वायु प्रदूषण के संपर्क की असमानता का पता लगाया गया। इसमें पता चला कि प्रदूषण के संपर्क में आने और सामाजिक-आर्थिक स्थिति के बीच गहरा संबंध है। यदि इन संकेतकों (जो बताते हैं कि कौन सबसे ज्यादा कमजोर है) को नीतियों में शामिल करें, तो हम अपने निवेश को सही जगहों पर लगा सकते हैं। इससे सबसे कमजोर समुदायों को लक्ष्य बनाकर उनके कल्याण और स्वास्थ्य को अधिकतम लाभ पहुंचाया जा सकेगा। जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, जहां उद्योग और बिजली संयंत्र स्थित हैं, वे अधिकतर ऐसे गांव होते हैं, जो आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े हैं। वहां रहने वाले लोगों को ज्यादा प्रदूषण झेलना पड़ता है।

एनवायरनमेंटल साइंस एंड टेक्नोलॉजी नाम के प्रसिद्ध अंतरराष्ट्रीय जर्नल में उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले पर एक अध्ययन "हाई-रेजोल्यूशन पीएम 2.5 एमिशन्स एंड असोसिएटेड हेल्थ्स इंपैक्ट इनएक्वेलिटीज इन एन इंडियन डिस्ट्रिक्ट" प्रकाशित हुआ। इसमें शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों को शामिल किया गया। इस अध्ययन में पाया गया कि अलग-अलग सामाजिक-आर्थिक वर्गों के बीच वायु प्रदूषण में उनके योगदान और उसके संपर्क में आने के बीच एक बड़ा अंतर है। हर साल होने वाली असमय मौतों में से 68 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में होती हैं। निम्न-सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले लोगों को पीएम 2.5 के संपर्क से उद्योगों, घर में खाना पकाने के ईंधन, खुले में कचरा जलाने और परिवहन से होने वाली असमय मृत्यु का जोखिम, प्रदूषण में उनके अपने योगदान की तुलना में, बहुत ज्यादा (क्रमशः 6 प्रतिशत, 7 प्रतिशत, 7 प्रतिश और 26 प्रतिशत ज्यादा) होता है। इसका मतलब यह है कि जो लोग प्रदूषण के लिए कम जिम्मेदार हैं, वही उससे सबसे ज्यादा प्रभावित हो रहे हैं। शोध से पता चला है कि "विकलांगता-समायोजित जीवन वर्ष" (डीएएलवाई) का सबसे ज्यादा नुकसान निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले श्रमिक समूहों को होता है।

भले ही भारत में "पर्यावरणीय न्याय" को लेकर कोई विशेष कानून न हो, लेकिन संविधान, न्यायपालिका और नीतियों में इसके सिद्धांतों की गूंज स्पष्ट तौर पर मिलती है। वायु प्रदूषण से संबंधित जनहित याचिकाओं के मामलों में न्यायपालिका ने पर्यावरण संरक्षण और जीवन के अधिकार को सुनिश्चित

Slow Murder Continues_Hindi.indd 65 16/07/25 11:25 AM

करने के उद्देश्य से संवैधानिक प्रावधानों को बरकरार रखा है। अदालतों ने यह तय किया है कि स्वस्थ वातावरण में जीने का अधिकार, जीवन के अधिकार का हिस्सा है। इनमें भारतीय संविधान के अनुच्छेद 48ए, अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 51ए(जी) शामिल हैं। अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की गारंटी देता है, जिसकी अदालतों द्वारा व्याख्या की गई है कि इसमें स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार भी शामिल है। न्यायपालिका ने इस अनुच्छेद की व्यापक रूप से व्याख्या की है, ताकि स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार को जीवन के अधिकार के अभिन्न अंग के रूप में शामिल किया जा सके। इस व्याख्या के कारण कई महत्वपूर्ण अदालती फैसले हुए हैं, जहां अदालतों ने पर्यावरण की रक्षा और पर्यावरणीय न्याय सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाए हैं। अनुच्छेद 21 के माध्यम से नागरिकों को अपने स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार को खतरे में डालने वाले पर्यावरणीय क्षरण या उल्लंघनों के खिलाफ राहत पाने के लिए अदालतों का दरवाजा खटखटाने का अधिकार है।

इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 48ए पर्यावरण के संरक्षण और सुधार को अनिवार्य करता है। यह अनुच्छेद राज्य नीति का एक निर्देशक सिद्धांत है, जो यह अनिवार्य करता है कि राज्य पर्यावरण की रक्षा और सुधार करने, वनों और वन्यजीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा। यह राज्य के कर्तव्य पर जोर देता है कि वह अपनी शासन जिम्मेदारियों के हिस्से के रूप में पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित करे। निर्देशक सिद्धांत सीधे तौर पर अदालतों द्वारा लागू नहीं किए जा सकते, लेकिन वे नीति-निर्माण और कानून में राज्य के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में कार्य करते हैं। अनुच्छेद 48ए राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण और टिकाऊ विकास के महत्व को बताता है।

जहां, एक तरफ अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 48ए नागरिक के पर्यावरणीय अधिकारों की रक्षा करते हैं, वहीं दूसरी तरफ भारतीय संविधान का अनुच्छेद 51ए (जी) पर्यावरण के प्रति नागरिक के मौलिक कर्तव्यों को रेखांकित करता है। इसमें कहा गया है कि भारत के प्रत्येक नागरिक को वनों, झीलों, नदियों और वन्यजीवों सहित प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और सुधार करना चाहिए और जीवित प्राणियों के प्रति दया रखनी चाहिए। अनुच्छेद 51ए (जी) पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास में नागरिकों की भूमिका

Slow Murder Continues_Hindi.indd 66 16/07/25 11:25 AM

पर जोर देता है और प्रत्येक नागरिक पर पर्यावरण की रक्षा और उसे बेहतर बनाने की जिम्मेदारी डालता है, जिससे जमीनी स्तर पर पर्यावरणीय न्याय को बढ़ावा मिलता है।

ये संवैधानिक प्रावधान मिलकर भारत में पर्यावरणीय शासन के लिए एक ढांचा तैयार करते हैं। जहां अनुच्छेद 48ए पर्यावरण संरक्षण से संबंधित नीतियों और कानूनों को बनाने में राज्य का मार्गदर्शन करता है, वहीं अनुच्छेद 21 यह सुनिश्चित करता है कि व्यक्तियों को स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार है और उल्लंघन के मामले में वे कानूनी सहारा ले सकते हैं। अनुच्छेद 51ए (जी) इस धारणा को पुष्ट करता है कि पर्यावरण संरक्षण केवल राज्य की जिम्मेदारी नहीं है, बल्कि प्रत्येक नागरिक का भी कर्तव्य है। यह संयुक्त दृष्टिकोण पर्यावरणीय संरक्षण को विकासात्मक आवश्यकताओं के साथ संतुलित करते हुए नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करके पर्यावरणीय न्याय प्राप्त करने में मदद करता है। उपरोक्त संवैधानिक प्रावधानों के अलावा पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 और वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 जैसे कुछ पर्यावरण कानून भी हैं। ये कानून खासतौर पर प्रदूषण को नियंत्रित करने में मदद करते हैं। वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 अपने नियामक ढांचे, प्रदूषण-नियंत्रण उपायों, सार्वजनिक-भागीदारी प्रावधानों, अनुपालन निगरानी और कानूनी उपचारों के माध्यम से प्रदूषण के संपर्क के मूल्यांकन और कमजोर आबादी की भागीदारी में सहायता करके और उल्लंघन करने वालों पर जुर्माना लगाकर अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरणीय न्याय सुनिश्चित करने में योगदान देता है।

एयर एक्ट सीधे तौर पर पर्यावरणीय न्याय की बात नहीं करता, लेकिन इसमें कुछ ऐसे प्रावधान हैं, जो वंचित और प्रभावित आबादी को राहत दिलाने में मदद कर सकते हैं। इस अधिनियम में ऐसे तरीके हैं, जिनसे आम लोग प्रदूषण नियंत्रण उपायों के निर्माण और कार्यान्वयन में सहभागिता कर सकते हैं। इस अधिनियम की धारा 21 केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों को वायु प्रदूषण की रोकथाम, नियंत्रण और कमी के लिए उपाय करने का अधिकार देती है, अप्रत्यक्ष रूप से सार्वजनिक भागीदारी के रास्ते प्रदान करती है। ये बोर्ड अक्सर जन सुनवाई करते हैं, प्रस्तावित विनियमों पर जनता से सुझाव मांगते हैं और वायु गुणवत्ता डेटा की

Slow Murder Continues_Hindi.indd 67 16/07/25 11:25 AM

निगरानी और रिपोर्टिंग में जनता को शामिल कर सकते हैं।

हालांकि, 1981 के वायु अधिनियम में आधुनिक पर्यावरणीय कानून के समान स्पष्ट प्रावधान नहीं हैं, जो जन भागीदारी को अनिवार्य करते हों, लेकिन बोर्डों (जिनमें आमतौर पर सरकारी एजेंसियों, उद्योग, पर्यावरण संगठनों और कभी-कभी जनता के सदस्यों सहित विभिन्न हितधारकों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं) की स्थापना और उनकी कार्यप्रणाली से ऐसी व्यवस्था बनती है, जिनके जरिए वायु प्रदूषण नियंत्रण और प्रबंधन से संबंधित मामलों में सार्वजनिक भागीदारी हो सकती है।

वायु अधिनियम में जन भागीदारी के प्रावधानों के साथ-साथ प्रदूषण-नियंत्रण उपायों का उल्लंघन करने वालों के लिए कानूनी उपचार और दंड का भी प्रावधान किया गया है। यह प्रभावित व्यक्तियों और समुदायों को पर्यावरणीय उल्लंघन के मामलों में अदालतों का दरवाजा खटखटाने की अनुमति देता है। यह अधिनियम कानूनी समाधान के रास्ते प्रदान करके नागरिकों को स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण के अपने अधिकार की रक्षा करने का अधिकार देता है। इसलिए भले ही वायु अधिनियम में "पर्यावरणीय न्याय" शब्द का सीधा इस्तेमाल न किया गया हो, लेकिन इसके कुछ प्रावधान पर्यावरणीय न्याय के सिद्धांतों का पालन करते हैं। ये प्रावधान एक ऐसे नीतिगत उपकरण के रूप में काम कर सकते हैं, जो पर्यावरणीय न्याय को और मजबूत बनाने में मदद कर सकते हैं।

हालांकि, वायु अधिनियम जैसे कानूनों में भले ही अच्छे प्रावधान हों, लेकिन इनमें स्पष्ट दिशा-निर्देशों और कानूनी अनिवार्यताओं की कमी भी है। जिसके कारण न्याय के सिद्धांतों से संबंधित इन प्रावधानों का इस्तेमाल इन्हें लागू करने वाले अधिकारी और प्रदूषण फैलाने वाली कंपनियों, फैक्ट्रियों के विवेक पर छोड़ दिया गया है। "प्रदूषण फैलाने वाला भुगतान करेगा" सिद्धांत के तहत अगर कोई उद्योग प्रदूषण फैलाता है, तो उस पर जुर्माना लगाया जाता है। लेकिन, कई बार उद्यमियों को लगता है कि उत्सर्जन कम करने के लिए महंगा तरीका अपनाने की बजाय जुर्माना देना ज्यादा सस्ता है। ऐसी कमियां सामाजिक-आर्थिक रूप से हाशिए पर पड़े समुदायों पर प्रदूषण का बोझ और बढ़ा देती हैं, क्योंकि उनके पास प्रभावी ढंग से विरोध करने के लिए या तो जागरुकता की कमी होती है या फिर इतना राजनीतिक प्रभाव नहीं होता है कि

Slow Murder Continues_Hindi.indd 68 16/07/25 11:25 AM

वे प्रदूषण के खिलाफ मजबूती से आवाज उठा सकें।

ऐसा ही एक और अधिनियम है, जो केंद्र सरकार को पर्यावरण की रक्षा और सुधार के लिए उपाय करने का अधिकार देकर लोगों के लिए स्वच्छ पर्यावरण सुनिश्चित करने का प्रावधान करता है। इसका नाम पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 है। हालांकि, इस अधिनियम के ज्यादातर प्रावधान "वायु अधिनियम" जैसे ही हैं, जो पर्यावरणीय न्याय के सिद्धांतों को दर्शाते हैं। लेकिन, इस अधिनियम में सबसे महत्वपूर्ण बात पर्यावरण प्रभाव आकलन (ईआईए) की अनिवार्यता है। ईआईए एक प्रक्रिया है, जिसमें किसी भी नई परियोजना (जैसे फैक्ट्री, बांध) के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का पहले से मूल्यांकन किया जाता है। हालांकि, भारत की ईआईए प्रक्रिया में "पर्यावरणीय न्याय" शब्द का सीधा जिक्र नहीं है। फिर भी, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय (एमओईएफसीसी) द्वारा जारी ईआईए अधिसूचना में ऐसे कई तरीके बताए गए हैं, जो अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरणीय न्याय को बढ़ावा देते हैं। इन तरीकों का लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि औद्योगिक परियोजनाओं को मंजूरी देते समय पर्यावरण संबंधी चिंताओं और प्रभावित समुदायों के हितों को ठीक से सुना और सुलझाया जाए।

अगर ईआईए (पर्यावरण प्रभाव आकलन) का ठीक से इस्तेमाल किया जाए तो यह पर्यावरण से जुड़ा न्याय दिलाने का एक बहुत बड़ा जरिया बन सकता है। ईआईए यह अनिवार्य करता है कि बिजली संयंत्रों, खनन जैसी प्रदूषण फैलाने वाली सभी विकास परियोजनाओं का उनके आसपास के पर्यावरण और लोगों पर क्या असर पड़ेगा, इसका पहले आकलन किया जाए। यह आकलन पर्यावरण की मंजूरी देने से पहले किया जाता है। राज्य सरकारें किसी भी परियोजना को मंजूरी देने से पहले उसके पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का आकलन करती हैं और इसमें अक्सर जनता से सलाह मशविरा भी शामिल होता है। प्रभावित समुदायों को प्रस्तावित परियोजना के बारे में अपनी चिंताएं, राय और शिकायतें बताने का मौका देने के लिए जन सुनवाई और बैठकें की जाती हैं। ईआईए सभी संबंधित पक्षों को प्रस्तावित परियोजनाओं के पर्यावरणीय, सामाजिक और आर्थिक प्रभावों के बारे में पूरी जानकारी देता है। समुदायों और हितधारकों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल करने से उन्हें परियोजना के संभावित पर्यावरणीय और सामाजिक-

Slow Murder Continues_Hindi.indd 69 16/07/25 11:25 AM

आर्थिक प्रभावों के बारे में अपनी चिंताएं व्यक्त करने का अवसर मिलता है।

ईआईए की पर्यावरण प्रभाव चेकलिस्ट में कभी-कभी पर्यावरणीय पहलुओं के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक पहलुओं को भी शामिल किया जाता है। कुछ मामलों में, ईआईए अधिसूचना के तहत स्थानीय समुदायों पर औद्योगिक परियोजनाओं के संभावित सामाजिक प्रभावों का आकलन करने के लिए एक अलग से "सामाजिक प्रभाव आकलन (एसआईए)" रिपोर्ट तैयार करना जरूरी होता है। एसआईए यह जानने के लिए डेटा इकट्ठा करता है कि प्रस्तावित परियोजना आसपास की आबादी (जनसांख्यिकी संरचना), मौजूदा सामाजिक सुविधाओं (जैसे स्कूल, अस्पताल) और स्थानीय समुदायों पर क्या असर डालेगी।

एसआईए प्रभावित समुदायों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन करता है, आजीविका, संसाधनों तक पहुंच और सामाजिक सुविधाओं पर पड़ने वाले संभावित प्रभावों की पहचान करता है। यह ऐसे उपाय भी सुझाता है, जिनसे नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सके और परियोजना के कारण होने वाली या बढ़ने वाली सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को दूर किया जा सके। अगर एसआईए के माध्यम से जानकारी सही और ईमानदारी से एकत्र की जाती है, तो यह कमजोर हितधारकों को सोच-समझकर निर्णय लेने में मदद करती है, ताकि वे पर्यावरण और समुदायों दोनों पर विकास के दीर्घकालिक प्रभावों को समझ सकें। इसके साथ ही, 2006 का ईआईए कानून व्यापक दृष्टिकोण से समाज में परियोजनाओं के बोझ और लाभों के निष्पक्ष वितरण को सुनिश्चित करके पर्यावरणीय अन्याय को दूर करने की क्षमता रखता है। यह निर्णय लेने वालों को कमजोर या हाशिए पर पड़े समुदायों पर पड़ने वाले संभावित असमान प्रभावों पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है, ताकि निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में समानता को बढ़ावा मिले।

पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन (ईआईए) प्रक्रिया की प्रभावशीलता को लेकर लंबे समय से बहस और आलोचनाएं होती रही हैं, विशेषकर हाशिए पर मौजूद समुदायों के अधिकारों की रक्षा और सार्थक जन सहभागिता सुनिश्चित करने को लेकर। 2006 की अधिसूचना, जिसमें लचीलापन इस उद्देश्य से शामिल किया गया था ताकि भविष्य में नई वैज्ञानिक आवश्यकताओं को समाहित किया जा सके, लेकिन ऐसा लगता है कि ईआईए के पूरे उद्देश्य को

Slow Murder Continues_Hindi.indd 70 16/07/25 11:25 AM

कमजोर करने के लिए एक औजार की तरह उसका दुरुपयोग किया गया है। ईआईए 2006 अधिसूचना में बताया गया है कि किन-किन क्षेत्रों और परियोजनाओं के लिए मंजूरी लेने से पहले 'जन सुनवाई' या 'सार्वजनिक परामर्श' जरूरी है। इसमें इन दोनों प्रक्रियाओं का पूरा तरीका भी बताया गया है। सार्वजनिक परामर्श, एक बड़ी प्रक्रिया है, जिसमें ईआईए के दौरान सभी संबंधित पक्षों (हितधारकों) से बातचीत की जाती है, ताकि प्रस्तावित परियोजना पर उनकी राय और सुझाव लिए जा सकें। दूसरी ओर, जन सुनवाई सार्वजनिक परामर्श प्रक्रिया का एक खास हिस्सा है। इसमें लोगों को एक तय अधिकारी (यानी सुनवाई करने वाले अधिकारी) के सामने सीधे अपनी बात कहने और परियोजना पर अपने विचार व्यक्त करने का मौका मिलता है।

पहले केवल 'राष्ट्रीय रक्षा' जैसे कुछ खास क्षेत्रों को ही सार्वजनिक परामर्श से छूट मिलती थी, लेकिन समय के साथ, इस छूट वाली सूची में और भी सेक्टर और उद्योग जुड़ते गए हैं। जुलाई 2023 में मंत्रालय ने एक अधिसूचना जारी कर कहा कि जिन स्टैंडअलोन री-रोलिंग या कोल्ड रोलिंग इकाइयों (जो कुछ धातुओं को दोबारा इस्तेमाल करती हैं) को मान्य संचालन और स्थापना की अनुमति मिल चुकी है, यदि वे एक वर्ष के भीतर टर्म्स ऑफ रेफरेंस (ToR) के लिए आवेदन करती हैं, तो उन्हें जन परामर्श की आवश्यकता नहीं होगी। अक्टूबर 2021 में मंत्रालय ने एक और ज्ञापन जारी किया, जिसमें सिर्फ सार्वजनिक परामर्श के आधार पर (बिना पूरी जन सुनवाई के) लोहे, मैंगनीज, बॉक्साइट और चूना पत्थर जैसे छोटे खनिजों के उत्पादन में 20% तक बढ़ोतरी की अनुमति दे दी गई। इसी तरह, 1994 के ईआईए नियमों के तहत जिन पुरानी खनन परियोजनाओं को मंजूरी मिली थी, उनके लिए भी ढील देते हुए जन सुनवाई की प्रक्रिया को और आसान कर दिया गया है। 2006 की ईआईए अधिसूचना में उल्लिखित पूरी जन सुनवाई प्रक्रिया का पालन करने की बजाय केवल सार्वजनिक परामर्श से गुजरना होगा। सार्वजनिक परामर्श और डेटा तक पहुंच में इस तरह की ढील देने से ईआईए की क्षमता कमजांर होगी। ईआईए का मूल उद्देश्य पर्यावरण न्याय सुनिश्चित करना था, यानी यह देखना कि परियोजनाओं का असर सभी पर समान रूप से पड़े और खासकर कमजोर लोगों को नुकसान न हो। यह छूट ईआईए के पीछे के बुनियादी सिद्धांत को ही धुंधला कर देगी। ईआईए का मूल

Slow Murder Continues_Hindi.indd 71 16/07/25 11:25 AM

सिद्धांत था लोगों और पर्यावरण की रक्षा करना और ऐसा न्याय देना जिसमें उन लोगों को भी आवाज मिले जिनकी आवाज अक्सर सुनी नहीं जाती।

पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने जनवरी 2019 में राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम (एनसीएपी) शुरू किया। इसका मुख्य लक्ष्य 24 राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों के 131 शहरों (जहां हवा खराब है या जहां 10 लाख से ज्यादा लोग रहते हैं) में हवा की गुणवत्ता सुधारना है। इसमें सभी संबंधित पक्षों को शामिल करके 2025-26 तक पीएम 10 की सघनता में 40 प्रतिशत तक की कमी लाई जा सके और राष्ट्रीय स्वच्छ वायु गुणवत्ता मानकों को पूरा किया जा सके। एनसीएपी में वायु प्रदूषण और इसके प्रतिकूल प्रभावों को संबोधित करने के उद्देश्य से प्रावधान बनाए गए हैं। इसे मोटे तौर पर बाहर की वायु गुणवत्ता में सुधार के लिए डिजाइन किया गया है। हालांकि, जैसा कि पहले कहा गया है, एनसीएपी की एक जरूरी बात यह है कि यह प्रदूषण वाले हॉटस्पॉट (यानी सबसे ज्यादा प्रदूषण वाले इलाकों) की पहचान करता है और वहां कार्रवाई को प्राथमिकता देता है। यद्यपि यह प्रावधान सीधे तौर पर पर्यावरणीय न्याय की ओर इशारा नहीं करता है, लेकिन यह प्रावधान उन समुदायों के लिए फायदेमंद है, जो प्रदूषण के हॉटस्पॉट वाले इलाकों में रहते हैं और असमान रूप से ज्यादा प्रदूषण का सामना करते हैं। इससे उनके ऊपर प्रदूषण का बोझ कम करने का मौका मिलता है।

एनसीएपी प्रभावित समुदायों, नागरिकों के सामाजिक संगठनों और स्थानीय अधिकारियों सहित सभी हितधारकों को इसमें शामिल करने पर जोर देता है। यह सहभागी तरीका हाशिए पर पड़े समुदायों की चिंताओं और विचारों को वायु गुणवत्ता सुधार के उपायों की योजना और लागू करने में शामिल करने में मदद कर सकता है। एनसीएपी में स्थानीय अधिकारियों और समुदायों की वायु प्रदूषण से प्रभावी ढंग से निपटने की क्षमता बढ़ाने के लिए भी पहल शामिल हैं। इसमें लोगों को वायु प्रदूषण के स्वास्थ्य प्रभावों के बारे में जागरूक करना, वायु गुणवत्ता की निगरानी और प्रबंधन पर प्रशिक्षण देना और समुदायों को स्थानीय हवा की गुणवत्ता सुधारने के लिए कदम उठाने में सशक्त बनाना शामिल है। एनसीएपी में "स्वास्थ्य प्रभाव आकलन" करने के प्रावधान भी हैं। इनका उद्देश्य बच्चों, बुजुर्गों और पहले से बीमार लोगों जैसी कमजोर आबादी पर वायु प्रदूषण के बुरे स्वास्थ्य प्रभावों का मूल्यांकन करना है। इसके साथ

Slow Murder Continues_Hindi.indd 72 16/07/25 11:25 AM

ही, एनसीएपी का उद्देश्य एक मजबूत वायु गुणवत्ता निगरानी और रिपोर्टिंग प्रणाली तैयार करना है, जो सुधार की प्रगति को पारदर्शी और सुलभ डेटा के माध्यम से ट्रैक कर सके।

"राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम" (एनसीएपी) में कुछ और सुधार करने की जरूरत है, ताकि यह कार्यक्रम ज्यादा प्रभावी हो सके और खासतौर पर उन गरीब और कमजोर लोगों को फायदा पहुंचा सके, जो प्रदूषण से ज्यादा प्रभावित होते हैं। एनसीएपी को ऐसे तरीके और संकेतक जोड़ने चाहिए, जो यह बता सकें कि वायु प्रदूषण के बहुत ज्यादा संपर्क में आने वाले और प्रदूषण फैलाने वाली जगहों के पास रहने वाले समुदाय कितने कमजोर हैं। इसमें यह भी प्रावधान होना चाहिए कि बड़ी इंफ्रास्ट्रक्चर और औद्योगिक परियोजनाओं का समुदायों पर क्या असर होगा, इसका आकलन किया जाए। साथ ही, पर्याप्त सुरक्षा उपाय किए जाएं और प्रदूषण कम करने के ऐसे तरीके अपनाए जाएं, जिनसे लोगों की आजीविका पर कम से कम असर पड़े। एनसीएपी ने पहले से ही शहरों को प्रदूषण के अलग-अलग क्षेत्रों में हुई प्रगति की रिपोर्ट देने के लिए संकेतक दिए हैं। अब इनमें "समता संकेतक" भी शामिल किए जाने चाहिए, ताकि यह देखा जा सके कि प्रदूषण कम करने के प्रयासों का फायदा सभी वर्गों को समान रूप से मिल रहा है या नहीं।

फिलहाल, भारत में हवा की गुणवत्ता की निगरानी का नेटवर्क सीमित है। शहरों और क्षेत्रों में ऐसे बड़े इलाके हैं, जहां प्रदूषण के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, इन्हें "डेटा शैडो" क्षेत्र कहते हैं। राष्ट्रीय परिवेशी वायु गुणवत्ता निगरानी कार्यक्रम के तहत अक्टूबर 2023 तक देश में 931 मैनुअल स्टेशन और 516 रियल-टाइम सीएएक्यूएम स्टेशन हैं। इनमें से 512 मैनुअल और 344 सीएएक्यूएम स्टेशन एनसीएपी शहरों में हैं। लेकिन, अभी भी देश का एक बड़ा हिस्सा और बड़ी आबादी इस निगरानी नेटवर्क के दायरे में नहीं है। भले ही यह कमी हवा को साफ करने की कार्रवाई को बड़े पैमाने पर लागू करने में बाधा न हो, लेकिन फिर भी अभी इस बारे में हमारे पास पूरी जानकारी नहीं है कि कमजोर समुदायों पर वायु प्रदूषण का भौगोलिक रूप से यानी किस इलाके में कितना और क्या असर हो रहा है। ये प्रदूषित क्षेत्र बहुत व्यापक रूप से फैले हो सकते हैं, जैसे प्रदूषित औद्योगिक क्षेत्र, बिजली उत्पादन वाले इलाके, भीड़भाड़ वाले ट्रैफिक क्षेत्र, राजमार्गों पर भारी यातायात, कचरा डंप करने

Slow Murder Continues_Hindi.indd 73 16/07/25 11:25 AM

वाली जगहें और कचरे से ऊर्जा बनाने वाले संयंत्र, झुग्गी-झोपड़ियां और अनधिकृत बस्तियां, नगरपालिका के बाहर की कॉलोनियां और संवेदनशील इलाके जिनमें स्कूल, अस्पताल और वृद्धाश्रम शामिल हैं।

हर उस जगह पर जहां डेटा नहीं है (डेटा-शैडो एरिया) और जहां कमजोर समुदायों के लोग रहते हैं, उन्हें कवर करने और प्रदूषण मापने के लिए वहां सरकारी निगरानी (जैसे बड़े, महंगे स्टेशन) लगाना महंगा है। इसलिए हमें बहु-आयामी दृष्टिकोण के लिए सैटेलाइट-आधारित निगरानी (उपग्रहों से डेटा लेना) और सेंसर-आधारित निगरानी (छोटे सेंसर का इस्तेमाल करना) जैसे वैकल्पिक तरीके अपनाने जरूरी हैं। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) ने प्रदूषण के हॉटस्पॉट इलाकों की निगरानी के लिए सेंसर के इस्तेमाल की इजाजत दे दी है, लेकिन इसे अभी कानूनों का पालन कराने के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। इसी तरह, सैटेलाइट डेटा की मदद से छोटे-छोटे इलाकों की भी सटीक मैपिंग की जा सकती है कि वहां प्रदूषण कितना है। यह जरूरी है कि लोगों को वायु गुणवत्ता का डेटा मिले, ताकि वे खुद जोखिमों को समझ सकें और कदम उठा सकें।

एनसीएपी कार्यक्रम के तहत, जिन शहरों में हवा खराब है, उन्हें “हॉटस्पॉट एक्शन प्लान” (सबसे प्रदूषित इलाकों के लिए कार्य योजना) बनाने और लागू करने का निर्देश दिया गया है। अभी हॉटस्पॉट को कचरा जलाने, सड़क की धूल, कंस्ट्रक्शन आदि जैसे बिखरे हुए प्रदूषण स्रोतों के आधार पर परिभाषित किया जाता है। लेकिन, अभी ऐसी कोई नीति नहीं है कि हॉटस्पॉट की पहचान करते समय यह भी देखा जाए कि वहां रहने वाले स्थानीय समुदायों को प्रदूषण का कितना सामना करना पड़ रहा है। स्थानीय स्तर पर कार्रवाई करने और प्रदूषण स्रोतों के करीब रहने वाले समुदायों की सुरक्षा के लिए इस दृष्टिकोण को बदलने की जरूरत है। दिल्ली में पहले 13 हॉटस्पॉट पहचाने गए थे, जो बाद में बढ़कर 18 हो गए। इनमें ओखला फेज 2, द्वारका, अशोक विहार, बवाना, नरेला, मुंडका, पंजाबी बाग, वजीरपुर, रोहिणी, विवेक विहार, जहांगीरपुरी और मायापुरी जैसे औद्योगिक क्षेत्रों के साथ ही आनंद विहार (मंडोली सहित), शादीपुर, आईटीओ जैसे ज्यादा यातायात वाले इलाके और आरके पुरम, मंदिर मार्ग, नेहरू नगर, पटपड़गंज, सोनिया विहार, ध्यानचंद स्टेडियम और मोती बाग सहित आवासीय और

Slow Murder Continues_Hindi.indd 74 16/07/25 11:25 AM

मनोरंजक क्षेत्र शामिल हैं।

वायु प्रदूषण से निपटने के लिए भारत में चल रहे प्रयासों में कुछ महत्वपूर्ण कमियां हैं, खासकर जब बात स्थानीय समुदायों पर पड़ने वाले असमान प्रभाव की आती है। इन कमियों को दूर करने के लिए कार्यक्रम और नीतियों में बदलाव की सख्त जरूरत है। फिलहाल, वायु प्रदूषण के हॉटस्पॉट (सबसे ज्यादा प्रदूषित इलाकों) के लिए बनाई गई योजनाओं में मुख्य रूप से प्रदूषण के स्रोतों, जैसे सड़क की धूल, निर्माण स्थल, ट्रैफिक जाम और कचरा जलाने को दर्शाया जाता है। लेकिन, इन योजनाओं में कई महत्वपूर्ण पहलुओं को शामिल नहीं किया जाता है। जैसे, यह नहीं बताया जाता कि स्थानीय समुदाय किस हद तक और किस प्रकार के प्रदूषण के सीधे संपर्क में हैं। उन समुदायों की कमजोरी और प्रदूषण से निपटने की उनकी क्षमता का आकलन नहीं किया जाता है। यह भी स्पष्ट नहीं होता कि स्वच्छ हवा के प्रयासों से इन समुदायों को वास्तव में क्या लाभ मिलेंगे। डेटा की कमी के कारण अक्सर खतरनाक लैंडफिल के पास बसे समुदायों को इन योजनाओं में शामिल नहीं किया जाता। हॉटस्पॉट से जुड़ी इन योजनाओं को और बेहतर व समुदाय-उन्मुख बनाने के लिए अभी इसमें सुधार की काफी गुंजाइश है। उदाहरण के लिए, मुंडका क्षेत्र में 2018 में प्लास्टिक कचरे को खुले में जलाने पर रोक लगा दी गई, जिससे वहां के स्थानीय श्रमिकों और समुदायों के जहरीले प्रदूषण के संपर्क को कम करने में मदद मिली। लेकिन, यह भी समझना जरूरी है कि ट्रैफिक जाम और कचरा जलाने जैसी समस्याएं सिर्फ स्थानीय प्रयासों से पूरी तरह से हल नहीं होंगी, बल्कि इसके लिए शहर-स्तरीय व्यवस्थित हस्तक्षेप आवश्यक है।

वायु गुणवत्ता प्रबंधन के मौजूदा दृष्टिकोण की एक बड़ी सीमा यह है कि वायु (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 का मुख्य ध्यान केवल वातावरणीय वायु गुणवत्ता पर केंद्रित है। इस कानून में"एक्सपोजर" यानी प्रदूषण स्रोतों के निकट और प्रत्यक्ष संपर्क से उत्पन्न होने वाले स्वास्थ्य जोखिमों को कोई कानूनी मान्यता नहीं दी गई है। जबकि, यही वह कारक है, जो प्रदूषण स्रोतों के सीधे और निकट संपर्क के कारण समुदायों द्वारा सामना किए जाने वाले स्वास्थ्य जोखिम को निर्धारित करता है। इस संदर्भ में अब तक एकमात्र नीतिगत दिशा 2015 में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय की "वायु प्रदूषण और स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों पर स्टीयरिंग कमेटी की रिपोर्ट" से आई

Slow Murder Continues_Hindi.indd 75 16/07/25 11:25 AM

है। रिपोर्ट में कहा गया है कि वायु प्रदूषण के प्रभाव को समझने के लिए यह जानना कहीं अधिक जरूरी है कि लोग प्रदूषण स्रोत के कितने करीब हैं, वे किन रासायनिक तत्वों को सांस के जरिए ग्रहण कर रहे हैं और कितना समय प्रदूषण के इन स्रोतों के करीब बिता रहे हैं। जबकि, अभी प्रदूषण के दुष्प्रभाव की बात करते वक्त सबसे ज्यादा ध्यान इस पर रहता है कि वायुमंडल में कौन से प्रदूषक तत्व मौजूद हैं, जो अक्सर मौसम और जलवायु के प्रभाव में बदलते रहते हैं। यह जरूरी हो गया है कि केवल वातावरणीय सघनता को नियंत्रित करने वाले दृष्टिकोण यानी "सघनता प्रबंधन" से अब "एक्सपोजर प्रबंधन" की ओर बढ़ा जाए। सिर्फ एयर क्वालिटी इंडेक्स (एक्यूआई) से स्वास्थ्य जोखिम की सही तस्वीर नहीं मिलती, क्योंकि यह किसी खास समुदाय की सीधी, दीर्घकालिक और स्थानीय प्रदूषण के संपर्क की वास्तविकता को नहीं दर्शाता। इस सिद्धांत को राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम (एनसीएपी) और शहरों, राज्यों व क्षेत्रों की स्वच्छ वायु कार्ययोजनाओं के ढांचे में एकीकृत करना होगा, ताकि ये योजनाएं अधिक समुदाय-केंद्रित बन सकें।

अगर हमें अपनी हवा को साफ करना है, तो सिर्फ प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों पर ही ध्यान देने से बात नहीं बनेगी। स्वच्छ हवा के लिए कई अलग-अलग क्षेत्रों में काम करना जरूरी है और इसके लिए ऐसे नए निर्माण (जैसे सड़कें, इमारतें) बनाने होंगे, जो ज्यादातर लोगों को पर्यावरण के लिए अच्छे विकल्प चुनने में मदद करें। जब हम नई सड़कें या इमारतें बनाते हैं या पुराने शहरी इलाकों को नया रूप देते हैं, तो अक्सर इसकी योजना और डिजाइन में इस बात का पूरा ध्यान नहीं रखा जाता कि इससे गरीब या कमजोर समुदायों पर क्या असर पड़ेगा। इन योजनाओं में उन सुरक्षा उपायों की कमी हो सकती है जो इन समुदायों को विस्थापन, आजीविका के नुकसान या प्रदूषण के बढ़ते संपर्क से बचा सकें। यह कमी खासकर परिवहन क्षेत्र में बन रही बड़ी-बड़ी योजनाओं में साफ दिखती है, जहां अक्सर सड़कों, मेट्रो लाइनों आदि के विकास में गरीबों की जरूरतों को नजरअंदाज कर दिया जाता है।

वर्तमान में हवा को साफ रखने के लिए जितनी भी योजनाएं बन रही हैं, उन सभी में शून्य-उत्सर्जन वाली किफायती यात्रा विकल्पों को शामिल किया जा रहा है, जैसे पैदल चलना, साइकिल चलाना। ये शहरों में रहने वाले गरीबों के मुख्य यातायात साधन हैं और वायु प्रदूषण के समाधान का भी

Slow Murder Continues_Hindi.indd 76 16/07/25 11:25 AM

हिस्सा हैं। लेकिन, इन्हें सभी के लिए खासकर, उच्च आय वर्ग के बीच भी लोकप्रिय और व्यवहारिक विकल्प के रूप में शामिल करने की जरूरत है। लेकिन, सार्वजनिक परिवहन के लिए योजनाएं बनाते वक्त अक्सर पैदल चलने और साइकिल चलाने को बढ़ावा देने के लिए जरूरी सड़कों और सुविधाओं (बुनियादी ढांचे) की योजनाओं और उनके क्रियान्वयन की अनदेखी कर दी जाती है।

इसी तरह, वायु प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने के लिए मेट्रो और आधुनिक बस सेवाओं को बढ़ावा के लिए कई कदम उठाए जा रहे हैं। लेकिन, सार्वजनिक परिवहन सेवाओं की योजनाएं बनाने और उन्हें लागू करने के तरीके न्यायसंगत और किफायती नहीं हैं। सीएसई द्वारा 2018 में किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि वैश्विक मानकों के हिसाब से अगर कोई परिवार अपनी आय का 10-15 प्रतिशत से अधिक परिवहन पर खर्च करता है, तो उसे किफायती नहीं माना जाता है। सबसे कम आय वाले 20 प्रतिशत परिवार आमतौर पर अपनी आय का 10 प्रतिशत से अधिक परिवहन पर खर्च नहीं कर पाते हैं। दिल्ली की लगभग एक-तिहाई या 34 प्रतिशत आबादी बुनियादी परिवहन सुविधा का सबसे जरूरी हिस्सा मानी जाने वाली गैर-एसी बस सेवाओं के दायरे से बाहर है। यह सस्ती सार्वजनिक परिवहन तक पहुंच में भारी असमानता दिखाती है। परिवहन पर अधिक खर्च का सीधा असर आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी बुनियादी जरूरतों पर पड़ता है, जो आखिर में समावेशी विकास को बाधित करता है।

राज्य सरकारें सार्वजनिक परिवहन के लिए कुछ नीतियां बनाती हैं, लेकिन उनमें टिकाऊ वित्तीय मॉडल की कमी है। उदाहरण के तौर पर कई राज्य सरकारें कुछ खास समूहों, जैसे महिलाओं के लिए बसों का किराया मुफ्त कर देती हैं। यह एक अच्छा कदम है। लेकिन, उनके पास इस व्यवस्था को चलाने के लिए कोई टिकाऊ वित्तीय मॉडल नहीं होता। अक्सर उन्हें यह नहीं पता होता कि लंबे समय तक इन सुविधाओं को कैसे चलाया जाएगा, फिर चाहे वह सब्सिडी देना हो, कर सुधार हों या आय के दूसरे स्रोत हों। सार्वजनिक परिवहन प्रणाली को सस्ता और टिकाऊ बनाने के लिए लंबी अवधि की नई रणनीतियों की जरूरत है। दूसरी तरफ, मेट्रो और बस रैपिड ट्रांजिट सिस्टम जैसे आधुनिक परिवहन बुनियादी ढांचे का विकास गरीबों को

Slow Murder Continues_Hindi.indd 77 16/07/25 11:25 AM

शहर से बाहर धकेल सकता है। इससे उनकी आजीविका बाधित होती है, क्योंकि उन्हें अपने काम की जगह तक पहुंचने के लिए ज्यादा दूरी तय करनी पड़ती है, जिससे यात्रा का समय और खर्च दोनों बढ़ जाते हैं। आईआईटी दिल्ली के ट्रांसपोर्ट रिसर्च एंड इनजीनियरिंग पॉलिसी प्लानिंग (टीआरआईपीपी) के एक अध्ययन में पाया गया कि दिल्ली मेट्रो के कारण झुग्गियां विस्थापित हुईं। जिन परिवारों को दूसरी जगह बसाया गया, उनके लिए साइकिल या बस से तय की जाने वाली दूरी और यात्रा का समय दोनों कई किलोमीटर बढ़ गए। इसी तरह, शैक्षणिक और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच की औसत दूरी और यात्राओं की संख्या भी बढ़ गई, जिसके परिणामस्वरूप पैदल चलने और साइकिल के उपयोग में गिरावट देखी गई।

इसी तरह, सीईपीटी के एक अध्ययन से पता चलता है कि बीआरटी मेट्रो परियोजना के कारण आबादी के निचले 50 प्रतिशत हिस्से के लिए घरेलू बजट में परिवहन पर खर्च बहुत बढ़ गया, जबकि शिक्षा और स्वास्थ्य पर खर्च स्थिर रहा। अहमदाबाद बीआरटी परियोजना से लगभग 2,000 रेहड़ी-पटरी वाले (वेंडर) विस्थापित हुए जिससे सामाजिक-आर्थिक असमानता और बढ़ गई और समुदायों की संकट सहन करने की क्षमता और कमजोर हो गई। इसलिए यह आवश्यक है कि "गरीबों के अनुकूल गतिशीलता" (गरीबों के लिए मददगार साबित होने वाली परिवहन व्यवस्था) और आवास योजनाओं को वायु प्रदूषण नियंत्रण उपायों के साथ जोड़ा जाना चाहिए। ऐसा करने से लोगों को आजीविका के कई विकल्प मिल पाएंगे और श्रम बाजार भी अधिक कुशल बन पाएगा।

भारत में ऐसी परिवहन नीतियां मौजूद हैं, जो अगर सही ढंग से लागू हों तो वे शहर के विकास की ऐसी समावेशी योजना बनाने में मदद कर सकती हैं, जो सभी वर्गों के लोगों को साथ लेकर चलें। उदाहरण के लिए, ट्रांजिट ओरिएंटेड डेवलपमेंट (टीओडी) एक ऐसी नीति है, जो परिवहन के मुख्य केंद्रों (जैसे मेट्रो स्टेशन या बस स्टॉप) के पास घनी आबादी वाले और व्यवस्थित शहरी विकास पर जोर देती है। जो मिश्रित-उपयोग (ऐसी इमारतें या क्षेत्र जहां रहने की जगह, काम करने की जगह, दुकानें और मनोरंजन की सुविधाएं एक साथ हों) और मिश्रित-आय (ऐसे विकास जिसमें अलग-अलग आय वर्ग के लोग एक साथ रह सकें, ताकि गरीब लोग भी परिवहन

Slow Murder Continues_Hindi.indd 79 16/07/25 11:25 AM

केंद्रों के पास रह सकें) और सुलभ परिवहन (जिससे लोगों का आना-जाना आसान हो) के विकास को प्रोत्साहित करे। इन नीतियों को जमीन पर उतारने के लिए सरकारी और अन्य संस्थानों को अधिक कुशल बनाने की जरूरत है। राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर जो नीतियां गरीबों के लिए बनाई जा रही हैं, उन्हें बनाते और लागू करते समय इस बात का खास ध्यान रखना चाहिए कि वे वास्तव में गरीबों की जरूरतों और समस्याओं के प्रति संवेदनशील हों। यानी, सिर्फ कागज पर नहीं, बल्कि व्यवहार में भी गरीबों को फायदा मिल सके। ■

Slow Murder Continues_Hindi.indd 80 16/07/25 11:25 AM

दिल्ली : जन-संहार के पीछे की राजनीति

वायु प्रदूषण के खिलाफ दिल्ली की कानूनी लड़ाई से मिले सबक आज भी बेहद प्रासंगिक हैं

1996ः दिल्ली की हवा धुएं और धुंध से काली हो गई थी। शहर को नहीं पता था कि उसे किस चीज ने घेरा था। लोगों की सांसों में जहर भर रहा था। जहरीली हवा ने पूरे शहर को अपने कब्जे में ले लिया था। वायु प्रदूषण और उसके नुकसान के बारे में लोगों में कम जानकारी थी। सबने समझा कि यह तो बस सर्दियों का धुंधलका है। साल 1996 के नवंबर में यानी आज से करीब 30 साल पहले सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट (सीएसई) ने “स्लो मर्डरः द डेडली स्टोरी ऑफ व्हीकुलर पॉल्यूशन इन इंडिया” नाम की एक किताब प्रकाशित की।

इस किताब की शुरुआत “पॉल्यूशन अंडर कंट्रोल (पीयूसी)” सिस्टम की पड़ताल से हुई। इसमें सवाल उठाया गया था कि क्या दिल्ली या कोई भी शहर हर गाड़ी के टेलपाइप से निकलने वाले धुएं की जांच करके अपनी हवा को साफ कर सकता है। इसमें यह सवाल भी उठाया गया था कि क्या शहर

Slow Murder Continues_Hindi.indd 81 16/07/25 11:25 AM

की हवा को साफ करने के लिए और कदम उठाने की जरूरत है, जैसे कि धुआं कम करने की बेहतर तकनीक और अच्छी गुणवत्ता वाला ईंधन का इस्तेमाल। यह अपनी तरह की पहली जांच थी और इसका असर भी देखने को मिला।

सीएसई की दिल्ली की हवा को साफ करने की मुहीम की शुरुआत "स्लो मर्डर" वाली रिपोर्ट से हुई। याद रखें कि यह उस दौर की बात है जब वायु प्रदूषण पर कोई चर्चा नहीं होती थी। यह किसी की चिंता का विषय या एजेंडे का हिस्सा नहीं था। सीएसई से बार-बार पूछा जाता था, "आप काली हवा को लेकर इतनी चिंता क्यों कर रहे हैं?" दिल्ली के तत्कालीन उपराज्यपाल ने कहा था कि यह सिर्फ धूल है, इससे घबराने की कोई जरूरत नहीं। तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री ने भी कहा था कि वायु प्रदूषण से स्वास्थ्य को कोई खतरा नहीं है।

दिल्ली की खराब हवा को देखते हुए किताब का नाम "स्लो मर्डर" रखा गया। प्रदूषण तुरंत लोगों की जान नहीं लेता। यह शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता को कमजोर करता है, जिससे फेफड़ों को नुकसान पहुंचता है और कैंसर और दिल की बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है। "यह धीमी जरूर थी, लेकिन फिर भी हत्या ही थी।" सरकार और उद्योगों की जिस मिलीभगत की वजह से हजारों लोग धीरे-धीरे मौत के मुंह में समा गए, इस किताब ने उसकी गहराई से पड़ताल की। *डाउन टू अर्थ* ने इस किताब पर एक रिपोर्ट की थी। मैगजीन ने 15 नवंबर, 1996 के अपने अंक के कवर पर 3 बड़े चेहरे छापे- वन एवं पर्यावरण मंत्री जय नारायण प्रसाद निषाद, पेट्रोलियम मंत्री टीआर बालू (उस समय प्राकृतिक गैस नहीं थी) और बजाज मोटर्स के मालिक और उस समय भारत के ऑटो किंग राहुल बजाज। कवर पर लिखा था, "नेल्ड! फॉर स्लो मर्डर।" ऐसा क्यों लिखा गया? क्योंकि सीएसई की जांच में पता चला था कि गाड़ियों के लिए स्टैंडर्ड मानक बनाने के प्रस्ताव अलग-अलग विभागों के बीच बस घुमाए जा रहे थे। उस समय भारत में गाड़ियों से होने वाले उत्सर्जन के लिए भारत स्टेज (बीएस) I या II जैसे मानक नहीं थे। साफ ईंधन को लेकर बातें तो हो रही थीं, लेकिन कोई ठोस फैसला नहीं लिया गया था। उस समय ईंधन में सल्फर की मात्रा 10,000 पार्ट्स पर मिलियन (पीपीएम) या उससे भी ज्यादा हुआ करती थी (आज बीएस VI मानक के तहत यह

Slow Murder Continues_Hindi.indd 82 16/07/25 11:25 AM

घटकर सिर्फ 10 पीपीएम रह गई है)।

राहुल बजाज का चेहरा कवर पर इसलिए था, क्योंकि उस समय दोपहिया और तिपहिया गाड़ियों में इस्तेमाल होने वाली 2-स्ट्रोक तकनीक से बहुत ज्यादा प्रदूषण फैलता था। उस वक्त बाजाज का गाड़ियों के बाजार पर लगभग एकाधिकार था। यह वह दौर था जब 4-स्ट्रोक तकनीक नहीं आई थी और न ही निजी गाड़ियां रखने का चलन था। 4-स्ट्रोक तकनीक के आने के बाद ही हीरो होंडा जैसी कंपनियों का उदय हुआ। इसी तरह, जब निजी कारों का चलन बढ़ा, तो मारुति-सुजुकी और फिर कई अन्य कंपनियां सामने आईं। सीएसई की लड़ाई का मकसद था कि फ्यूल टेक्नॉलजी के लिए कड़े मानक बनाए जाएं, ताकि इन मानकों के जरिए प्रदूषण फैलाने वाली गाड़ियों को सड़कों से हटाया जा सके। इसे ही आज पहली पीढ़ी के सुधार कहा जाता है। भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति के आर नारायणन ने अपने आधिकारिक आवास पर इस किताब का विमोचन किया। इससे काफी लोगों का ध्यान इस मुद्दे की ओर गया। इसके बाद सीएसई ने नवंबर 1996 में राजधानी में स्थित फिक्की ऑडिटोरियम में एक जनसभा आयोजित की।

लेकिन, जैसा कि होता आया है एक साल गुजर गया और कुछ भी नहीं बदला। ऑटोमोबाइल उद्योग ने हर तरह के सुधार का लगातार विरोध किया और सरकार सिर्फ कागजी खानापूरी में ही उलझी रही। 1997 में इस मुद्दे को लेकर सीएसई ने एक बार फिर जनता का रुख किया। इस बार सीएसई के पास ठोस आंकड़े थे, जिनसे पता चलता था कि प्रदूषण की वजह से कितनी मौतें हुईं। सीएसई के वर्ल्ड बैंक के मॉडल पर आधारित विश्लेषण से यह चौंकाने वाला खुलासा हुआ कि 1991 से 1995 के बीच सिर्फ चार सालों में वायु प्रदूषण के कारण समय से पहले होने वाली मौतों में 30 प्रतिशत की भारी बढ़ोतरी हुई थी। हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. नरेश त्रेहान ने फेफड़ों की दो तस्वीरें दिखाईं । उन्होंने कहा कि ऑपरेशन के दौरान वे सिर्फ फेफड़ों का रंग देखकर पहचान जाते थे कि मरीज किस इलाके से था। डॉ. त्रेहान ने बताया कि पहली तस्वीर दिल्ली के एक शख्स के फेफड़ों की थी। यहां बीड़ी-सिगरेट न पीने वाले इंसान के फेफड़े भी काले हो गए थे। दूसरी तस्वीर हिमाचल प्रदेश के एक शख्स की थी, जिसके फेफड़े बिल्कुल गुलाबी थे। इन सब चीजों की वजह से कार्रवाई में तेजी आई। दिसंबर 1997 में तत्कालीन केंद्रीय पर्यावरण

Slow Murder Continues_Hindi.indd 83 16/07/25 11:25 AM

और वन मंत्री सैफुद्दीन सोज ने दिल्ली के प्रदूषण पर एक रिपोर्ट जारी की, जो आगे चलकर एक कार्य योजना का आधार बनी। जनवरी 1998 में केंद्रीय पर्यावरण और वन मंत्रालय (एमओइएफ) ने राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) के लिए पर्यावरण प्रदूषण (रोकथाम एवं नियंत्रण) प्राधिकरण (ईपीसीए) का गठन किया।

जून 1998 में ईपीसीए ने प्रदूषण की रोकथाम के लिए जरूरी कदमों पर अपनी पहली रिपोर्ट जारी की। इसमें बताया गया था कि दिल्ली की हवा को साफ करने के लिए कौन-कौन से जरूरी कदम उठाने चाहिए, जैसे कि डीजल गाड़ियों पर रोक लगाना और कंप्रेस्ड नेचुरल गैस (सीएनजी) के इस्तेमाल को बढ़ावा देना। तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश ए. एस. आनंद की अध्यक्षता वाली सुप्रीम कोर्ट की मुख्य बेंच ने जुलाई में ईपीसीए की रिपोर्ट के आधार पर समय-सीमा तय करते हुए निर्देश जारी किए। इसमें सभी तिपहियों और डीजल बसों को सीएनजी गाड़ियों में बदलने की अंतिम तारीख तय की गई। दिल्ली की साफ-सफाई का काम बस शुरू ही होने जा रहा था। लेकिन जहां एक तरफ सुप्रीम कोर्ट फैसले ले रही थी, वहीं सरकार ने कदम पीछे खींच लिए। प्रभावशाली और स्वार्थी ताकतों का का राज चलता रहा। उन्होंने कोई बदलाव नहीं होने दिया। क्यों? क्योंकि डीजल के बड़े पैरोकार थे।

यह वह समय था जब विज्ञान ने प्रदूषण के असली कारण "छोटे कणों" को पहचान लिया था। तब तक हम सिर्फ एक प्रदूषक जानते थे, जिसे सस्पेंडेड पार्टिकुलेट मैटर (एसपीएम) कहा जाता है। अब सबूतों से यह साबित हो गया कि असल में ये छोटे कण हानिकारक थे। इन्हें रिस्पिरेबल सस्पेंडेड पार्टिकुलेट मैटर (आरएसपीएम) कहा जाता था, क्योंकि ये इतने छोटे होते थे कि ये आसानी से सांस के साथ अंदर चले जाते थे। आरएसपीएम से जुड़ा पहला सर्वे 1998 में किया गया था। कणों का आकार पता चलने और उनकी जानलेवा विषाक्तता की पहचान करने के बाद आरएसपीएम को पीएम 10 और फिर पीएम 2.5 कहा जाने लगा। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) के आंकड़ों से यह पता चला कि आरएसपीएम का स्तर 24 घंटे के राष्ट्रीय मानक से पांच गुना ज्यादा था, जो जानलेवा था। लेकिन, यह आरएसपीएम आता कहां से था? तब तक दुनिया भर में हो रहे शोध कणों के आकार और जहरीलेपन के आधार पर डीजल की ओर इशारा करने लगे थे।

Slow Murder Continues_Hindi.indd 84 16/07/25 11:25 AM

ये शोध न सिर्फ यह बता रहे थे डीजल जलता कैसे है, बल्कि यह भी दिखा रहे थे कि यह अपने आप में कितना खतरनाक हो सकता है। अध्ययनों से पता चला कि डीजल गाड़ियों से निकलने वाला 90 प्रतिशत धुआं 1 माइक्रोन से भी छोटे कणों का होता है, जिन पर कैंसर पैदा करने वाले पॉली-अरोमैटिक हाइड्रोकार्बन (पीएएच) और अन्य जहरीले तत्वों की परत चढ़ी होती है। 1998 में दस साल के शोध के बाद कैलिफोर्निया एयर रिसोर्सेज बोर्ड ने आधिकारिक रूप से डीजल के कणों को जहरीले वायु प्रदूषक घोषित किया। इसके बाद जापान में किए गए अध्ययनों में यह पाया गया कि डीजल के धुएं में कैंसर पैदा करने वाला एक शक्तिशाली तत्व होता है। यह ऑटो इंडस्ट्री के लिए बुरी खबर थी। उन्होंने इसका विरोध किया, और मामला बिगड़ गया।

1998 में कार उद्योग तेजी से बढ़ रहा था। एंबेसडर कार बनाने वाली हिंदुस्तान मोटर्स जैसे पुराने खिलाड़ी अब मारुति सुजुकी और हुंडई जैसी तेज रफ्तार गाड़ियां बनाने वाली कंपनियों से पीछे रह गए थे। इस बीच पहले टेल्को के नाम से जानी जाने वाली टाटा मोटर्स अब पैसेंजर कारों के बाजार में कदम रखने की तैयारी कर रही थी। अब तक यह कंपनी कमर्शियल ट्रकों और बसों के बाजार में अपनी मजबूत पहचान बना चुकी थी। टाटा मोटर्स ने जापानी और कोरियाई कंपनियों के कब्जे वाले कार बाजार में अपनी जगह बनाने की एक खास रणनीति तैयार की थी। उनका प्लान एक ऐसी कार लॉन्च करने का जो स्मार्ट तो हो ही, साथ ही सस्ती भी पड़े। कैसे? वह तब तक सिर्फ सार्वजनिक परिवहन के लिए ही इस्तेमाल होने वाले डीजल को कार में इस्तेमाल करने वाले थे। कंपनी डीजल से चलने वाली सूमो लॉन्च करने ही वाली थी। प्रदूषण नियंत्रण के लिहाज से यह बात बिल्कुल ठीक नहीं थी। ईपीसीए पहले ही सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर कर चुका था, जिसमें बसों में डीजल के इस्तेमाल पर रोक लगाने की मांग की गई थी। सीएसई के संस्थापक निदेशक स्वर्गीय अनिल अग्रवाल ईपीसीए के सदस्य थे। सीएसई चाहती थी कि सभी बसें साफ ईंधन यानी सीएनजी पर चलें और कारों में भी गंदा और जहरीला डीजल इस्तेमाल न हो।

1999 में, सीएसई ने एक और रिपोर्ट जारी की, जिसका शीर्षक था "इंजन्स ऑफ द डेविल– ह्वाय डीजलाइजेशन ऑफ प्राइवेट ऑटोमोबाइल फ्लीट शुड बी बैन्ड।" यह रिपोर्ट काफी तीखे अंदाज में पेश की गई थी और

Slow Murder Continues_Hindi.indd 85 16/07/25 11:25 AM

टाटा मोटर्स को बिल्कुल भी पसंद नहीं आई थी। अप्रैल 1999 में टाटा मोटर्स ने सीएसई पर 100 करोड़ रुपए का मानहानि का मुकदमा दायर किया। यह मुकदमा उस लेख के खिलाफ था, जो सीएसई ने बिजनेस स्टैंडर्ड अखबार में डीजल के विषाक्त प्रभावों पर लिखा था। सीएसई इस मामले को जनता के सामने ले कर आई। टाटा ने नोटिस वापस तो ले लिया लेकिन लड़ाई गुपचुप तरीके से जारी रही। डीजल के पक्ष में प्रचार करने के लिए टाटा मोटर्स ने पब्लिक रिलेशंस फर्म "बर्सन-मार्सटेलर रोजर पेरेरा कम्युनिकेशंस" को नियुक्त किया। जल्द ही डीजल के बारे में मिथक और तथ्यों को बताने वाले पैम्फलेट सामने आने लगे। यह इंटरनेट युग के पहले की बात है। इन पैम्फलेट में गुमनाम विशेषज्ञों के विचार थे और जिनसे निर्णय लेने वालों को प्रभावित किया जा रहा था। इसके बाद डीजल के बचाव में कई गैर-लाभकारी संगठन सामने आ गए। एक "सिटिजन्स अगेंस्ट पॉल्यूशन" नाम का संगठन था, जिसका एजेंडा ही डीजल का बचाव करना था। झूठी जानकारी फैलाना अब खेल-खेल की बात हो गई थी।

अप्रैल 1999 में ईपीसीए ने एनसीआर में डीजल से चलने वाली निजी गाड़ियों पर प्रतिबंध लगाने के लिए सुप्रीम कोर्ट में एक रिपोर्ट दाखिल की। इस रिपोर्ट में दिल्ली में बढ़ते प्रदूषण और सार्वजनिक स्वास्थ्य पर इसके प्रभाव को देखते हुए इस प्रतिबंध की मांग की गई थी। सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले पर ध्यान दिया और कोर्ट द्वारा नियुक्त एमिकस क्यूरी हरिश साल्वे ने "डीजल गाड़ियों के पंजीकरण को अगले आदेश तक तुरंत निलंबित करने की सिफारिश की।" देश के सर्वोच्च न्यायालय के सम्मानित न्यायधीशों ने सहमति जताई और कहा कि "नागरिकों का जीवन का अधिकार खतरे में है।" सरकार से इस पर जवाब मांगा गया। लड़ाई अब स्तरहीन हो चली थी। सीएसई के निदेशक अनिल अग्रवाल उस समय गंभीर कैंसर से जूझ रहे थे। उन पर व्यक्तिगत हमले किए जाने लगे। ऑटोमोबाइल उद्योग खासकर टाटा मोटर्स ने इस कदम को रोकने के लिए अपनी पूरी ताकत लगा दी। सुप्रीम कोर्ट में टाटा मोटर्स के वकील एफ एस नारिमन और अरुण जेटली, फिएट के वकील पी चिदंबरम, और मारुति के वकील कपिल सिबल ने यह तर्क दिया कि कण हानिकारक नहीं हैं। टाटा मोटर्स के हलफनामे में कहा गया, "मैं यह नहीं मानता कि कण जितने छोटे होते हैं, उतने ही ज्यादा खतरनाक होते हैं।" "मैं यह नहीं मानता कि

Slow Murder Continues_Hindi.indd 86 16/07/25 11:25 AM

आरएसपीएम ज्यादा नुकसानदेह है, क्योंकि यह फेफड़ों में गहरे तक पहुंचकर वहां जमा हो जाता है।" "मैं नहीं मानता, मैं नहीं मानता।" इस बयान को उन्होंने बार-बार दोहराया था।

ऑटोमोबाइल उद्योग से कड़ी आपत्तियों का सामना करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने फैसला लिया कि निजी गाड़ियों के लिए डीजल पर प्रतिबंध लगाने के बजाय ईंधन और उत्सर्जन के मानकों में सुधार किया जाएगा। इस बीच सरकार ने इस पूरे प्रकरण से अपना पल्ला झाड़ लिया। अप्रैल 1999 में सुप्रीम कोर्ट ने आदेश दिया कि एनसीआर में जून, 1999 से सिर्फ यूरो I मानकों का पालन करने वाली गाड़ियों का ही पंजीकरण हो पाएगा। लेकिन, यूरो II मानकों में बदलाव के लिए सिर्फ एक साल का समय दिया गया। कोर्ट के आदेश में कहा गया था कि 1 अप्रैल, 2000 से सिर्फ यूरो II वाहन ही पंजीकरण के लिए मान्य होंगे। इस बीच (1 मई 1999 से 1 अप्रैल 2000 तक) कोर्ट ने प्रति माह 250 डीजल कार और 1,250 पेट्रोल गाड़ियों के पंजीकरण का कोटा निर्धारित किया, जो "पहले आओ, पहले पाओ" के आधार पर होने थे। इस एक निर्णय में सुप्रीम कोर्ट ने व्हीकल टेक्नोलॉजी और फ्यूल के लिए उत्सर्जन के मानक लागू किए और ऑटोमोबाइल उद्योग को बदलाव के लिए छह महीने का समय दिया।

ऑटोमोबाइल उद्योग के वकीलों ने सुप्रीम कोर्ट से कहा कि उन्हें थोड़ा और समय चाहिए, क्योंकि नया नियम लागू होने से उन्हें नुकसान होगा। कोर्ट ने जवाब दिया, "लोग ठीक से सांस नहीं ले पा रहे हैं और आप समय मांग रहे हैं?" उद्योग की तरफ से यह तर्क दिया गया कि लोग ऐसी गाड़ियां एनसीआर के बाहर रजिस्टर करवा रहे हैं, जो प्रदूषण के नियमों पर खरी नहीं उतरतीं। इस पर जजों ने कहा, "चालाकी की कोई सीमा नहीं होती।" कोर्ट ने वकीलों से साफ कह दिया कि "वकील चाहे एक लाइन में बोलें या दो में, कोर्ट फैसला सुनाएगी ही।" इसके बाद जो हुआ, वह इतिहास बन गया। ऑटोमोबाइल कंपनियों ने तय समय तक नए नियम मान लिए। तेल कंपनियों ने साफ फ्यूल देना शुरू कर दिया। दिल्ली की हवा में सुधार आया। लेकिन, एक जरूरी लड़ाई हार गए, निजी डीजल गाड़ियां तेजी से बढ़ने लगीं। जिससे साफ हवा का फायदा धीरे-धीरे खत्म हो गया। फिर इसके बाद एक और अहम मोड़ आया।

Slow Murder Continues_Hindi.indd 87 16/07/25 11:25 AM

16 फरवरी, 2001 को सबकी नजरें देश के मुख्य न्यायाधीश की अदालत पर टिकी थीं। वजह थी दिल्ली में डीजल से चलने वाली सभी बसों, ऑटो, और टैक्सियों को सीएनजी में बदलने की आखिरी तारीख अप्रैल 2001 का काफी करीब आ जाना। दिल्ली सरकार ने कोर्ट से कहा कि उन्हें तीन साल का समय और चाहिए। लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने यह मांग साफ तौर पर खारिज कर दी। यह तो बस शुरुआत थी। अब दिल्ली में सीएनजी लागू करने को लेकर जबरदस्त विरोध शुरू हो गया था। जो लोग आज सरकारी सुस्ती से परेशान हैं, उन्हें यह जानना चाहिए कि किसी भी अच्छे बदलाव के लिए कितनी मेहनत और कितना संघर्ष करना पड़ता है। कोर्ट में तरह-तरह के बहाने दिए गए, जैसे सीएनजी तकनीक अभी ठीक से परखी नहीं गई है, गैस और सिलेंडर उपलब्ध नहीं हैं, वगैरह। लेकिन कोर्ट ने सख्ती दिखाई और कहा, "हमें पता है कि 1 अप्रैल, 2001 से लोगों को थोड़ी परेशानी हो सकती है, लेकिन यह शहरी अव्यवस्था प्रशासन और निजी बस मालिकों की लापरवाही का नतीजा है।" जजों ने साफ कहा कि अगर समय सीमा बढ़ा दी गई तो यह गलती करने वालों को इनाम देने जैसा होगा। आखिर में कोर्ट ने सिर्फ 30 सितंबर 2001 तक का समय दिया, वह भी सख्त शर्तों के साथ। परिवहन विभाग के प्रमुख सचिव को आदेश मानने की व्यक्तिगत जिम्मेदारी दी गई और यह तय किया गया कि डीजल बसें सिर्फ प्रमुख सचिव की इजाजत के साथ ही चल सकेंगी।

जब डीजल बसें सड़कों से हटाई गईं तो 3 अप्रैल 2001 को हिंसा फैल गई। गुस्साए यात्री बसों को आग लगाकर जलाने लगे। राजनेताओं ने एक-दूसरे पर इस दंगे के लिए आरोप लगाने शुरू कर दिए। 7 अप्रैल को द इंडियन एक्सप्रेस ने "ऐंटी सीएनजी लॉबी डज अ वॉर डांस" हेडलाइन के साथ खबर छपी थी। मीडिया में वकीलों ने कहा कि यह मामला संवैधानिक संकट में बदल सकता है। 4 अप्रैल को सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि दिल्ली प्रशासन का आदेशों का पालन न करना "बहुत ही गलत और अस्वीकार्य" है। दिल्ली सरकार ने कोर्ट की अवमानना से बचने के लिए 18 अप्रैल को एक हलफनामा दिया, जिसमें उसने कोर्ट के आदेशों को लागू करने का वादा किया। इसके बाद 27 अप्रैल को कोर्ट ने अवमानना की कार्यवाही बंद कर दी।

Slow Murder Continues_Hindi.indd 88 16/07/25 11:25 AM

सीएनजी और डीजल की बहस अब बचकानी हो चली थी। कुछ लोगों ने सीएनजी को रोकने के लिए जानबूझकर झूठ फैलाना शुरू कर दिया। कुछ ने अल्ट्रा-लो सल्फर डीजल (0.005% सल्फर से कम) को सीएनजी का विकल्प बताया, लेकिन जब अदालत से सिफारिश की गई तो उन्होंने चुपचाप लो सल्फर डीजल (0.05%) का नाम लिया, जो भारत स्टेज II ईंधन का मानक था। इस तरह से एक जीरो हटाकर उन्होंने अदालत को धोखा देने की कोशिश की। इसके बाद यह कहा गया कि गैस उपलब्ध नहीं है और सीएनजी काम नहीं करेगी। सीएनजी को गरीबों के लिए नुकसानदेह बताया गया। बसों और ऑटो चालकों की लंबी कतारों को दिखा कर गुस्सा बढ़ाया गया। सरकार ने यह कहा कि शहर का परिवहन सिर्फ एक ही ईंधन पर निर्भर नहीं हो सकता क्योंकि अगर गैस की आपूर्ति में कोई परेशानी आई, तो पूरा शहर रुक जाएगा। इसलिए ईपीसीए से 0.05 प्रतिशत सल्फर डीजल को एक साफ ईंधन के रूप में मानक बनाने की मांग की गई। विरोधियों ने यह भी कहा कि सीएनजी असुरक्षित है, इससे कैंसर होने का खतरा है और डीजल से ज्यादा हानिकारक कण छोड़ता है। एक अमरीकी बस और ट्रक बनाने वाली कंपनी के लिए किए गए अध्ययन को "हार्वर्ड का अध्ययन" कहकर फैलाया गया और यह गलत जानकारी नीति निर्माताओं तक पहुंचाई गई ताकि सीएनजी को नकारा जा सके। सीएसई को इन झूठों का मुकाबला करना पड़ा और सही जानकारी लोगों तक पहुंचाने के लिए काफी जद्दोजहद करनी पड़ी।

सभी ने यह बात नजरअंदाज कर दी कि सुप्रीम कोर्ट सीएनजी या किसी खास ईंधन को बढ़ावा नहीं दे रहा था, बल्कि उसका मकसद सिर्फ यह था कि दिल्ली की हवा साफ हो। 28 जुलाई 1998 के मूल आदेश में कोर्ट ने सीएनजी और दूसरे साफ ईंधनों की सिफारिश की थी। निर्देशों का पालन करते हुए 2001 में ईपीसीए ने साफ ईंधनों को परिभाषित किया, जिसमें सीएनजी, एलपीजी, कैटालिटिक कन्वर्टर्स के साथ इस्तेमाल हो सकने वाले कम बेंजीन और बिना लेड वाले पेट्रोल, और बेहतर पार्टिकुलेट ट्रैप और 10 पीपीएम सल्फर वाले साफ डीजल को विकल्प के रूप में शामिल किया।

इसके बाद केंद्र सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में ऑटो फ्यूल पॉलिसी कमिटी की एक तात्कालिक रिपोर्ट पेश की, जिसमें कहा गया कि कोर्ट को केवल उत्सर्जन मानक निर्धारित करना चाहिए, न कि ईंधन और टेक्नोलॉजी पर कोई

Slow Murder Continues_Hindi.indd 89 16/07/25 11:25 AM

निर्देश देना चाहिए। लेकिन यह तरीका सही नहीं था क्योंकि यूरो II डीजल बसें सीएनजी की तुलना में 46 गुना ज्यादा प्रदूषण फैलाती थीं। डीजल के प्रदूषण को डब्ल्यूएचओ ने कैंसर पैदा करने वाला बताया था, क्योंकि यह फेफड़ों के कैंसर से जुड़ा था। सीएनजी के खिलाफ हो रही साजिशों के बावजूद सुप्रीम कोर्ट ने जनता के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए सख्त रुख अपनाया हुआ था। कोर्ट ने दबाव की सभी रणनीतियों को नकारते हुए साफ कहा, "कोई डीजल नहीं। कोई डीजल नहीं। कोई डीजल नहीं।"

प्रतिबंध लागू होने की निर्धारित तारीखों के कई बार बीत जाने के बाद मार्च, 2002 में साल्वे ने अदालत में कहा, "यह पांचवीं बार है जब केंद्र और राज्य सरकारें अदालत में डीजल बसों को अनुमति देने की मांग कर रही हैं। अगर यह किसी निजी पार्टी का मामला होता तो इसे दुरुपयोग माना जाता और उस पार्टी से खर्च लिया जाता।" फिर अप्रैल, 2002 में सुप्रीम कोर्ट ने दिल्ली में डीजल बसों पर पूरी तरह से रोक लगा दी। कोर्ट ने हर डीजल बस पर रोज 1,000 रुपए का जुर्माना लगाया और केंद्र सरकार पर भी सीएनजी आदेश में बार-बार बदलाव की मांग करने के लिए जुर्माना लगाया। इससे सरकार पर इसे सही तरीके से लागू करने का दबाव बढ़ा। बस ऑपरेटरों ने विरोध करने की धमकी दी, लेकिन इस बार राज्य सरकार ने झुकने से मना कर दिया। सरकार के बदले हुए रुख को देखकर बस ऑपरेटरों ने जुर्माना देना शुरू किया और सीएनजी बसें खरीद लीं। 1 दिसंबर, 2002 को मीडिया में खबर आई "आखिरकार डीजल बसों को अलविदा।" सीएनजी के लागू होने के बाद दिल्ली में हवा की गुणवत्ता में सुधार दिखने लगा। 2003 के दिल्ली विधानसभा चुनावों से पहले राजनीतिक दलों में एक-दूसरे से सीएनजी का श्रेय लेने की होड़ मच गई। अब दिल्ली का लोकतंत्र और मजबूत हो चुका था।

साफ ईंधन और नई तकनीक पर काम अभी पूरा नहीं हुआ था, लेकिन दिल्ली में तेजी से बढ़ती कारों और दोपहिया गाड़ियों की संख्या पहले हुए सुधारों पर पानी फेर सकती थी। प्रदूषण को सिर्फ धीरे-धीरे पकड़कर नहीं, बल्कि तेजी से आगे बढ़कर ही रोका जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट के आदेशों की वजह से दिल्ली की हवा कुछ हद तक सुधरी थी, लेकिन अगर गाड़ियों की संख्या और ट्रैफिक बहुत बढ़ गया, तो फायदा मिलन रुक सकता था।

Slow Murder Continues_Hindi.indd 90 16/07/25 11:25 AM

2004 में सुप्रीम कोर्ट ने दिल्ली के लिए एक ठोस योजना मांगी, जिससे सार्वजनिक परिवहन को बेहतर बनाया जाए और गाड़ियों की संख्या पर रोक लगे। साल्वे ने इस चिंता को अदालत में एक औपचारिक आवेदन के रूप में पेश किया। इसके बाद कोर्ट ने दिल्ली सरकार को नोटिस भेजा कि वह ट्रैफिक और गाड़ियों की संख्या कंट्रोल करने की योजना बताए। दिल्ली सरकार ने पहली बार मेट्रो, बस, रैपिड ट्रांजिट, और लाइट रेल जैसे पब्लिक ट्रांसपोर्ट नेटवर्क की योजना पेश की, जिसमें उन एजेंसियों और समय सीमा का जिक्र किया गया जिन्हें ये जिम्मेदारी सौंपी जानी थी। हमने भी सुझाव दिया कि पार्किंग नीति और व्हीकल टैक्स जैसे कदम उठाए जाएं, ताकि कारों की संख्या और उनका इस्तेमाल कम हो सके।

अक्टूबर 2015 में एक और बड़ा मोड़ आया। सुप्रीम कोर्ट ने एक बार फिर दिल्ली की जानलेवा सर्दियों में बढ़ते प्रदूषण पर सख्त कदम उठाए। हर सर्दी के साथ दिल्ली में खांसी, सांस लेने में तकलीफ और घुटन जैसी समस्याएं बढ़ती जा रही थीं। हम लगातार प्रदूषण के स्तर, स्वास्थ्य पर असर और इसके स्रोतों से जुड़े आंकड़ों को इकट्ठा कर रहे थे, ताकि जागरूकता फैलाई जा सके और ठोस कार्रवाई हो। इस बार हमारे पास मजबूत वैज्ञानिक सबूत थे। आईआईटी कानपुर की एक नई स्टडी ने दिल्ली में प्रदूषण फैलाने वाले प्रमुख कारणों की रैंकिंग की और यह साफ किया कि डीजल कारें वाहनों से होने वाले पीएम 2.5 प्रदूषण का 70–80 प्रतिशत हिस्सा जिम्मेदार थीं। इससे स्रोत के हिसाब से बेहतर निर्णय लेना संभव हुआ। सुप्रीम कोर्ट ने डीजल ट्रकों, कारों और टैक्सियों से निकलने वाले जहरीले धुएं, कचरा जलाने, निर्माण कार्य और सड़कों की धूल पर कड़ी कार्रवाई की। साथ ही सार्वजनिक परिवहन को बेहतर बनाने, पैदल चलने और साइकिल चलाने के लिए बुनियादी ढांचे को मजबूत करने का निर्देश दिया। अब ध्यान सिर्फ दिल्ली तक सीमित नहीं रहा, बल्कि पूरे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) पर केंद्रित हो गया। इससे पंजाब और हरियाणा में हर साल होने वाली पराली जलाने की समस्या पर भी कार्रवाई संभव हुई जो पहले एक बड़ी चुनौती थी।

कोर्ट के फैसलों से आखिरकार ये साफ हो गया कि डीजल कारें ज्यादा प्रदूषण फैलाती हैं। निजी कारों में कम टैक्स वाले डीजल का इस्तेमाल हो रहा था, जिसे गलत माना गया। 16 दिसंबर, 2015 को सुप्रीम कोर्ट ने अपने

Slow Murder Continues_Hindi.indd 91 16/07/25 11:25 AM

आदेश में कहा कि आमतौर पर 2000 सीसी या उससे बड़ी डीजल गाड़ियां और एसयूवी अमीर लोग इस्तेमाल करते हैं और ये गाड़ियां ज्यादा प्रदूषण फैलाती हैं। इसलिए कोर्ट ने सर्दियों के दौरान इन गाड़ियों की बिक्री पर कुछ समय के लिए रोक लगा दी। हमेशा की तरह कार कंपनियों ने इस फैसले का विरोध किया, लेकिन जजों ने कहा कि इससे लोगों को यह समझ आएगा कि ये गाड़ियां पर्यावरण के लिए कितनी हानिकारक हैं। ईपीसीए की एक लंबित सिफारिश के मुताबिक डीजल कार मालिकों को यह सुझाव दिया गया कि वे कार की कीमत का कम से कम 20 प्रतिशत, पर्यावरण शुल्क के रूप में दें, ताकि पेट्रोल कारों की तरह टैक्स का संतुलन बना रहे। लेकिन डीजल कार कंपनियों ने बैन से बचने के लिए सिर्फ 1 प्रतिशत शुल्क देने की पेशकश की और उन्हें बैन से छुटकारा मिल गया।

कार उद्योग ने एक बार फिर अदालत में यह तर्क देना शुरू किया कि डीजल कारें ज्यादा प्रदूषण नहीं करती हैं। 5 जनवरी 2016 को मुख्य न्यायाधीश टी एस ठाकुर ने कंपनियों को फटकार लगाते हुए कहा, "आप कह रहे हैं कि डीजल वाहन कम प्रदूषण करते हैं, तो क्या आपके वाहन ऑक्सीजन छोड़ रहे हैं? लोगों का जीवन दांव पर है और आप कारें बेचने में जुटे हैं।" अदालत की सख्ती का नतीजा यह हुआ कि केंद्र सरकार ने 2016 में एक बहुत बड़ा फैसला लिया कि 2020 तक सीधे यूरो-V प्रदूषण मानकों को छोड़कर यूरो-VI मानकों को लागू किया जाएगा। यह बहुत बड़ा कदम था क्योंकि यूरो-VI पर ही पेट्रोल और डीजल से निकलने वाला प्रदूषण लगभग बराबर हो जाता है, जिससे डीजल गाड़ियों से होने वाला नुकसान कम होता। इसे एक 'पासा पलटने वाला' फैसला माना गया।

दिल्ली ने सर्दियों में चरम पर पहुंचने वाले प्रदूषण को कम करने में कुछ हद तक सफलता हासिल की थी, जिससे उम्मीद जगी थी। लेकिन सर्दियों के बाद यह सुधार थम गया। 2016 में दिवाली के बाद जो भयंकर धुंध (स्मॉग) छाई, वह पिछले 17 सालों में सबसे खराब थी। इससे साबित हुआ कि दिल्ली अभी भी प्रदूषण से निपटने के लिए तैयार नहीं थी। सुप्रीम कोर्ट ने इस पर गहरी चिंता जताई। 8 नवंबर, 2016 को मुख्य न्यायाधीश ने कहा कि प्रदूषण अब इंसानों की सहनशीलता से बाहर हो गया है। यह मानव जीवन के लिए खतरनाक हो गया है। उन्होंने इसे एक "आपदा" बताया और सरकार से इसके

लिए एक "आपदा प्रबंधन योजना" और ठोस नीति बनाने को कहा।

आज दिल्ली के पास ई-बसों के लिए एक महत्वाकांक्षी योजना तो है, लेकिन बसों की संख्या उतनी तेजी से नहीं बढ़ रही, जितनी जरूरत निजी वाहनों की वृद्धि को रोकने के लिए है। इसका नतीजा यह हुआ कि 2023 में दिल्ली में निजी गाड़ियों की संख्या पिछले साल के मुकाबले दोगुनी हो गईं। यह तब है जब पेट्रोल-डीजल महंगा हुआ है और अपनी कमाई का बड़ा हिस्सा परिवहन पर खर्च कर रहे हैं। निजी कारों की बढ़ती संख्या न केवल सड़क पर जाम बढ़ाती है, बल्कि सड़कें चौड़ी करने, फ्लाईओवर और हाईवे बनाने में जो पैसा खर्च होता है, उसका फायदा खत्म हो जाता है, क्योंकि ज्यादा गाड़ियां होने से फिर से जाम लगने लगता है। पुरानी गाड़ियां अब भी प्रदूषण कर रही हैं और सरकार का स्क्रैपेज प्रोग्राम प्रभावी नहीं है। भले ही नई गाड़ियां कम प्रदूषण करती हों, लेकिन अगर उनकी संख्या बहुत ज्यादा बढ़ जाती है, तो कुल मिलाकर फायदा खत्म हो जाता है। यह आसान गणित है!

स्वच्छ आसमान और साफ फेफड़ों की इस लड़ाई में मुख्य स्रोत वह ईंधन है, जिसे हम घरेलू चूल्हों से लेकर कारखानों और थर्मल पावर प्लांट तक जलाते हैं। अधिकतर मामलों में यह बायोमास या कोयला होता है। सुप्रीम कोर्ट ने पेट कोक (ऐसे ईंधनों में सबसे गंदा) के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया। दिल्ली सरकार ने कोयले के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया, जिसे बाद में पूरे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र तक बढ़ा दिया गया। यह भी सहमति हुई थी कि थर्मल पावर प्लांट या तो सफाई करेंगे या बंद हो जाएंगे। लेकिन, इन आदेशों पर अमल बहुत ही अधूरा और अव्यवस्थित रहा है। सीएनजी में बदलाव से सबक यह मिलता है कि अगर कोई ईंधन बैन करना है, तो लोगों को उसका सस्ता और आसानी से मिलने वाला विकल्प देना जरूरी है। जब डीजल बसों को रोका गया, तो सीएनजी की सप्लाई और उसकी सस्ती कीमत सुनिश्चित करनी पड़ी। नया विकल्प लागत के मामले में भी व्यवहारिक होना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट इससे सहमत था कि स्वच्छ ईंधन को गंदे ईंधन से सस्ता रखने के लिए राजकोषीय उपायों की आवश्यकता होगी। कोयले पर प्रतिबंध लग गया है, लेकिन प्राकृतिक गैस (जो कोयले का एक स्वच्छ विकल्प है) की कीमत बहुत ज्यादा है। इससे उद्योगों के लिए इसका इस्तेमाल करना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि वे महंगे ईंधन के साथ प्रतिस्पर्धी नहीं रह पाते। इसलिए यह

Slow Murder Continues_Hindi.indd 93 16/07/25 11:25 AM

तरीका काम नहीं करेगा।

दिल्ली को अपनी लंबे समय से चली आ रही वायु गुणवत्ता में हुई बढ़त के खोने का डर लग रहा है। सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट की तरफ से 2024 में किए गए पीएम2.5 के सालाना ट्रेंड के आकलन से पता चला है कि दिल्ली अपनी लंबे समय से चली आ रही वायु गुणवत्ता में सुधार को खोने के जोखिम पर है। 2022 से लगातार दूसरे साल पीएम 2.5 में वृद्धि हुई। इसे केवल मौसम संबंधी कारकों के कारण होने वाली वार्षिक गड़बड़ी के रूप में नहीं देखा जा सकता। इसका मतलब है कि क्षेत्र में प्रदूषण बढ़ रहा है। 2024 में पीएम 2.5 की वार्षिक सांद्रता बढ़कर 104.7 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर हो गई, जो 2023 से 3.4 प्रतिशत अधिक और राष्ट्रीय परिवेशी वायु गुणवत्ता मानक (40 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर) से दोगुनी से भी ज्यादा थी। 2018 से 2022 के बीच पीएम2.5 का स्तर स्थिर हुआ या थोड़ा कम हुआ था, लेकिन अब यह फिर से बढ़ रहा है। वाहन, उद्योग, कचरा जलाने, ठोस ईंधन के इस्तेमाल, निर्माण कार्य और धूल जैसे स्थानीय और क्षेत्रीय प्रदूषण के स्रोतों ने पिछले एक दशक में हुई प्रगति को कम कर दिया है। दिल्ली अब पराली जलाने को बहाना नहीं बना सकती, क्योंकि 2024 की सर्दियों में पराली जलाने की घटनाएं 71.2 प्रतिशत कम हो गईं, फिर भी प्रदूषण बढ़ा हुआ रहा। सर्दियों के दौरान (1 अक्टूबर से 31 दिसंबर 2024) में प्रदूषण का स्तर पिछले साल से 26 प्रतिशत ज्यादा रहा। दिल्ली में 17 दिन हवा "गंभीर" या उससे भी खराब रही, और दो बार लंबे समय तक घना स्मॉग छाया रहा। शहर में 17 दिन "गंभीर" या उससे भी खराब वायु गुणवत्ता रही, साथ ही दो लंबी धुंध (स्मॉग) की घटनाएं हुईं, जिनकी औसत तीव्रता क्रमशः 371 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर और 324 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर थी, जिससे प्रदूषण का औसत स्तर बढ़ा रहा।

2024 में पीएम 2.5 के स्तर का बढ़ना एक बड़ी खतरे की घंटी है, क्योंकि इससे पता चलता है कि पहले प्रदूषण कम करने के लिए जो मेहनत की गई थी, वह अब बेकार हो रही है। हवा का प्रदूषण फिर से बढ़ रहा है और पिछले कुछ सालों में जो सुधार हुए थे, वे अब खत्म हो रहे हैं। सुप्रीम कोर्ट के आदेशों के बाद दिल्ली में परिवहन और उद्योगों में स्वच्छ ऊर्जा का इस्तेमाल बढ़ा था, जिसके बाद राज्य 2018 से पीएम 2.5 के स्तर को स्थिर

Slow Murder Continues_Hindi.indd 94 16/07/25 11:25 AM

Slow Murder Continues_Hindi.indd 95 16/07/25 11:25 AM

कर पाया था। यहां तक कि सबसे पुराने 5 स्टेशनों पर ध्यान दिया जाए तो 2013 से इसमें लगातावर गिरावट देखी जा रही थी।

दिल्ली में पंजीकृत कुल वाहनों की संख्या में 2016 तक लगातार वृद्धि देखी गई, जो 2011-12 की तुलना में लगभग 33 प्रतिशत ज्यादा है। 2016 और 2021 के बीच वार्षिक पंजीकरण में लगभग 35 प्रतिशत की गिरावट शुरू हुई, जो ऑटोमोबाइल क्षेत्र में मंदी और कोविड-19 महामारी के कारण हुई। लेकिन, 2022-23 में मोटर वाहनों की संख्या में जबरदस्त सुधार देखा गया, आश्चर्यजनक रूप से वाहनों के रजिस्ट्रेशन में 47 प्रतिशत की वृद्धि हुई। कुल वाहनों में दोपहिया वाहनों की संख्या सबसे ज्यादा है। 2020-21 में महामारी के दौरान इसमें लगभग 42 प्रतिशत की गिरावट आई, जबकि निजी कारों की बिक्री में 2019-2021 के बीच थोड़ी (13 प्रतिशत) कमी आई। महामारी के दौरान ही कैब और ऑटो-रिक्शा की बिक्री में बहुत ज्यादा (क्रमशः 90 प्रतिशत और 65 प्रतिशत) गिरावट दर्ज की गई, लेकिन 2021-22 के दौरान इनकी संख्या में बहुत तेज उछाल आया और ये वाहन क्रमशः 84 प्रतिशत और 99 प्रतिशत तक बढ़ गए।

वित्तीय वर्ष 2011 से 2023 के बीच दिल्ली में सभी सेगमेंट के वाहनों की बिक्री लगभग समान रही। दोपहिया वाहन हमेशा की तरह सबसे ज्यादा रहे, जिनकी हिस्सेदारी 60 प्रतिशत से ज्यादा थी, जो 2018-19 में 74.8 प्रतिशत तक पहुंच गई थी। इसके बाद कारों की हिस्सेदारी भी काफी ज्यादा लगभग 30 प्रतिशत रही और बीते 10 साल में इसमें केवल 1.9 प्रतिशत की कमी दर्ज हुई। कैब की हिस्सेदारी 1 प्रतिशत से कम रही। माल वाहक वाहन केवल 1.8 प्रतिशत बढ़े, तिपहिया और अन्य श्रेणियों के यात्री वाहनों की हिस्सेदारी बहुत कम रही। तिपहिया यात्री वाहनों की हिस्सेदारी अब 3.2 प्रतिशत है, जो पिछले दशक की तुलना में 0.5 प्रतिशत कम है। वाणिज्यिक दोपहिया वाहन, बसें, ऑफ-रोड आदि को मिलाकर इनका कुल हिस्सा 1 प्रतिशत से कम रहा। दोपहिया वाहनों की हिस्सेदारी कभी भी 60 प्रतिशत के निशान से नीचे नहीं गिरी, जो 2018-19 में 74.8 प्रतिशत पर पहुंच गई थी। हालांकि, दोपहिया वाहन बाजार महामारी से बुरी तरह प्रभावित हुआ और 2021-22 में इसकी हिस्सेदारी 66.5 प्रतिशत तक रह गई। इसके उलट महामारी के दौरान कारों की हिस्सेदारी तेजी से बढ़ी और 2021-22 में यह

Slow Murder Continues_Hindi.indd 96 16/07/25 11:25 AM

11 साल में पहली बार 33.46 प्रतिशत तक पहुंच गई। उसी साल दोपहिया वाहनों की बिक्री गिरने से साफ पता चलता है कि लोग अब कारों की ओर ज्यादा जा रहे हैं।

राज्य में सड़कों पर चलने वाले वाहनों विशेषकर निजी वाहनों की अनियंत्रित वृद्धि को रोकने के लिए दिल्ली के परिवहन विभाग (जीएनसीटीडी) ने जनवरी 2022 में 48,77,646 पुराने पेट्रोल और डीजल वाहनों को डी-रजिस्टर कर दिया। यह कदम राष्ट्रीय हरित अधिकरण (एनजीटी) के निर्देश के अनुसार उठाया गया था, जिसमें दिल्ली के एनसीटी (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) की सड़कों पर 10 साल या उससे पुराने डीजल वाहनों और 15 साल या उससे पुराने पेट्रोल वाहनों के चलने पर प्रतिबंध लगाया गया था।

"दिल्ली का आर्थिक सर्वेक्षण 2022-23" के अनुसार डी-रजिस्ट्रेशन अभियान के परिणामस्वरूप राज्य में पंजीकृत वाहनों की संख्या 54.76 प्रतिशत तक कम हो गई और कुल वाहन 79,17,898 से 1,22,53,350 हो गई। इसमें 13,00,000 कारें और 29,00,000 दोपहिया वाहन शामिल थे। हालांकि, परिवहन विभाग ने बताया कि जिन वाहनों का रजिस्ट्रेशन रद्द हुआ है, उनमें से सभी ने सड़कों पर चलना बंद नहीं किया है। 2024 में लगभग 7,00,000 वाहनों ने दूसरे राज्यों में दोबारा पंजीकरण कराने के लिए एनओसी (अनापत्ति प्रमाण पत्र) ले ली थी और लगभग 1,00,000 वाहनों को स्क्रैप कर दिया गया था। दिल्ली ट्रैफिक पुलिस रद्द हुए ऐसे वाहनों को सड़कों पर देखते ही जब्त कर स्क्रैप कर देती है।

वित्तीय वर्ष 2023-24 में दिल्ली में जितने नए वाहन रजिस्टर हुए, उनमें से 11.78 प्रतिशत इलेक्ट्रिक वाहन (ईवी) थे। जबकि 2011-12 में इलेक्ट्रिक वाहनों का बाजार न के बराबर था। यह 2011-12 की तुलना में बहुत बड़ी छलांग है, जब केवल 723 ईवी रजिस्टर हुए थे। हालांकि, राज्य वित्तीय वर्ष 2023-24 तक 25 प्रतिशत विद्युतीकरण (वाहनों को इलेक्ट्रिक बनाने) का अपना लक्ष्य पूरा नहीं कर पाया, लेकिन फिर भी यह 10 प्रतिशत का आंकड़ा पार करने वाले भारत के पहले राज्यों में से एक था और इसकी इलेक्ट्रिक वाहनों में इसकी हिस्सेदारी सबसे ज्यादा थी। दिल्ली ने 2020 में अपनी ईवी नीति लागू की। इसमें बड़े लक्ष्य थे और इसे खरीदने वालों को सब्सिडी (छूट) और टैक्स में छूट दी गई थी, चाहे वे निजी वाहन हों या

Slow Murder Continues_Hindi.indd 97 16/07/25 11:25 AM

व्यावसायिक। इस नीति में पुराने वाहनों को ईवी से बदलने के लिए स्क्रैपेज प्रोत्साहन भी शामिल था। साथ ही, उन कंपनियों को भी मदद दी गई जो पेट्रोल/डीजल वाहनों को ईवी में बदलती हैं। दिल्ली पहला राज्य था, जिसने अपनी नीति में बैटरी बदलने वाले स्टेशनों को भी शामिल किया। उन्हें चार्जिंग स्टेशन बनाने और बैटरी बेचने में सीधे आर्थिक मदद दी गई। दिल्ली का चार्जिंग नेटवर्क बहुत फैला हुआ है, जो "3 किमीx3 किमी" ग्रिड में विकसित क्षेत्रों के 97 प्रतिशत से ज्यादा हिस्से को कवर करता है।

सबसे चिंताजनक बात यह है कि लोग निजी वाहनों (दोपहिया और कार) पर ज्यादा निर्भर होते जा रहे हैं। 1994 से यात्रा के लिए निजी परिवहनों की तरफ झुकाव बढ़ता जा रहा है। 1994 में निजी दोपहिया और कारों की हिस्सेदारी 17 प्रतिशत थी, और बसों की हिस्सेदारी 42 प्रतिशत थी। 2007 में निजी वाहनों की हिस्सेदारी बढ़कर 23 प्रतिशत हो गई, जबकि सार्वजनिक परिवहन (बस और मेट्रो) की हिस्सेदारी घटकर 30 प्रतिशत हो गई। 2018 में, 29 प्रतिशत यात्राएं निजी साधनों से की गईं, और 24 प्रतिशत यात्राएं बस या मेट्रो से की गईं। राजधानी में कुल यात्राओं की संख्या 2008 से 94 प्रतिशत तक बढ़ गई है और पिछले 40 सालों में यह पांच गुना से ज्यादा हो गई है। औसत प्रति व्यक्ति यात्रा दर (पीसीटीआर) में भी बदलाव आया है। हर व्यक्ति द्वारा की जाने वाली यात्राओं की औसत संख्या भी बढ़ी है, 2007 में 1.38 से बढ़कर 2018 में 1.55 हो गई, यह 12 प्रतिशत की वृद्धि है। मोटर से की जाने वाली यात्राओं (पैदल और साइकिल छोड़कर) में भी बढ़ोतरी हुई है। मोटर चालित यात्राओं के लिए पीसीटीआर 2001 में 0.87 था, जो 2018 में बढ़कर 0.905 हो गया। दिल्ली में यात्रा की औसत लंबाई 2007 में 6 किमी से बढ़कर 2018 में 10.9 किमी हो गई है (10 साल में 81 प्रतिशत की बढ़ोतरी)। ऐसा इसलिए हुआ है क्योंकि शहर के बाहरी इलाके विकसित हुए हैं और वहां तक सड़कों और सार्वजनिक परिवहन से पहुंचना आसान हो गया है।

निष्कर्ष के तौर पर, दिल्ली में लोग अब पहले से ज्यादा और लंबी दूरी की यात्राएं कर रहे हैं और पिछले कुछ सालों में यह बढ़ोतरी तेजी से हुई है। एनआईयूए के अनुसार दिल्ली में की जाने वाली 52 प्रतिशत यात्राएं काम से संबंधित होती हैं। 15.4 प्रतिशत यात्राएं मनोरंजक होती हैं और 14 प्रतिशत

शिक्षा से संबंधित यात्राएं होती हैं। मेट्रो की औसत यात्रा लंबाई सबसे ज्यादा 16.7 किमी है, जो लंबी दूरी के आवागमन में मेट्रो की भूमिका को दिखाती है। दोपहिया वाहन, कार और बसें 8 से 14 किमी के बीच की मध्यम दूरी की यात्रा के लिए इस्तेमाल की जाती हैं। 5 किमी से अधिक की सभी यात्राएं मोटर चालित साधनों का उपयोग करके की जाती हैं।

जैसे-जैसे निजी वाहनों का चुनाव करने वालों की संख्या बढ़ती है, सड़क पर भीड़ भी बढ़ती जाती है। इसका सबसे बुरा असर बसों जैसे सार्वजनिक परिवहन पर पड़ता है। बसें पहले से ही नुकसान में हैं और उनकी सेवा अच्छी नहीं है। ट्रैफिक में फंसने से वे और धीमी हो जाती हैं, लोगों का उनपर से भरोसा उठने लगता है और यात्रियों को बसों में सफर करना मुश्किल लगने लगता है। निजी वाहनों की पसंद का यह दुष्चक्र भीड़भाड़ को और बढ़ाता है, जिससे सार्वजनिक परिवहन का प्रदर्शन खराब होता जाता है, और वे निजी वाहनों के मुकाबले और भी कम प्रतिस्पर्धी हो जाता है।

सड़क पर भीड़भाड़ सिर्फ निजी वाहनों पर निर्भरता की निशानी नहीं है, बल्कि यह सक्रिय रूप से निजी परिवहन को बढ़ावा देती है। जब बसें ट्रैफिक में फंसती हैं तो यात्रा का समय बढ़ता है, बसें समय पर नहीं आतीं, और समय और पैसे दोनों के हिसाब से बसों का सफर महंगा हो जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि जो लोग निजी गाड़ी खरीद सकते हैं, वे बसों से दूर हो जाते हैं, जिससे निजी वाहनों की संख्या बढ़ती रहती है। और आखिर में इससे प्रदूषण में भी भारी बढ़ोतरी होती है।

ट्रैफिक जाम और गाड़ियों के बार-बार रुकने-चलने या खड़े रहने से भी शहरों में वायु प्रदूषण बढ़ता है। जाम के दौरान गाड़ियों की "आईडलिंग" यानी इंजन चालू करके खड़े रहने से हवा में नाइट्रोजन ऑक्साइड (एनओएक्स), कार्बन मोनोऑक्साइड (सीओ), पार्टिकुलेट मैटर (पीएम), और वीओसीएस जैसे हानिकारक प्रदूषक उत्सर्जित होते हैं। जब गाड़ी का इंजन रुका होता है या रुक-रुक कर चलता है, तो ईंधन पूरी तरह से नहीं जल पाता। इससे सामान्य गति से चलने वाली गाड़ी की तुलना में ज्यादा प्रदूषण निकलता है। वहीं, "आईडलिंग" के दौरान वाहनों से निकले प्रदूषक जमीन के करीब रहते हैं। जिससे सतह के पास ओजोन का निर्माण बढ़ जाता है जो खासकर शहरों के घने, भीड़भाड़ वाले इलाकों में फेफड़ों को बहुत नुकसान पहुंचाती

Slow Murder Continues_Hindi.indd 99 16/07/25 11:25 AM

है और सांस से जुड़ी गंभीर बीमारियों की वजह बनती है। ट्रैफिक में खड़ी गाड़ियों से निकलने वाला धुआं भी माध्यमिक कार्बनिक एरोसोल (एसओएएस) बनाने में भी मदद करता है। ये कण दिल और फेफड़ों की बीमारियों से जुड़े हैं। इन एसओएएस में अक्सर अल्ट्राफाइन कण (यूएफपीएस) होते हैं। ये इतने छोटे होते हैं कि फेफड़ों के ऊतकों में घुसकर रक्तप्रवाह आसानी से प्रवेश कर जाते हैं। इसीलिए लंबे समय तक शहरों के यातायात से निकले प्रदूषकों के संपर्क में रहने से सेहत को गंभीर नुकसान पहुंचता है।

जब बहुत सारी गाड़ियां ट्रैफिक में फंसी होती हैं, रुक-रुक कर चलती हैं, या खड़ी होती हैं, तो उनके धुएं से एक साथ बहुत ज्यादा प्रदूषण निकलता है। इससे खास जगहों पर "प्रदूषण के हॉटस्पॉट" बन जाते हैं। यह खासकर उन जगहों पर ज्यादा होता है, जहां हवा के निकलने की जगह कम होती है, जैसे अगर सड़क के दोनों तरफ ऊंची-ऊंची इमारतें हों, तो हवा फंस जाती है और प्रदूषण एक सुरंग जैसी जगह में जमा हो जाता है। चौराहों पर गाड़ियां अक्सर रुकती हैं, जिससे वहां भी प्रदूषण बहुत ज्यादा होता है। वैज्ञानिक शोध बताते हैं कि जब कोई गाड़ी खड़ी होती है, लेकिन इंजन चालू रहता है, तो वह सामान्य गति (40-60 किमी प्रति घंटा) पर चलने की तुलना में कई गुना ज्यादा प्रदूषक छोड़ती है।

फरवरी 2025 में प्रकाशित सीएसई की रिपोर्ट "एनाटॉमी ऑफ दिल्लीज कंजेशन" में कई शोधों का हवाला दिया गया है। इन शोधों के अनुसार, बिना रुकावट चलती गाड़ियों की तुलना में ट्रैफिक जाम में फंसे वाहनों से 3 से 7 गुना ज्यादा प्रदूषण उत्सर्जित होता है। जाम के दौरान वाहनों के प्रदूषण में विशेष रूप से एनओ2 (नाइट्रोजन डाइऑक्साइड), सीओ (कार्बन मोनोऑक्साइड) और सीओ2 (कार्बन डाइऑक्साइड) जैसे प्रदूषक बहुत ज्यादा बढ़ जाते हैं। सीएसई की रिपोर्ट में 2023 के एक अन्य अध्ययन का हवाला भी दिया गया है, जिसमें दिखाया गया था कि भीड़भाड़ के कारण पीएम 2.5 में 3.5 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर और ओजोन में 1.1 पार्ट्स प्रति अरब की वृद्धि होती है। रिपोर्ट में दिए गए 2016 के एक और अध्ययन के अनुसार जब ट्रैफिक में देरी होती है, तो एनओ2 में 166 प्रतिशत, एचसी (हाइड्रोकार्बन) में 100 प्रतिशत, सीओ में 180 प्रतिशत और सीओ2 में 71

Slow Murder Continues_Hindi.indd 100 16/07/25 11:25 AM

प्रतिशत की बढ़ोतरी होती है।

ट्रैफिक जाम से बहुत बड़ा आर्थिक नुकसान भी होता है। अनुमान है कि 2030 तक दिल्ली को इससे लगभग 14.7 बिलियन अमेरिकी डॉलर का नुकसान होगा, जिसमें प्रदूषण और ईंधन की बर्बादी भी शामिल है। इंजन चालू करके खड़ी रहने वाली गाड़ियों से ही रोज लाखों डॉलर का ईंधन बर्बाद होता है। सीएसई ने अपनी रिपोर्ट में उन अध्ययनों का हवाला दिया है, जिसमें अनुमान लगाया गया है कि 2030 में ट्रैफिक जाम की वजह से 14,658 मिलियन अमेरिकी डॉलर (प्रदूषण + ईंधन सहित) की चपत लगेगी।

ट्रैफिक जाम में फंसी या खड़ी गाड़ियां सामान्य से कई गुना ज्यादा प्रदूषण छोड़ती हैं। वाहन नाइट्रोजन ऑक्साइड (एनओएक्स) प्रदूषण का एक बड़ा स्रोत हैं। इसलिए वाहनों और एनओएक्स स्तर में प्रति घंटे आने वाले बदलावों के बीच गहरा संबंध है। दिल्ली में 10 से 16 सितंबर 2024 तक सात दिनों के आंकड़ों का विश्लेषण किया गया। इसमें यह देखा गया कि जब गाड़ियां सामान्य रफ्तार (बिना ट्रैफिक के) से नहीं चल पातीं, तो एनओ2 गैस का स्तर कैसे बदलता है। आंकड़ों से पता चला कि कामकाज के दिनों में, खासकर "पीक आवर्स" में जब सड़कों पर सबसे ज्यादा भीड़ होती है, तब गाड़ियों की स्पीड कम होने पर एनओ2 का स्तर बहुत ज्यादा हो जाता है। पीक आवर्स में गति में कमी और एनओ2 स्तरों के बीच सहसंबंध गुणांक -0.534 पाया गया। यानी जब गाड़ियों की गति घटती है, तो एनओ2 प्रदूषण का स्तर बढ़ जाता है। उस एक सप्ताह के आंकड़ों के अनुसार, एनओ2 के स्तर में जितना भी बदलाव आया, उसमें से लगभग 28 प्रतिशत बदलाव की वजह गाड़ियों की धीमी गति थी। ■

Slow Murder Continues_Hindi.indd 101 16/07/25 11:25 AM

हर सेकंड जुड़ते वाहन

भारत की सड़कों पर हर सेकंड 7 नई कारें और 23 नए दोपहिया वाहन बढ़ रहे हैं और पैदल चलने वालों के लिए जगह कम होती जा रही है

भारत में हर यात्री पहले से कहीं ज्यादा प्रदूषण फैला रहा है। किसी भारतीय को कितनी खराब हवा में सांस लेनी होगी, यह इस बात निर्भर करता है कि उसकी आवाजाही कैसी है। हर तीन सेकंड में यानी जितनी देर में आप यह वाक्य पढ़ेंगे, उतनी देर में भारत में 20 नई कारें और 70 नए दोपहिया वाहन पंजीकृत हो चुके होंगे। ये 20 नई कारें जब तक सड़क पर चलती रहेंगी, हर किलोमीटर पर औसतन 3.15 किलोग्राम कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जित करती रहेंगी (2021-22 में कारों के लिए कॉर्पोरेट औसत 157.5 ग्राम कार्बन डाइऑक्साइड प्रति किमी था)। हर 15 सेकंड में इतने ज्यादा नए वाहन पंजीकृत हो जाते हैं कि उन्हें खड़ा करने के लिए फुटबॉल के एक मैदान जितने बड़े पार्किंग स्पेस की जरूरत पड़ती है। इससे पता चलता है कि पार्किंग की कितनी बड़ी समस्या पैदा हो रही है।

शहरों में आवागमन के लिए निजी वाहनों का दबदबा बना हुआ है। वित्तीय वर्ष 2024-25 में भारत में 2.55 करोड़ वाहन पंजीकृत हुए। इनमें 88

Slow Murder Continues_Hindi.indd 102 16/07/25 11:25 AM

प्रतिशत से अधिक निजी वाहन थे, जिनमें मुख्य तौर पर दोपहिया और कारें शामिल थीं। शहरी क्षेत्रों में आवागमन के लिए लोग किस तरह के वाहनों का इस्तेमाल करते हैं, यह जानने के लिए वहां की गतिशीलता योजनाओं और विभिन्न शोधों से जानकारी जुटाई गई। इन जानकारियों की समीक्षा से पता चलता है कि भारतीय शहरों में 35-45 प्रतिशत तक निजी वाहन इस्तेमाल हो रहे हैं, जबकि छोटे सार्वजनिक वाहनों (जैसे ऑटो, रिक्शा) की हिस्सेदारी सिर्फ 10 प्रतिशत और बड़ी बसों या मेट्रो जैसे सार्वजनिक परिवहन का इस्तेमाल 25 प्रतिशत ही है।

शहरों में लोग अब ज्यादा यात्राएं कर रहे हैं और लंबी दूरी भी तय कर रहे हैं। अध्ययन बताते हैं कि बीते 10 सालों में प्रति व्यक्ति यात्रा दर औसतन 17.5 प्रतिशत और यात्रा की लंबाई यानी दूरी औसतन 28.6 प्रतिशत तक बढ़ गई है। मई-जून 2025 में *डाउन टू अर्थ* पत्रिका ने 50 से अधिक शहरों और कस्बों में आवागमन साधनों पर एक देशव्यापी रिपोर्ट जारी की, जिससे पता चला कि भारत में परिवहन की हालत बहुत खराब है और लोगों को मजबूरन गाड़ियां खरीदनी पड़ रही हैं। इसका सीधा नतीजा बढ़ते वायु प्रदूषण के तौर पर हमारे सामने है।

मिजोरम की राजधानी आइजोल इसका सटीक उदाहरण है। हरे-भरे पहाड़ों के बीच बसा खूबसूरत आइजोल शायद ही कभी राष्ट्रीय सुर्खियों में आता हो। लेकिन, यह शहर सोशल मीडिया पर अपने कमाल के ट्रैफिक अनुशासन के लिए पूरे देश में मशहूर हो गया है। यहां शांति से बिना हॉर्न बजाए लंबी कतारों में चलते दोपहिया वाहनों के वीडियो और फोटो वायरल हो गए। न्यूज चैनलों और ट्रेवल ब्लॉगर्स ने भी इन तस्वीरों और वीडियो को खूब शेयर किया और आइजोल की पहचान भारत के इकलौते "शांत शहर" के तौर पर बन गई। लेकिन, अनुशासित यातायात की इस खूबसूरत तस्वीर के पीछे एक कड़वी सच्चाई छिपी है। यहां के लोग हर दिन लगातार लगने वाले ट्रैफिक जाम से परेशान रहते हैं। दरअसल, आइजोल बिना किसी खास योजना के बसा शहर है और इसकी बढ़ती आबादी के लिए यहां का पहाड़ी इलाका बिल्कुल भी ठीक नहीं है। पहाड़ी पर होने के कारण घर खड़ी ढलानों पर बने हैं जिससे सड़कों के लिए बहुत कम जगह बची है। अधिकतर जगहों पर सड़कें इतनी संकरी हैं कि उन पर मुश्किल से दो गाड़ियां एक साथ चल सकती हैं।

Slow Murder Continues_Hindi.indd 103 16/07/25 11:25 AM

आइजोल मिजोरम का सबसे तेजी से बढ़ता शहर है। इसके साथ ही यह राज्य का राजनीतिक, व्यापारिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक केंद्र भी है। विधानसभा और सचिवालय जैसे कई महत्वपूर्ण सरकारी दफ्तरों के मुख्यालय भी यहीं पर स्थित हैं। यह शहर 129.91 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल के दायरे में फैला है। इसकी नगरपालिका की सीमाओं के भीतर 429 किलोमीटर सड़कें भी हैं। लेकिन, इन सड़कों में से केवल 40 प्रतिशत में ही 10 मीटर से ज्यादा चौड़ाई का "राइट ऑफ वे" (आरओवी) है। इसका मतलब है कि ज्यादातर सड़कें बहुत संकरी हैं, जिससे जाम लगना स्वाभाविक है।

आइजोल में रहने वाली लालमुआनपुई पेशे से फार्मासिस्ट हैं और आइजोल एडवेंटिस्ट हॉस्पिटल में काम करती हैं। उन्हें अपने दोपहिया वाहन से हॉस्पिटल पहुंचने में रोज 30 मिनट से ज्यादा लगते हैं। वह कहती हैं, "ट्रैफिक जाम और घुमावदार सड़कों के कारण मुझे हॉस्पिटल आने-जाने में कुल एक घंटा लग जाता है। मैं प्रदूषण से बचने के लिए अपना चेहरा ढंकने की पूरी कोशिश करती हूं। लेकिन, मुझे कभी-कभी देर रात तक चर्च से संबंधित कार्यक्रमों जैसे कि गाने के अभ्यास में भी शामिल होना पड़ता है। ऐसे में रोज की यह भागमभाग भरी यात्रा बहुत थकाऊ हो जाती है।" गूगल मैप्स के अनुसार, लालमुआनपुई रोज लगभग 9 किलोमीटर की दूरी तय करती हैं। आइजोल में ट्रैफिक को समझने के लिए इसकी तुलना बेंगलुरु से की जा सकती है।

लोकेशन टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में काम करने वाली बहुराष्ट्रीय डच कंपनी टॉमटॉम की एक रिपोर्ट के अनुसार, कर्नाटक की राजधानी बेंगलुरु दुनिया का दूसरा सबसे धीमा शहर है। यहां एक कार को 10 किमी की दूरी तय करने में 29 मिनट 10 सेकंड लग जाते हैं। आइजोल में रहने वाले एक कनाडाई नागरिक कालेब फ्रीसेन ने एक वायरल वीडियो में इन दोनों शहरों की तुलना बहुत सटीक ढंग से की है। उन्होंने आइजोल और बेंगलुरु दोनों शहरों की व्यस्त सड़कों के वीडियो बनाए। बेंगलुरु में वाहनों से भरी सड़क पर हर तरफ हॉर्न का शोर सुनाई देता है, जबकि आइजोल की सड़कों पर गाड़ियों की भीड़ के बावजूद शांति भंग नहीं होती। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि ट्रैफिक जाम दोनों शहरों में एक जैसा ही था। उन्होंने कहा, "मुझे पता है कि आप सोच रहे होंगे कि आइजोल की आबादी काफी कम है और यहां हॉर्न बजाने की उतनी

Slow Murder Continues_Hindi.indd 104 16/07/25 11:25 AM

जरूरत नहीं है, जितनी भारत के दूसरे शहरों में है, जहां सड़क पर आगे निकलने की होड़ मची रहती है। लेकिन, आइजोल में ट्रैफिक वास्तव में बेंगलुरु से भी ज्यादा बदतर है।"

2018 के चुनाव से पहले प्रचार के दौरान जोरमथंगा ने वादा किया था कि वे आइजोल को ट्रैफिक जाम से मुक्त कर देंगे। बाद में वह मिजोरम के मुख्यमंत्री भी बने। इस वादे को पूरा करने के लिए उन्होंने 6 फरवरी 2019 को "पार्किंग हाउस सपोर्ट स्कीम" (पीएएचओएसएस) की शुरुआत की। इस योजना के तहत सरकार को व्यक्तियों, गैर-सरकारी संगठनों और स्थानीय परिषदों को पार्किंग स्थल बनाने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करनी थी। सरकारी आंकड़ों के अनुसार, पीएएचओएसएस के लिए कुल 1,462 आवेदन प्राप्त हुए। मार्च 2024 में बजट सत्र के दौरान एक प्रश्न का उत्तर देते हुए एक मंत्री ने खुलासा किया कि 188 लाभार्थी अभी भी अपना पार्किंग हाउस बनाने का काम पूरा कर रहे थे, जबकि उन्हें पहली और दूसरी किस्तों के लिए कुल 952 लाख रुपए (लगभग 9.52 करोड़ रुपए) मिल चुके थे।

13 मार्च 2025 को सरकार ने इस योजना को बंद करने का ऐलान कर दिया। एक अधिकारी ने नाम न छापने की शर्त पर बताया कि यह योजना इसलिए फेल हुई, क्योंकि पार्किंग स्थल जिन निजी जगहों पर बनाए गए, उनके आसपास ट्रैफिक जाम की ज्यादा समस्या थी ही नहीं। ऐसे में जाम की समस्या से कोई खास राहत नहीं मिली। अधिकारी ने कहा, "यदि यह पहल प्रभावी होती तो मौजूदा सरकार इसे जारी रखती। पार्किंग स्थलों के लिए जगह का चुनाव ठीक तरह से नहीं किया गया था और इस कारण आम आदमी की पार्किंग की जरूरतें उनसे पूरी नहीं हो पा रही थीं। हालांकि, इस योजना का मकसद सार्वजनिक पार्किंग स्थल तैयार करना था, लेकिन राजनेताओं ने अपने पसंदीदा लोगों को फायदा पहुंचाया। अब तक जितनी भी पार्किंग बनी हैं, उनका कोई बड़ा सकारात्मक असर दिखाई नहीं दे रहा है। कुछ लोगों ने अपने घर बनवाने के लिए भी इस योजना का फायदा उठाया और घर की ऊपरी मंजिल को पार्किंग बता दिया। भले ही इस योजना से दोहरे उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती थी, लेकिन व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं ने जनहित को दबा दिया।"

आइजोल में ट्रैफिक जाम से राहत दिलाने के लिए एक और कदम उठाया

Slow Murder Continues_Hindi.indd 105 16/07/25 11:25 AM

गया। 1 जून 2019 से वहां "ऑड-ईवन" नियम लागू कर दिया गया। यह नियम 25 अप्रैल को हुई "ट्रैफिक प्रबंधन पर समन्वय" बैठक के बाद पेश किया गया था। तत्कालीन गृह मंत्री लालचामलियाना ने इस निर्णय की घोषणा की थी, जो अभी तक प्रभावी है। इस नियम मुताबिक, गाड़ी की नंबर प्लेट के आखिरी अंक के हिसाब से अलग-अलग दिन पर गाड़ी चलाने की मनाही होती है। जैसे 1 या 2 नंबर पर समाप्त होने वाले वाहन सोमवार को नहीं चलेंगे और 3 या 4 पर समाप्त होने वाले वाहनों पर मंगलवार को प्रतिबंध रहेगा। लेकिन, इस नियम की बहुत आलोचना हुई। एक प्राइवेट स्कूल में 10 साल से काम कर रहे ड्राइवर नोएल चाविलिना जोंगटे के मुताबिक, "इस नियम से सिर्फ गाड़ी, खासकर दोपहिया वाहन बेचने वालों को फायदा पहुंचा। लोग आसानी से लोन लेकर एक और दोपहिया वाहन खरीद लेते हैं, ताकि जिस दिन उनकी मुख्य गाड़ी सड़क पर नहीं चल सकती, उस दिन वह दूसरी गाड़ी का इस्तेमाल कर सकें। कुछ परिवारों के पास तो परिवार के सदस्यों से भी ज्यादा दोपहिया वाहन हो गए हैं। इससे ट्रैफिक बिल्कुल भी कम नहीं हुआ है।" आइजोल में ही रहने वाले एक सरकारी कर्मचारी ने नाम न छापने की शर्त पर इस नियम पर टिप्पणी करते हुए कहा, "ऑड-ईवन नियम ने शहर में वाहनों की संख्या बढ़ा दी है। इसके लागू होने के बाद ट्रैफिक जाम और बदतर हो गया है, अब लोगों के पास इस्तेमाल करने के लिए एक और वाहन है।"

2020 से 2023 के बीच मिजोरम में कुल 75,162 नए वाहन रजिस्टर हुए। इनमें से 51,569 सिर्फ आइजोल के ही थे। यानी राज्य में पंजीकृत हुए नए वाहनों का 68 प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा आइजोल का था। मई 2025 तक आइजोल जिले में कुल 1,93,976 गाड़ियां पंजीकृत हो चुकी थीं। इतनी ज्यादा गाड़ियां होने और ट्रैफिक जाम के बावजूद बहुत से लोगों के लिए सार्वजनिक परिवहन एक अच्छा विकल्प नहीं है। लालमुआनपुई को स्कूटी से आने-जाने में रोज एक घंटे से ज्यादा का वक्त लगता है, फिर भले ही बारिश हो रही हो या चटख धूप निकली हो। लेकिन, इसके बावजूद वह कहती हैं कि उनके लिए बस से आना-जाना व्यवहारिक नहीं है। उनके अनुसार, "अगर मैं बस से जाती हूं तो पहले बस के लिए इंतजार करने फिर बार-बार हर बस स्टॉप पर रुकने और बेहद व्यस्त सड़क से आने-जाने में उन्हें कम से कम दो घंटे लग जाते हैं।"

Slow Murder Continues_Hindi.indd 106 16/07/25 11:25 AM

मिजोरम विश्वविद्यालय (आइजोल स्थित केंद्रीय विश्वविद्यालय, जो शहर के केंद्र से लगभग 10 किमी दूर है) के जनसंचार विभाग में प्रोफेसर रत्नमाला बताती हैं, "विश्वविद्यालय से शहर जाने के सार्वजनिक परिवहन की कोई व्यवस्था नहीं है। इस वजह से मैं बहुत असहाय महसूस करती हूं, जैसे मैं कहीं आ-जा ही नहीं सकती। अगर मुझे किसी कार्यक्रम या इवेंट के लिए शहर जाना होता है तो दूसरों से मदद मांगनी पड़ती है। इस वजह से मुझे बुक टॉक, कॉन्सर्ट जैसे कई कार्यक्रम छोड़ने पड़े, जिनमें मैं शामिल होना चाहती थी। मेरे पास उन्हें छोड़ने के अलावा कोई विकल्प ही नहीं था।" रत्नमाला कहती हैं कि वह ज्यादा से ज्यादा अपने पति से मदद मांग सकती थीं कि वह अपनी गाड़ी से उन्हें शहर पहुंचा दें, लेकिन वहां पार्किंग की एक बड़ी समस्या है। या फिर अगर किसी छात्र से लिफ्ट मांगनी पड़ती, जिसके लिए उस छात्र के पेट्रोल और खाने का खर्चा देना पड़ता। यहां तक कि उन्हें पास के किसी सार्वजनिक परिवहन साधन (जैसे बस या टैक्सी) तक पहुंचने के लिए भी स्कूटर से पांच मिनट दूर किसी और इलाके तक जाना पड़ता है।

ट्रैफिक जाम और खराब सार्वजनिक परिवहन के बावजूद आइजोल में कुछ लोग साइकिल चलाने और पैदल चलने को प्राथमिकता देते हैं और अभी भी उम्मीद से भरे हैं। माउंटेन बाइकर और वकील मिलर बी. रेंथलेई ऐसे ही लोगों में से एक हैं। जब भी मौसम अच्छा होता है और काम कम होता है, अपनी साइकिल से ऑफिस जाते हैं। वह कहते हैं, "यह परिवहन का व्यावहारिक साधन भी है और तनाव कम करने का बेहतर तरीका भी। कभी-कभी तो घर जाते समय मैं सिर्फ साइकिल चलाने का मजा लेने के लिए लंबा रास्ता भी ले लेता हूं।" मिलर कहते हैं कि हालांकि वह भीड़भाड़ वाले समय में साइकिल चलाने से बचते हैं, लेकिन आइजोल में साइकिल चलाना आसान और सुरक्षित है। यहां के लोगों में अनुशासन की भावना बहुत मजबूत है और वे नियमों का पालन करते हैं। मेट्रो शहरों में ऐसा नहीं होता, जहां लोग अक्सर ट्रैफिक नियमों को तोड़ते हैं। आइजोल में साइकिल चलाने वालों को ऐसा लगता है, जैसे उनके लिए खासतौर पर अलग साइकिल ट्रैक बना हो।

आइजोल भारत के उन चुनिंदा शहरों में से एक है, जहां की हवा सबसे साफ है। इसलिए यहां पैदल चलना पसंद करने वालों की संख्या भी बढ़ रही है। शहर में रहने वाले लेखक और पत्रकार लालहरुईतलुंगा छंगटे को "वॉकिंग

Slow Murder Continues_Hindi.indd 107 16/07/25 11:25 AM

सिटीजन" के नाम से जाना जाता है, क्योंकि वह सिर्फ जरूरत पड़ने पर ही गाड़ी का इस्तेमाल करते हैं, बाकी हर जगह पैदल ही जाते हैं। वह कहते हैं, "मुझे बचपन से ही पैदल चलना पसंद है। इससे मुझे अपने आसपास की दुनिया को देखने-समझने का मौका मिलता है। टहलते हुए अपने दोस्तों से बात करने का मौका भी मिल जाता है। हम अक्सर मजबूरी जताते हैं कि हमारे पास अपने परिवार के लिए समय नहीं है, लेकिन यह सिर्फ भौतिकतावाद है। भौतिकवाद ही हमें यह यकीन दिलाता है कि जरा सी दूर जाने के लिए भी हमें गाड़ी की जरूरत है। लेकिन, जब हम पैदल चलते हैं, तो दोस्तों से मुलाकात हो जाती है। पड़ोसियों को अभिवादन कर पाते हैं, लोगों को उनके कपड़े सुखाते देखते हैं और उनके संग थोड़ी सी गपशप भी कर लेते हैं।"

अब पंजाब के औद्योगिक शहर लुधियाना की बात करते हैं। लुधियाना में एक ऑटो पार्ट्स निर्माण इकाई में काम करने वाले प्रवासी मजदूर चंद्रमा प्रसाद पिछले 18 सालों से साइकिल से काम पर जा रहे हैं। 2007 से उन्हें इसके लिए कुछ किलोमीटर की दूरी ही तय करनी पड़ती है, जिसमें सामान्य तौर पर 20 मिनट से ज्यादा नहीं लगने चाहिए। लेकिन, ट्रैफिक की वजह चंद्रमा को रोज सुबह 40 से 45 मिनट और शाम के जाम से जूझते हुए घर लौटने में करीब एक घंटे का वक्त लग जाता है। वह कहते हैं, "लुधियाना में ट्रैफिक अकल्पनीय है। यहां साइकिल चलाने वालों के लिए कोई अलग से साइकिल ट्रैक नहीं हैं। ऐसे में खुद की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए बड़ी गाड़ियों, दोपहिया वाहनों और जाम के बीच से आने-जाने में बहुत समय लग जाता है। ट्रैफिक की वजह से यह यात्रा और भी थकाऊ हो जाती है।"

चेंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री (सीसीआई) के अध्यक्ष उपकार सिंह आहूजा ने कहा कि लुधियाना एक बड़ा औद्योगिक शहर है, जहां लगभग 1.2 लाख छोटे और मध्यम उद्योग हैं। इनमें लगभग 10 लाख मजदूर काम करते हैं, जिनमें से ज्यादातर प्रवासी हैं। ये मजदूर इन उद्योगों की रीढ़ हैं। सरकारी अनुमानों के अनुसार, 2011 में शहर की आबादी 16 लाख थी। वर्ल्ड पॉपुलेशन रिव्यू का अनुमान है कि अब यह आबादी बढ़कर 20 लाख से ज्यादा पहुंच गई है। 159.37 वर्ग किमी में फैला लुधियाना क्षेत्रफल और आबादी दोनों के मामले में पंजाब का सबसे बड़ा शहर है। प्रसाद की तरह ही यहां के ज्यादातर मजदूर कहीं भी आने-जाने के लिए साइकिल को ही

प्राथमिकता देते हैं। ये मजदूर रोजाना करीब 300 रुपए ही कमा पाते हैं। उनके लिए सार्वजनिक परिवहन की भी कोई व्यवस्था नहीं है। ऐसे में वे ऑटो या कैब का खर्च नहीं उठा सकते। ट्रैफिक पुलिस के साथ काम करने वाले विशेषज्ञ राहुल वर्मा कहते हैं कि इन मजदूरों की आबादी शहर की जनसंख्या का करीब 50 फीसदी है। ये सड़क पर भी सबसे कम जगह घेरते हैं, लेकिन ट्रैफिक जाम से सबसे ज्यादा पीड़ित भी यही होते हैं।

लुधियाना नगर निगम की "समग्र गतिशीलता योजना" (कॉम्प्रिहेंसिव मोबिलिटी प्लान- सीएमपी) के अनुसार, 2009 में कराए गए मोडल स्प्लिट सर्वेक्षण से पता चला कि काम पर जाने के लिए की जाने वाली 31.5 प्रतिशत यात्राएं पैदल तय की जाती थीं। जबकि, 43.4 प्रतिशत यात्राएं दोपहिया वाहन से पूरी की जाती थीं, जबकि 21.8 प्रतिशत यात्राएं साइकिल से की जाती थीं। टायर बनाने वाली एक कंपनी में काम करने वाले एक और प्रवासी मजदूर संतोष कुमार ने बताया कि वाहनों से निकलने वाला जहरीला धुआं उनके लिए हालात को और खराब कर देता है। वह कहते हैं, "हम लोग सबसे कम वायु प्रदूषण करते हैं, लेकिन इसके संपर्क में सबसे ज्यादा भी हम ही आते हैं।" शहर में वायु गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए शुरू हुई पहल "क्लीन एयर पंजाब" के समन्वयक आकाश गुप्ता बताते हैं कि लंबे ट्रैफिक जाम के कारण आने-जाने में उन्हें दोगुना समय लग रहा है। ईंधन की खपत भी 3 गुना बढ़ गई है। गाड़ी के रखरखाव का खर्च भी बढ़ गया है। बार-बार गियर बदलने से क्लच और ब्रेक पर दबाव पड़ता है, जिससे सर्विसिंग के खर्च में लगभग 20 प्रतिशत बढ़ोतरी हुई है। 2014 की "समग्र गतिशीलता योजना" के मुताबिक, काम पर आने-जाने के सिलसिले में की गईं यात्राएं कुल यात्राओं का 49 फीसदी थीं। जबकि, 26 फीसदी यात्राएं पढ़ाई के लिए और 25 फीसदी यात्राएं दूसरे कामों के लिए की गई थीं।

लुधियाना में कोई व्यवस्थित सार्वजनिक परिवहन प्रणाली नहीं है। इसलिए, लोगों के लिए आने-जाने का मुख्य साधन ऑटो-रिक्शा बन गए हैं। 46 वर्षीय गृहिणी शालिनी ढींडसा ने कहा कि स्थानीय लोग सुरक्षा चिंताओं के कारण ऑटो-रिक्शा से बचते हैं। वह बताती हैं, "ड्राइवर मनमानी करते हैं और ज्यादा किराया वसूलते हैं। इसलिए लोग निजी वाहनों या फिर ओला और उबर जैसी कैब सेवाओं को इस्तेमाल करना पसंद करते हैं। ऑटो का उपयोग

आमतौर पर तभी किया जाता है, जब कोई बाहर से लौटता है।" इंटरमीडिएट पब्लिक ट्रांजिट (आईपीटी) यानी ऑटो-रिक्शा, टैक्सी और साइकिल रिक्शा अभी भी यात्रियों के लिए महत्वपूर्ण साधन बने हुए है। सीएमपी रिपोर्ट के अनुसार, आईपीटी वाहनों की संख्या हर साल धीरे-धीरे बढ़ रही है। वर्मा ने कहा कि डीजल ऑटो-रिक्शा को 2009 में सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर प्रतिबंधित कर दिया गया था, लेकिन इनमें से अभी भी बहुत से अवैध रूप से चल रहे हैं। उनका मानना है कि ऑटो-रिक्शा की बढ़ती और अनियंत्रित संख्या को नियंत्रित करने के लिए नियम बनाने की जरूरत है।

ऐसे हालात में लुधियाना में हाल के सालों में अपनी खुद की गाड़ी रखने वालों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ी है। सरकारी आंकड़ों से पता चला है कि 2021 में पंजीकृत वाहनों की संख्या 48,143 थी, जो 2022 में बढ़कर 70,486 हो गई। इस तरह, एक साल में 46 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि दर्ज की गई। 2024 में पंजीकृत वाहन बढ़कर 1,15,122 हो गए, जो 2023 में 79,144 थे। 2023 से 2024 के बीच वाहनों की संख्या में 45 प्रतिशत से अधिक बढ़ोतरी हुई। अप्रैल 2025 तक लुधियाना में कुल 16,63,071 गाड़ियां पंजीकृत हो चुकी थीं। 2014 की सीएमपी रिपोर्ट में बताया गया था कि 62 प्रतिशत परिवारों के पास कम से कम एक स्कूटर या मोटरसाइकिल थी, लगभग 35 प्रतिशत लोगों के पास एक साइकिल और केवल 8 प्रतिशत लोगों के पास कार थी।

लुधियाना में एक बड़ी दिक्कत यह है कि सड़कों की चौड़ाई आज भी पहले जितनी ही है, बहुत सी सड़कें काफी संकरी हैं। जबकि सड़कों पर आने वाली गाड़ियां, खासकर बड़ी एसयूवी ज्यादा जगह घेरती हैं। इससे ट्रैफिक जाम और बढ़ जाता है। खराब सड़कें और बढ़ती गाड़ियों की संख्या के कारण सड़क दुर्घटनाएं चिंता का सबब बनी हुई हैं। "पंजाब में सड़क दुर्घटनाएं और यातायात 2023" रिपोर्ट के अनुसार, लुधियाना में 2023 में 504 दुर्घटनाएं और 402 मौतें दर्ज की गईं। इनमें 152 लोग गंभीर रूप से घायल हुए। पीड़ितों में 47 प्रतिशत दोपहिया वाहन चालक थे, जबकि 32 प्रतिशत लोग पैदल चलने वाले थे। 34 प्रतिशत दुर्घटनाएं ट्रकों के कारण हुईं, उसके बाद कारों, टैक्सियों और हल्के मोटर वाहनों (एलएमवी) के कारण 33 प्रतिशत दुर्घटनाएं हुईं। 15 प्रतिशत हादसों की वजह दोपहिया वाहन थे। पुलिस

Slow Murder Continues_Hindi.indd 110 16/07/25 11:25 AM

आयुक्त के अधिकार क्षेत्र में कुल 89 ऐसी जगहों (ब्लैक स्पॉट) की पहचान की गई है, जहां सबसे ज्यादा दुर्घटनाएं होती हैं।

लुधियाना के रास्तों के पैटर्न और बहुत सारी फैक्ट्रियों (औद्योगिक इकाइयों) के कारण वायु प्रदूषण बहुत बढ़ गया है। इसी वजह से लुधियाना भारत के 10 सबसे प्रदूषित शहरों में से एक बन चुका है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) के अनुसार, 2018 में यहां पीएम 2.5 का औसत स्तर 51 था, जो 2024 में बढ़कर 61.1 पर पहुंच गया। नगर निगम के अधिकारियों के मुताबिक, लुधियाना में लगभग 49 प्रतिशत प्रदूषण उद्योगों के कारण होता है, 30 प्रतिशत प्रदूषण सड़कों की धूल के कारण और लगभग 11 प्रतिशत प्रदूषण वाहनों से होता है। एक अधिकारी के अनुसार, हवा की गुणवत्ता में कोई सुधार नहीं हुआ है। शहर के 2 मुख्य मॉनिटरिंग स्टेशनों (पंजाब कृषि विश्वविद्यालय और वेरका मिल्क पॉइंट) पर वायु गुणवत्ता सूचकांक (एक्यूआई) लगातार 300 रहता है। पिछले 3 साल से चल रहे फ्लाईओवर निर्माण के कारण यह स्थिति और खराब हो गई है।

औद्योगिक क्षेत्र में स्थित एक और स्टेशन में तो एक्यूआई कभी भी 400 से नीचे दर्ज ही नहीं हुआ, जबकि, पुराने शहर के बाजार में भी वायु गुणवत्ता सूचकांक 250-280 के बीच बना रहता है। वायु गुणवत्ता मानदंडों के अनुसार, 200 से ऊपर एक्यूआई स्तर सेहत के लिए खराब माना जाता है, और 300 से ऊपर की रीडिंग खतरनाक होती है, जिसके लिए तुरंत आपातकालीन स्वास्थ्य संबंधी चेतावनी जारी की जाती है। 2010 में इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ में प्रकाशित एक शोध में पाया गया कि खराब हवा के कारण आई दृश्यता में कमी और दैनिक मृत्यु दर में बढ़ोतरी के बीच सीधा संबंध है। अध्ययन में बताया गया कि अगर दोपहर में दिखाई देने वाली दूरी (दृश्यता) हर एक किलोमीटर कम होती है तो प्राकृतिक कारणों से होने वाली मौतों की संख्या में 2.4 प्रतिशत की बढ़ोतरी हो जाती है।

दस साल से भी पहले लुधियाना में यातायात की समस्याओं को दूर करने, आवागमन को बेहतर बनाने और सार्वजनिक परिवहन शुरू करने के लिए एक बड़ी महत्वाकांक्षी योजना (सीएमपी) बनाई गई थी, लेकिन इस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया। इस योजना का लक्ष्य था कि 60 प्रतिशत यात्राएं सार्वजनिक परिवहन से हों और 90 प्रतिशत आबादी इसके दायरे में आए।

Slow Murder Continues_Hindi.indd 111 16/07/25 11:25 AM

इसमें पैदल चलने और साइकिल चलाने वालों के लिए सुविधाओं पर भी जोर था। फुटपाथों को खाली कराने और पार्किंग व्यवस्था को बेहतर बनाने की सिफारिश भी इसमें की गई थी। लेकिन, पंजाब प्रशासन और यातायात विभाग के अधिकारी खुद मानते हैं कि यह योजना की ज्यादातर सिफारिशें सिर्फ कागज तक सिमट कर रह गईं। ग्रेटर लुधियाना एरिया डेवलपमेंट अथॉरिटी (जीएलएडीए) के एक अधिकारी ने कहा, "कुछ एलिवेटेड सड़कों और फ्लाईओवर के निर्माण से यातायात व्यवस्था में थोड़ा सुधार आया है। शहर को बाईपास करने के लिए एक बाहरी रिंग रोड बनाई जा रही है।"

दमघोंटू शहरों में बढ़ती भीड़ लोगों के आवागमन और उनके जीवन को कितनी बुरी तरह से प्रभावित कर सकती है, यह गुजरात का एक प्रमुख शहर अहमदाबाद इसका सटीक उदाहरण है। 2010 में अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे को सुंदर बनाने की एक बड़ी परियोजना शुरू हुई थी। इसमें वादा किया गया था कि विस्थापित किए गए लोगों को नए, अच्छे घर और बेहतर सुविधाएं मिलेंगी। लेकिन ओधव जैसे इलाकों जहां बड़ी संख्या में विस्थापित लोगों को बसाया गया था, वहां सार्वजनिक परिवहन का कोई इंतजाम नहीं किया गया जिससे ये लोग शहर से कट गए और जीवित रहने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। 2010 में बबली और रमेश सोलंकी भी उन सैकड़ों परिवारों में से थे, जिन्हें नदी के किनारे से हटाया गया था। उनसे वादा किया गया था कि 5 किलोमीटर के अंदर ही पक्का घर मिलेगा, लेकिन उन्हें शहर से 15 किलोमीटर दूर ओधव भेज दिया गया। उन्हें "बेसिक सर्विसेज फॉर द अर्बन पुअर (बीएसयूपी)" योजना के तहत पक्के फ्लैट तो मिल गए, लेकिन बाद में उन्हें पता चला कि सार्वजनिक परिवहन जैसी जरूरी सेवाएं अब उनकी पहुंच से बाहर थीं।

उम्र के 50वें दशक में पहुंच चुकीं बबली कहती हैं, "पहले हम सब्जियां बेचकर गुजारा करते थे। हम रोज सुबह 4 बजे जाग जाते थे। फिर स्थानीय बाजार से सब्जियां खरीदते थे और उन्हें घर-घर बेचते थे। लेकिन, जब हमें ओधव में स्थानांतरित किया गया, तब सब कुछ बदल गया।" उन्होंने बताया कि उन्हें सुबह 3 बजे उठना पड़ता था और 1.5 किलोमीटर पैदल चलकर मुख्य सड़क तक जाना पड़ता था, ताकि जमालपुर सब्जी मंडी के लिए ऑटो मिल सके। अक्सर उन्हें ऑटो देर से मिलता या मिलता ही नहीं था, जिससे

Slow Murder Continues_Hindi.indd 112 16/07/25 11:25 AM

वे मंडी देर से पहुंचतीं और सब्जियां खत्म हो जातीं या उन्हें खाली हाथ लौटना पड़ता। समय के साथ स्थिति और बिगड़ गई। इस आवागमन की समस्या के कारण उनके बच्चों का स्कूल छूटने लगा और पति का सब्जी का धंधा भी चौपट हो गया, जिससे परिवार कर्ज में डूब गया। यह दबाव रमेश सहन नहीं कर पाए और लगभग चार साल पहले उन्होंने फिनाइल पीकर आत्महत्या कर ली। अब बबली शहर की अदालत में बेलीफ कर्मचारी के तौर पर काम करती हैं। लेकिन, आवागमन अभी भी कठिन बना हुआ है। उनकी सहकर्मी ललिता बेन कहती हैं, "रात 8 बजे के बाद कोई भी परिवहन साधन नहीं मिलता। हमें एक तरफ जाने के लिए तीन रिक्शा बदलने पड़ते हैं और एक तरफ का किराया 70 रुपए पड़ता है, जो ज्यादातर लोगों के लिए बहुत महंगा है।" स्थानीय निवासियों ने कहा कि कनेक्टिविटी की कमी के कारण बहुत से लोगों को अपना काम बदलना पड़ा या स्कूटर खरीदने के लिए कर्ज लेना पड़ा। ओधव में ही रहने वाले एक युवा सुनील चव्हाण बताते हैं, "हमारी कॉलोनी के ज्यादातर लोग पहले सब्जी बेचने के काम से जुड़े हुए थे, लेकिन आना-जाना इतना मुश्किल हो गया कि मजबूरन उन्हें या तो काम बदलना पड़ा या स्कूटर खरीदने के लिए कर्ज लेना पड़ा। अब उनकी सबसे बड़ी चिंता रोजाना ईंधन का खर्च उठाना है।" इलाके में सार्वजनिक परिवहन के विकल्प बहुत कम हैं। चव्हाण ने कहा, "चव्हाण ने कहा, "अहमदाबाद म्युनिसिपल ट्रांसपोर्ट सर्विस की बसें केवल सुबह और शाम को आती हैं। उनका कोई निश्चित समय नहीं होता। वे हमेशा भरी रहती हैं।" सुनील कहते हैं कि बसों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए और उनके फेरे बढ़ाकर उन्हें नियमित तौर पर चलाना चाहिए।

केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ इस बात का एक और उदाहरण है कि कैसे भारत के शहरों में सार्वजनिक परिवहन की कमी के कारण लोग अपनी निजी गाड़ियों का ज्यादा इस्तेमाल कर रहे हैं। बीस साल पहले चंडीगढ़ की चौड़ी सड़कें और कम ट्रैफिक देखकर लोग सोचते थे कि क्या शहर जरूरत से ज्यादा बड़ा बना दिया गया है। लेकिन, 2025 तक हालात पूरी तरह से बदल चुके हैं। चंडीगढ़ में अब रजिस्टर गाड़ियों की संख्या वहां की आबादी से भी ज्यादा हो गई हैं। इसका मतलब है कि यह भारत का ऐसा शहर बन गया है, जहां प्रति व्यक्ति सबसे ज्यादा गाड़ियां हैं। चंडीगढ़ में सड़क सुरक्षा पर 2023 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार, इस केंद्र शासित प्रदेश की आबादी 12.5 लाख

Slow Murder Continues_Hindi.indd 113 16/07/25 11:25 AM

थी, लेकिन गाड़ियों की संख्या 13.2 लाख थी। इतनी ज्यादा गाड़ियों के कारण शहर की अच्छी तरह से बनी चौड़ी और सीधी सड़कों की व्यवस्था पर बहुत ज्यादा दबाव बढ़ गया है। लोग बताते हैं कि अब कहीं भी आने-जाने में बहुत ज्यादा समय लगता है।

चंडीगढ़ निवासी गुरनाज कौर बोपरई बताती हैं कि कुछ साल पहले 3 किलोमीटर की दूरी तय करने में 5-6 मिनट लगते थे, लेकिन अब इसमें 15-20 मिनट लगते हैं। रोज गाड़ी चलाकर काम पर जाने वाली 39 वर्षीय गुरनाज इसके लिए ट्रैफिक सिग्नल पर लंबा इंतजार (120 सेकंड तक) और धीमी गति सीमा को इसका कारण मानती हैं। सड़क सुरक्षा कार्यकर्ता हरमन सिद्धू ने कहा, "यह शर्म की बात है कि चंडीगढ़ जैसे एक सुव्यवस्थित शहर में सिर्फ तीन किलोमीटर की दूरी तय करने में 20 मिनट लगते हैं।" यात्रा में लगने वाले ज्यादा समय के साथ ही अब ईंधन की खपत भी बढ़ गई है। स्थानीय कैब ड्राइवर तरनजीत सिंह ने कहा, "पहले उनका 15 लीटर पेट्रोल 15 दिन चलता था, लेकिन अब ट्रैफिक और लंबे इंतजार के कारण उन्हें हर 10 दिन में पेट्रोल भरवाना पड़ता है।" चंडीगढ़ प्रशासन के आंकड़ों के अनुसार, दोपहिया वाहन चलाने वाले हर महीने 20-45 लीटर पेट्रोल खर्च करते हैं। जबकि, कार चलाने वाले हर महीने लगभग 200 लीटर पेट्रोल इस्तेमाल करते हैं।

शिवालिक पर्वतमाला की तलहटी में 114 वर्ग किलोमीटर में फैले इस शहर में निजी गाड़ियां खरीदने का चलन लगातार बढ़ रहा है। 2023 की सड़क सुरक्षा रिपोर्ट के अनुसार, अकेले 2022 में 52,996 नई गाड़ियां रजिस्टर हुईं, जो 2021 (36,867) से काफी ज्यादा थीं। इन नई गाड़ियों में से 94 प्रतिशत निजी वाहन थे, जिनमें 54.2 प्रतिशत चारपहिया वाहन (कारें) और 40 प्रतिशत दोपहिया वाहन थे। बसें, ऑटो-रिक्शा, टैक्सी, ई-रिक्शा और मालवाहक वाहन जैसे सार्वजनिक व व्यावसायिक वाहनों का हिस्सा सिर्फ 6 प्रतिशत था, जो बहुत कम है। कोविड-19 महामारी के दौरान (2019 से 2020 तक) गाड़ियों के रजिस्ट्रेशन में कमी आई थी। 2019 में नए पंजीकृत वाहन 42,616 से घटकर 2020 में 29,518 रह गए थे। लेकिन, उसके बाद से इनकी संख्या में तेज उछाल देखा गया है। 2022में, वाहन पंजीकरण में बढ़ोतरी का ट्रेंड जारी रहा। 2021 में 36,867 की तुलना में

16,129 अधिक वाहन पंजीकृत हुए।

चंडीगढ़ को 1950 के दशक में मशहूर वास्तुकार चार्ल्स-एडौर्ड जेनरैट, जिन्हें ले कॉर्बुसीयर के नाम से जाना जाता है, ने डिजाइन किया था। ले कॉर्बुसीयर ने एक खास "ग्रिडिरॉन" सिस्टम (चौड़ी और सीधी सड़कों के जाल) के साथ डिजाइन किया था। इस योजना का मकसद था कि पैदल चलने वाले सुरक्षित रहें, गाड़ियां आसानी से चलें, और शहर में ट्रैफिक जाम या प्रदूषण न हो। लेकिन शहर के अनियंत्रित विकास ने इस मूल योजना को नुकसान पहुंचाया है। भले ही शहर की ज्यादातर पुरानी सड़कें अभी भी वैसी ही हैं, लेकिन निजी कारों की संख्या इतनी बढ़ गई है कि अब वहां भी ट्रैफिक जाम, प्रदूषण जैसी समस्याएं पैदा हो गई हैं, जिन्हें इस शहर को बनाते समय रोकने की कोशिश की गई थी। आज पैदल चलने वाले और साइकिल चलाने वाले सबसे ज्यादा असुरक्षित हैं। वे अब शहर में सुरक्षित रूप से आवाजाही नहीं कर सकते हैं।

चंडीगढ़ की बस सेवा अब लोगों के लिए उतनी उपयोगी नहीं रह गई है, वह अपनी अहमियत बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रही है। चंडीगढ़ परिवहन उपक्रम के आंकड़ों के अनुसार, 2016-17 से 2018-19 के बीच, बसों की संख्या (बेड़ा) और यात्रियों की संख्या दोनों में कमी आई। 2016-17 में बसों का बेड़ा 565 था, जो 2018-19 में घटकर 534 रह गया, जबकि इसी अवधि में यात्रियों की संख्या 5,69,000 से घटकर 5,54,000 रह गई। हालांकि, 2022-23 में बसों की संख्या तो बढ़कर 635 हो गई, लेकिन यात्रियों की संख्या और ज्यादा घट गई। 2021-22 में 2.19 लाख यात्री थे, जो 2022-23 में घटकर सिर्फ 1.31 लाख रह गए। परिवहन विभाग के अधिकारियों ने कहा कि निजी वाहनों की बढ़ती संख्या और बसों में लगने वाला ज्यादा यात्रा समय की वजह से अब वे लोगों की पसंद नहीं रहीं।

शहर के बीचों-बीच सेक्टर 17 में स्थित मुख्य बस टर्मिनल को अब शहर के बाहरी इलाके सेक्टर 43 में ले जाया गया है। इससे लोगों की मुश्किलें और बढ़ गई हैं। लोग शिकायत करते हैं कि बस से आने-जाने में बहुत ज्यादा समय लगता है और इससे उनकी परेशानियां बढ़ गई हैं, पहले तो बस पकड़ने के लिए उन्हें लंबी दूरी तक पैदल ही चलना पड़ता है, फिर थोड़ी दूरी की यात्रा के लिए भी बार-बार बसें बदलनी पड़ती हैं। स्थानीय निवासी प्रमोद शर्मा बताते

Slow Murder Continues_Hindi.indd 115 16/07/25 11:25 AM

हैं कि बस से 3-5 किलोमीटर की दूरी तय करने में कम से कम दो बसें बदलनी पड़ती हैं और 600 मीटर पैदल भी चलना पड़ता है। यही दूरी कार से आधे समय में तय हो जाती है। चंडीगढ़ को असल में इस तरह डिजाइन किया गया था कि पैदल चलने वालों और गाड़ियों के लिए अलग-अलग 7 तरह की सड़कें हों, ताकि वे सुरक्षित रहें और ट्रैफिक जाम न हो। लेकिन अब यह योजना काम नहीं कर रही है। फुटपाथों और साइकिल ट्रैक पर अक्सर लोग गाड़ियां पार्क कर देते हैं, जिससे पैदल चलने वालों की सुरक्षा खतरे में पड़ गई है।

ट्रैफिक रिपोर्ट बताती है कि चंडीगढ़ में गाड़ियों की भारी संख्या के कारण लगातार जाम लगने लगा है और सड़क दुर्घटनाएं भी बढ़ गई हैं। आंकड़ों से पता चला है कि 2019 में कुल मौतों में पैदल यात्रियों का हिस्सा 35 प्रतिशत था, जो 2023 में बढ़कर 42 प्रतिशत हो गया। साइकिल चलाने वालों की मौतें 2019 में 10 प्रतिशत के मुकाबले 2023 में 18 प्रतिशत तक बढ़कर लगभग दोगुनी हो गईं। 2023 में, 90 प्रतिशत सड़क दुर्घटनाएं ज्यादा तेजी से गाड़ी चलाने (ओवर-स्पीडिंग) के कारण हुईं, और इनमें ज्यादातर निजी कारें शामिल थीं। यातायात रिपोर्ट के अनुसार, चंडीगढ़ में ज्यादातर पैदल चलने वालों की मौतें और चोटें उन जगहों पर हुईं, जहां पैदल यात्रियों के लिए जरूरी सुविधाएं (जैसे फुटपाथ) नहीं थीं। 25 पैदल यात्रियों की मौत उन इलाकों में हुई, जहां फुटपाथ थे ही नहीं। 3 अन्य पैदल यात्री जेब्रा क्रॉसिंग पार करते समय मारे गए।

चंडीगढ़ में गाड़ियों की संख्या बढ़ने के साथ ही वायु प्रदूषण का स्तर भी लगातार बढ़ रहा है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) के अनुसार, हवा में महीन कणों (पीएम2.5) का स्तर 2020 में 33 माइक्रोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर से बढ़कर 2024 में 70 माइक्रोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर से ज्यादा हो गया। यह भारत सरकार द्वारा तय किए गए सुरक्षित मानक (40 माइक्रोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर) से बहुत ज्यादा है। इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए प्रदूषण में 43 प्रतिशत की कमी करनी होगी, जो एक बड़ी चुनौती है। शिकागो विश्वविद्यालय के "एयर क्वालिटी लाइफ इंडेक्स द्वारा" 2020 के एक अध्ययन से पता चला है कि अगर लोग लंबे समय तक इस प्रदूषित हवा में रहते हैं, तो उनकी जीवन प्रत्याशा 5.9 साल तक कम हो सकती है। चंडीगढ़ प्रशासन के पर्यावरण विभाग के अतिरिक्त निदेशक नवनीत कुमार

Slow Murder Continues_Hindi.indd 116 16/07/25 11:25 AM

श्रीवास्तव ने बताया कि शहर में कोई बड़ी फैक्ट्री नहीं है। यहां खराब हवा का मुख्य कारण वाहनों से निकलने वाला धुआं (उत्सर्जन) ही है।

चंडीगढ़ में बढ़ता वायु प्रदूषण लोगों के स्वास्थ्य पर, खासकर फेफड़ों से जुड़ी बीमारियों पर बुरा असर डाल रहा है। पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल एजुकेशन एंड रिसर्च, चंडीगढ़ के प्रोफेसर जे.एस. ठाकुर बताते हैं कि हवा की गुणवत्ता खराब होने के कारण "क्रॉनिक ऑब्सट्रक्टिव पल्मोनरी डिजीज" (सीओपीडी) के मामलों में काफी बढ़ोतरी हुई है। यह फेफड़ों से जुड़ी एक गंभीर बीमारी है। प्रोफेसर ठाकुर के अनुसार, "हम जितने भी कैंसर के मामले देखते हैं, उनमें फेफड़ों का कैंसर पहले नंबर पर है। यह कैंसर मुख्य रूप से धूम्रपान से होता है, लेकिन वायु प्रदूषण इसे और भी बदतर बना देता है। 2017-18 में, फेफड़ों का कैंसर कुल कैंसर के मामलों का 11.5 प्रतिशत था। यह चिंताजनक है। उन्होंने यह भी बताया कि वायु प्रदूषण की वजह से बच्चों में तपेदिक (टीबी) और सांस से जुड़ी बीमारियां (जैसे अस्थमा, ब्रोन्काइटिस) भी बढ़ रही हैं।

चंडीगढ़ के परिवहन विभाग के अधिकारियों ने खुद माना है कि शहर की "व्यापक गतिशीलता योजना, 2031" (सीएमपी 2031), जिसमें मेट्रो और बस रैपिड ट्रांजिट (बीआरटी) जैसे बड़े प्रस्ताव थे, अभी तक पूरी तरह लागू नहीं हुई है। इस योजना के तहत बाहरी रिंग रोड और दूसरी बड़ी बुनियादी ढांचा परियोजनाओं पर भी काम शुरू नहीं हो पाया है। एक अधिकारी ने चिंता जताई कि ज्यादा निर्माण कार्य से शहर की हवा और खराब हो सकती है और उसकी अच्छी तरह से बनी सड़कों की योजना (ग्रिड लेआउट) भी बिगड़ सकती है। इस संकट से निपटने के लिए प्रशासन निजी वाहनों की संख्या की बढ़ोतरी रोकने और इलेक्ट्रिक वाहनों (ईवी) को बढ़ावा देने पर जोर दे रहा है।

नवनीत कुमार श्रीवास्तव बताते हैं, "नई नीति में इलेक्ट्रिक वाहनों को ज्यादा महत्व दिया गया है, खासकर इसलिए क्योंकि 10 किलोमीटर के दायरे वाले छोटे से शहर में भी लोग सार्वजनिक परिवहन का इस्तेमाल नहीं करना चाहते।" विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग ने सितंबर 2022 में ईवी पॉलिसी की शुरुआत की। इसमें इलेक्ट्रिक वाहन खरीदने पर सब्सिडी और रजिस्ट्रेशन फीस माफ करने जैसे फायदे दिए गए थे। श्रीवास्तव ने दावा किया कि इसके परिणामस्वरूप, चंडीगढ़ में इलेक्ट्रिक वाहनों का इस्तेमाल 15 प्रतिशत तक

Slow Murder Continues_Hindi.indd 117 16/07/25 11:25 AM

बढ़ गया, जो देश में सबसे ज्यादा है। प्रशासन का लक्ष्य है कि 2025-26 तक ईवी का इस्तेमाल 18 प्रतिशत और 2035 तक 70 प्रतिशत तक बढ़ाया जाए। हालांकि, इलेक्ट्रिक साइकिलों के लिए भी 4,000 रुपए की सब्सिडी दी गई थी, लेकिन अधिकारियों ने माना है कि इनकी बिक्री अच्छी नहीं हुई है।

सिद्धू चेतावनी देते हैं कि अगर हम पेट्रोल कारों की जगह इलेक्ट्रिक कारें ले लेते हैं, लेकिन निजी कारों का इस्तेमाल कम नहीं करते, तो ट्रैफिक जाम खत्म नहीं होगा। वह इसे "एक निजी कमरे से निकलकर दूसरे निजी कमरे में जाने" जैसा बताते हैं, जिसका कोई मतलब नहीं है और इससे समस्या जस की तस बनी रहेगी।

वहीं, प्रमोद शर्मा को इन बदलावों से सुधार होने की उम्मीदें बनी हुई हैं। वह कहते हैं, "चंडीगढ़ को अभी भी सुधारा जा सकता है। दूसरे मेट्रो शहर शायद इस स्थिति से बाहर न निकल पाएं, लेकिन चंडीगढ़ का पुराना आकर्षण वापस लाया जा सकता है। इसके लिए शहर को पैदल चलने वालों और साइकिल चलाने वालों के लिए ज्यादा अनुकूल बनाना जरूरी है, जैसा कि ले कॉर्बुसीयर (चंडीगढ़ के डिजाइनर) ने सोचा था। उनका मानना था कि लोग चंडीगढ़ में प्रकृति देखने आएंगे, न कि कारें।" यह दिखाता है कि शहर की मूल योजना में प्रकृति और पैदल चलने वालों को महत्व दिया गया था।

भारत में कार और दोपहिया वाहनों की संख्या बहुत बढ़ गई है और लोग इनका इस्तेमाल ज्यादा करते हैं। इससे औसतन हर यात्री ज्यादा प्रदूषण फैला रहा है। निजी गाड़ी में ज्यादातर 1-2 लोग ही होते हैं, जबकि बस, मेट्रो या ऑटो जैसे सार्वजनिक साधन एक बार में बहुत ज्यादा लोगों को ले जा सकते हैं। जब आप इस चैप्टर की पहली पंक्ति पढ़ रहे थे, तब अपनी नई कारें पंजीकृत करवाने वाले उन्हीं 20 व्यक्तियों ने निजी कार में चलने की बजाए सीएनजी बस में सफर करना चुनते, तो उनका संयुक्त उत्सर्जन घटकर प्रति किमी सिर्फ 1.06 किलोग्राम सीओ2 रह जाता, यानी प्रति व्यक्ति प्रति किमी महज 53.1 ग्राम है। यह अकेले गाड़ी चलाने से होने वाले प्रदूषण से एक तिहाई से भी कम है। पर्यावरण से जुड़े इतने फायदों के बावजूद लोग सार्वजनिक परिवहन नहीं पसंद करते। ऐसा इसलिए नहीं कि उन्हें इसके फायदे नहीं पता, बल्कि इसलिए कि सार्वजनिक परिवहन की सेवाएं अच्छी नहीं हैं, जैसे समय पर न आना, भीड़भाड़, आराम की कमी आदि।

Slow Murder Continues_Hindi.indd 118 16/07/25 11:25 AM

दिल्ली स्थित थिंक टैंक "सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट (सीएसई)" ने भारत के 19 बड़े सरकारी परिवहन निगमों (एसटीयू) का अध्ययन किया। इनमें 12 राज्य सरकार द्वारा संचालित और 7 नगर निगम द्वारा संचालित बस सेवाएं शामिल हैं। इनमें महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, गुजरात, दिल्ली, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल और बिहार जैसे राज्य शामिल हैं। अध्ययन में पता चला कि 2014 से 2019 के दौरान, इन 19 सार्वजनिक परिवहन उपक्रमों की बसों की संख्या में केवल 4.6 प्रतिशत की मामूली बढ़ोतरी हुई। इसका मतलब है कि बसों की संख्या आबादी बढ़ने और लोगों की यात्रा की मांग के हिसाब से नहीं बढ़ रही है। नतीजतन, लोगों को बसों के लिए ज्यादा इंतजार करना पड़ता है, जिससे बसें असुविधाजनक हो जाती हैं।

परिणामस्वरूप, इसी अवधि के दौरान यात्रियों की संख्या में 5.8 प्रतिशत की गिरावट आई। यात्रियों की संख्या में कमी से सभी एसटीयू को भारी नुकसान हुआ। वित्तीय वर्ष 2014-15 से वित्तीय वर्ष 2018-19 के बीच 19 एसटीयू में औसतन घाटा तीन गुना बढ़ गया। 56 राज्य सड़क परिवहन उपक्रमों को कुल मिलाकर 17,932 करोड़ रुपए का घाटा हुआ। इस घाटे में सबसे ज्यादा हिस्सा (57.39 प्रतिशत) राज्य निगमों का था, उसके बाद राज्य के स्वामित्व वाली कंपनियों (23.73 प्रतिशत), नगर निगम की बस सेवाओं (10.33 प्रतिशत) और सरकारी विभागों की बस सेवाओं (6.56 प्रतिशत) को घाटा उठाना पड़ा।

दूसरी ओर, भारत में मेट्रो रेल को दो बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। मेट्रो में जितने यात्रियों के आने का अनुमान लगाया गया था, उतने नहीं आते। इन मेट्रो प्रणालियों में आपस में जुड़ाव (इंटीग्रेशन) कम है और "लास्ट माइल कनेक्टिविटी" यानी मेट्रो स्टेशन से घर या ऑफिस तक पहुंचने के साधन खराब हैं। ज्यादातर मेट्रो सिस्टम एक सीधे रास्ते (कॉरिडोर) की तरह हैं, पूरे शहर का एक नेटवर्क नहीं। इससे लोगों को एक जगह से दूसरी जगह जाने में ज्यादा समय लगता है, ज्यादा बार मेट्रो बदलनी पड़ती है और खर्च भी बढ़ता है। इन समस्याओं के कारण मेट्रो की वित्तीय स्थिरता भी सवालों के घेरे में है, यानी वे खुद का खर्च निकालने में मुश्किल महसूस कर रही हैं। भारत के 16 शहरों में मेट्रो चल रही है। 2024 तक इनकी कुल लंबाई

Slow Murder Continues_Hindi.indd 119 16/07/25 11:25 AM

862 किलोमीटर थी। आईआईटी, दिल्ली द्वारा 2023 में किए गए एक अध्ययन के अनुसार, भारतीय शहरों में मेट्रो से जितने यात्रियों के सफर करने का अनुमान लगाया गया था, उसकी तुलना में सिर्फ 25-35 प्रतिशत यात्री ही मेट्रो पर चढ़ रहे हैं।

दूसरे शहरों की तुलना में दिल्ली मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन (डीएमआरसी) के यात्रियों की संख्या सबसे ज्यादा है, इसके बावजूद यह अपने अनुमानित लक्ष्य से आधे से भी कम यानी 47 प्रतिशत यात्री ही जुटा सकी है। डीएमआरसी के इस बेहतर प्रदर्शन की मुख्य वजह यह है कि दिल्ली मेट्रो को एक विस्तृत नेटवर्क के रूप में बनाया गया है। इसमें कई लाइनें हैं, जो पूरे शहर में फैली हुई हैं। जबकि अधिकतर शहरों में मेट्रो सिर्फ एक या दो सीधी लाइनों (कॉरिडोर) के रूप में बनाई गई हैं। ऐसी योजनाएं सार्वजनिक परिवहन के लिए जरूरी पहलू यानी व्यापक कनेक्टिविटी और यात्रा में लचीलेपन पर ध्यान नहीं देतीं। मेट्रो की सुविधा वाले 16 शहरों में से 15 शहरों में मेट्रो "कॉरिडोर-बेस्ड" है। दिल्ली ही एकमात्र ऐसा शहर है, जहां 395 किलोमीटर तक फैला 10 लाइनों का एक बड़ा नेटवर्क है।

भारत में मेट्रो रेल किराए के अलावा दूसरे तरीकों से पैसे कमाने में असफल रही हैं, जैसे स्टेशन पर दुकानें, विज्ञापन आदि से होने वाली आय। राजस्व के लिए किराए पर निर्भरता भारी नुकसान की वजह बनती है। जैसे, कोविड-19 महामारी के दौरान मेट्रो के परिचालन और यात्रियों की संख्या में कमी आई, तो मेट्रो की कमाई भी ठप हो गई। इसलिए, मेट्रो के लिए यह जरूरी है कि उसकी कमाई सिर्फ किराए से न हो, बल्कि दूसरे (गैर-परिचालन) स्त्रोतों से भी हो। मेट्रो में यह क्षमता है, क्योंकि उनका एक मजबूत "इकोसिस्टम" होता है। दुनिया की सबसे सफल मेट्रो, जैसे हांगकांग की एमटीआर और सिंगापुर की एसएमआरटी की कुल कमाई का क्रमशः 58 प्रतिशत और 28 प्रतिशत तक हिस्सा गैर-किराया स्त्रोतों से आता है। वहीं, बेंगलुरु, मुंबई और चेन्नई की मेट्रो में गैर-किराया स्त्रोतों से होने वाली कमाई बहुत कम है। 2021 में इन तीन शहरों की मेट्रो को क्रमशः 6 प्रतिशत , 11 प्रतिशत और 16 प्रतिशत आय किराया के अलावा दूसरे स्त्रोतों से हुई थी। जब मेट्रो के पास पैसों की कमी होती है, तो वे अपनी सेवाओं में सुधार नहीं कर पातीं। इससे लोगों का मेट्रो पर से भरोसा उठ जाता है, जिससे सार्वजनिक

Slow Murder Continues_Hindi.indd 120 16/07/25 11:25 AM

परिवहन प्रणाली विफल हो जाती है और लोग निजी वाहनों जैसे ज्यादा सुविधाजनक साधनों पर निर्भर हो जाते हैं।

इस समस्या को और गहराई से समझने के लिए, सीएसई ने दिल्ली में यात्रियों की "यात्रा डायरी" का अध्ययन किया। इसमें यात्रियों से उनकी रोजाना की यात्राओं का पूरा विवरण मांगा गया, जिसमें यात्रा के हर चरण को सूचीबद्ध किया गया, जैसे बस स्टॉप तक पैदल चलना, बस लेना, बीच में कोई और साधन (जैसे ऑटो) लेना, फिर गंतव्य तक पैदल चलना आदि। इसमें यात्रा पूरी के लिए मेट्रो के साथ अपनाए गए दूसरे परिवहन साधनों की जानकारी भी जुटाई गई। इस सर्वे के लिए सैंपल समान रूप से दिल्ली के सभी आय समूहों से लिया गया। इसका मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना था कि निजी परिवहन से यात्रा करने और सार्वजनिक परिवहन से यात्रा करने के बीच कितना अंतर है। साथ ही, इस प्रक्रिया में इस परिकल्पना का परीक्षण भी करना था कि क्या सार्वजनिक परिवहन सचमुच निजी परिवहन से सस्ता है।

सर्वेक्षण में शामिल लगभग आधे (49 प्रतिशत) लोग निजी वाहनों का उपयोग करते हैं, और उनमें से ज्यादातर अपनी गाड़ी घर के पास ही पार्क करते हैं। निजी वाहन चलाने वालों में से 60 प्रतिशत कार चालक और 75 प्रतिशत दोपहिया वाहन चालक सीधे अपने गंतव्य तक पहुंचते हैं। यात्रियों के एक छोटे हिस्से ने ही ड्राइविंग को मेट्रो के साथ जोड़ा। 20 प्रतिशत यात्री मेट्रो को दूसरे साधन के रूप में इस्तेमाल करते हैं। जिनमें से 7 प्रतिशत पैदल चलकर और 7 प्रतिशत ही ऑटो-रिक्शा या फिर निजी वाहन से मेट्रो तक पहुंचते हैं। 5 प्रतिशत यात्री मेट्रो को तीसरे साधन के रूप में इस्तेमाल करते हैं, जो अक्सर पैदल, निजी वाहन या दूसरी कनेक्टिंग मेट्रो लाइन से पहुंचते हैं। कैब का इस्तेमाल करने वाले ज्यादातर लोग अपनी पूरी यात्रा कैब से ही करते हैं, अपवाद के तौर पर कुछ ही लोग कैब सेवा में कमी या किसी दूसरी वजह से दूसरा साधन लेते हैं।

केवल 9 प्रतिशत यात्री बसों का उपयोग करते हैं, और यह भी ज्यादातर यात्रा के दूसरे या तीसरे हिस्से के लिए होता है, जहां लोग पैदल या साइकिल से बस तक पहुंचते हैं। यात्रा के खर्च (सिर्फ ईंधन और किराया) के हिसाब से विश्लेषण किया गया तो पाया गया कि सार्वजनिक परिवहन सस्ता है। सार्वजनिक परिवहन का औसत किराया 2.97 रुपए प्रति किलोमीटर है,

Slow Murder Continues_Hindi.indd 121 16/07/25 11:25 AM

जबकि निजी परिवहन में ईंधन का औसत खर्च 6.36 रुपए प्रति किलोमीटर है। यह आसानी से समझ में आ जाने वाली बात है, क्योंकि सार्वजनिक परिवहन प्रणाली बनाते समय यह एक मुख्य सिद्धांत होता है कि किराया इतना सस्ता हो कि समाज के ज्यादातर लोग इसे इस्तेमाल कर सकें।

हालांकि, सार्वजनिक परिवहन सस्ता होने के बावजूद कुछ छिपी हुई लागतें इसे महंगा और असुविधाजनक बना देती हैं, खासकर बसों के लिए। बस या मेट्रो तक पहुंचने और उतरने के बाद गंतव्य तक पहुंचने के लिए ऑटो, ई-रिक्शा जैसे साधनों पर अतिरिक्त खर्च करना पड़ता है। इंटरचेंज यानी एक साधन से दूसरे साधन में बदलने में समय लगता है। इसी तरह, ट्रैफिक जाम के कारण खासकर बसों से यात्रा का समय बढ़ जाता है। उदाहरण के लिए, दिल्ली में 50 प्रतिशत से ज्यादा बस स्टॉप पर 10 मिनट से ज्यादा इंतजार करना पड़ता है। इसका कारण ट्रैफिक जाम और बसों का खराब शेड्यूल है, जिससे बसें अक्सर एक साथ आ जाती हैं, जिसे बस बंचिंग कहते हैं। इससे ऑपरेटर को भी नुकसान होता है। पीक आवर्स में ट्रैफिक जाम के कारण सार्वजनिक परिवहन खासकर बसों को बहुत ज्यादा देरी होती है। सितंबर 2024 के एक विश्लेषण के अनुसार, दिल्ली में कार्यदिवसों के दौरान सुबह के पीक आवर्स में बसों की औसत गति 41 प्रतिशत कम हो जाती है, और शाम के पीक आवर्स में बसें 56 प्रतिशत तक धीमी पड़ जाती हैं। वहीं, सप्ताहांत पर सुबह के समय ट्रैफिक 27 प्रतिशत और शाम के समय 42 प्रतिशत तक धीमा हो जाता है।

गति में कमी की यह गणना "फ्री-फ्लो स्पीड" (यानी, सुबह के समय जब न के बराबर ट्रैफिक वाली सड़कों पर बसें जितनी तेजी से चलती हैं) के आधार पर की गई थी। जब सार्वजनिक परिवहन से यात्रा की कुल लागत में इंटरचेंज और सार्वजनिक वाहन में यात्रा के दौरान लगने वाले समय के साथ ही "पहले और अंतिम मील" (यानी घर से बस स्टॉप/मेट्रो तक और वहां से गंतव्य तक) के लिए लगने वाला अतिरिक्त किराए के खर्च को जोड़ा गया, तो आर्थिक रूप से निजी वाहन का इस्तेमाल करना ज्यादा सस्ता पड़ा। समय की लागत की गणना व्यक्ति की आय, रोजाना के काम के घंटे और साल में काम के दिनों के आधार पर की गई। सर्वे में शामिल किए गए लोगों के सालाना सफर पर होने वाले कुल खर्च को उनकी सालाना आय के अनुपात में मापा

Slow Murder Continues_Hindi.indd 122 16/07/25 11:25 AM

गया। इसमें पाया गया कि औसतन (मीडियन) लोग अपनी सालाना आय का 18 प्रतिशत सिर्फ पब्लिक ट्रांसपोर्ट के सफर पर खर्च कर देते हैं। जबकि ज्यादातर लोगों का खर्च (यानी मध्यवर्गीय फैलाव, जिसे इंटरक्वारटाइल रेंज– आईक्यूआर कहते हैं) 12 प्रतिशत से 32 प्रतिशत के बीच था। यानी कुछ लोग इससे भी कम खर्च कर रहे थे और कुछ ज्यादा, लेकिन बड़ी संख्या में लोग इसी दायरे में आते हैं। इसे ऐसे समझ सकते हैं, सर्वे में शामिल लोगों में से ज्यादातर ने सालाना आय का 12 प्रतिशत से 32 प्रतिशत पब्लिक ट्रांसपोर्ट पर खर्च किया, और औसतन यह खर्च 18 प्रतिशत था। इसी तरह, प्राइवेट गाड़ियां (जैसे बाइक, कार) इस्तेमाल करने वालों की सालाना आय में से औसतन 12 प्रतिशत खर्च आवागमन पर होता है। जबकि, ज्यादातर लोगों का खर्च यानी इंटरक्वारटाइल रेंज 6 प्रतिशत से 18 प्रतिशत के बीच पाया गया।

दिलचस्प बात यह है कि मेट्रो से सफर करना, बसों की तुलना में ज्यादा महंगा साबित हुआ। जब हम पूरे सफर की लागत गिनते हैं, तो सभी ट्रांसपोर्ट मोड्स में मेट्रो सबसे महंगी थी। इसकी वजह यह है कि मेट्रो स्टेशन हर जगह नहीं हैं, इसलिए स्टेशन तक पहुंचने और स्टेशन से गंतव्य तक जाने का अतिरिक्त खर्च बढ़ जाता है। इसके अलावा, मेट्रो में चढ़ने और उतरने में भी ज्यादा समय लगता है, क्योंकि प्लेटफॉर्म्स अक्सर भीड़भाड़ वाले होते हैं, सुरक्षा जांच की लंबी कतारें होती हैं और रास्ता तय करने में भी समय लगता है।

सार्वजनिक परिवहन की व्यवहारिकता और खर्च का अध्ययन करना जरूरी है, क्योंकि इसका सीधा असर यात्रियों के विकल्पों और सफर के लिए उनके चुनाव पर पड़ता है। साथ ही, यह सार्वजनिक परिवहन के उपयोग को प्रोत्साहित या हतोत्साहित कर सकती है। अगर लोगों को लगता है कि सार्वजनिक परिवहन महंगा है, जिसमें किराया और समय दोनों ज्यादा लग रहे हैं, असुविधा भी ज्यादा है, तो वे निजी वाहनों का इस्तेमाल ज्यादा करेंगे। इससे शहरों में ट्रैफिक जाम और प्रदूषण और बढ़ता जाता है, और यह दुष्चक्र चलता रहता है। लेकिन, इस दुष्चक्र को तोड़ने का तरीका यहां बताया गया है। निजी वाहनों का इस्तेमाल कभी भी पूरी तरह से खत्म नहीं होने वाला है।

हमें ऐसी तकनीकों की जरूरत है, जो स्वच्छ ईंधन को बढ़ावा दें। साथ ही, वाहनों पर ऐसे कड़े नियम लागू हों, जिससे वे कम ईंधन खर्च करें और

Slow Murder Continues_Hindi.indd 123 16/07/25 11:25 AM

कम प्रदूषण करें। इससे गाड़ियों से निकलने वाले धुएं को शुरुआत में ही कम किया जा सकता है। हमें यह तय करना होगा कि बसें, मेट्रो आदि कितनी अच्छी सेवा दे रही हैं, जैसे समय पर आना, भीड़ न होना, सफाई आदि। इन्हें सुधारने के लिए योजना और अध्ययन की जरूरत है। नीतियों में जो भी बदलाव किए जाएं, वे सिर्फ अनुमान या दबाव में नहीं, बल्कि रिसर्च, यात्रियों और गाड़ियों के डेटा और वैज्ञानिक समझ के आधार पर होने चाहिए। लोगों को उनके गंतव्य तक पहुंचाने के लिए कनेक्टिविटी मजबूत की जाए। पैदल चलने और साइकिल चलाने के लिए सुरक्षित रास्ते होने चाहिए, फीडर बसें या छोटी सेवाएं शुरू की जाएं, जो मेट्रो स्टेशन, बस स्टॉप से घर को जोड़ें। अगर हर कोई कार या स्कूटर चलाएगा तो ट्रैफिक जाम और प्रदूषण बढ़ेगा। इसके लिए पार्किंग महंगी और सीमित की जाएं। भीड़ वाले इलाकों में गाड़ी चलाने का चार्ज वसूला जाए। कम प्रदूषण वाले जोन तय किए जाएं और वहां कम प्रदूषण वाले वाहनों को ही अनुमति दी जाए। गाड़ियों पर ईमानदारी से टैक्स लिया जाए।

शहरों की योजना बनाते समय इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि घर, काम की जगहें और जरूरी सेवाएं जैसे स्कूल, अस्पताल, दुकानें एक-दूसरे के करीब हों। यह खासकर उन जगहों पर होना चाहिए, जहां सार्वजनिक परिवहन के केंद्र जैसे बस स्टॉप, मेट्रो स्टेशन हों। इससे लोगों को ज्यादा दूर जाना नहीं पड़ेगा। सरकारों को अपने बजट में बदलाव करना चाहिए। अभी जो पैसा सड़कों और पुलों पर खर्च होता है, उसे सार्वजनिक परिवहन और शून्य-उत्सर्जन वाले परिवहन पर लगाना चाहिए। फंडिंग के नए तरीके अपनाए जाएं, जैसे लैंड वैल्यू कैप्चर यानी जब किसी जगह पर नई परिवहन परियोजना बनती है, तो आसपास की जमीन की कीमत बढ़ जाती है। सरकार इस बढ़ी हुई कीमत का कुछ हिस्सा ले सकती है और उसे परिवहन परियोजना में लगा सकती है। या फिर क्लाइमेट फंड, जिससे पर्यावरण को बचाने और प्रदूषण कम करने वाली परियोजनाओं के लिए पैसे आ सकें। ■

Slow Murder Continues_Hindi.indd 124 16/07/25 11:25 AM

इलेक्ट्रिक वाहनों की ओर

वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए जरूरी है इलेक्ट्रिक वाहनों को अपनाना और वाहनों की संख्या कम करना

वायु प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन और सार्वजनिक स्वास्थ्य पर मंडराता खतरा, इन तीनों बड़ी समस्याओं की जड़ पेट्रोल-डीजल से चलने वाले आधुनिक आंतरिक दहन इंजन (इंटर्नल कम्बस्टन इंजन) ही हैं। भारत में ऑटोमोबाइल इंडस्ट्री करीब सौ साल पुरानी है और यह वाहनों की बड़ी निर्यातक भी है। भारत में पहला वाहन 1897 में सड़क पर आया था। तब किसी ने नहीं सोचा था कि सुविधा के लिए बने साधन भविष्य में इतने बड़े खतरे बन जाएंगे। अंतरराष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी की हालिया रिपोर्ट बताती है कि भारत में ऊर्जा से संबंधित 12 प्रतिशत कार्बन डाई ऑक्साइड उत्सर्जन की वजह सड़कों पर चलने वाली गाड़ियां हैं। शहरों में वायु प्रदूषण का एक बड़ा कारण भी यही गाड़ियां हैं।

भारत में यह दौर रोमांच और बदलावों से भरा है। गाड़ियों से होने वाले प्रदूषण के इस संकट को हल करने के लिए वाहन निर्माताओं ने ऐसी गाड़ियां विकसित की हैं, जिनसे कार्बन डाई ऑक्साइड का उत्सर्जन शून्य है। ये ऐसे

Slow Murder Continues_Hindi.indd 125 16/07/25 11:25 AM

वाहन हैं, जिनसे कोई प्रदूषण नहीं निकलता। पेट्रोल-डीजल के इंजनों (आंतरिक दहन इंजन) की जगह इलेक्ट्रिक वाहनों का इस्तेमाल बहुत बड़ा और क्रांतिकारी कदम है।

सबसे अप्रत्याशित और शुरुआती बदलाव साल 2012 में आए, जब अनाधिकारिक रूप से बने बैटरी से ई-रिक्शा चलने शुरू हुए। आम जनता के लिए बने इन सस्ते और प्रदूषण-मुक्त (जीरो-उत्सर्जन) वाहनों से पारंपरिक ऑटो-रिक्शा बनाने वाली बड़ी कंपनियों का बाजार डगमगा गया। ई-दोपहिया और ई-तिपहिया वाहनों की सफलता का लाभ उठाते हुए अब ई-पैसेंजर कारें और ई-ट्रक भी आने लगे हैं और भारत में अपनी सफलता की शानदार कहानियां लिख रहे हैं। 2019 में भारत सरकार के थिंक-टैंक नीति आयोग ने 2030 तक इलेक्ट्रिक वाहनों की बिक्री के लिए बड़े लक्ष्य तय किए, जिसके मुताबिक, 2030 तक सभी नई वाणिज्यिक कारों में ईवी की हिस्सेदारी 70 प्रतिशत, निजी कारों में 30 प्रतिशत, बसों में 40 प्रतिशत और दोपहिया व तिपहिया वाहनों में ईवी की हिस्सेदारी 80 प्रतिशत तक होगी।

हालांकि, 2025 का आधा साल बीत चुका है और हम नीति आयोग द्वारा तय किए गए लक्ष्यों से अभी भी काफी दूर हैं। केवल तिपहिया वाहनों की श्रेणी में ही ईवी की संख्या तेजी से बढ़ रही है। नए पंजीकरणों में से लगभग 60 प्रतिशत ईवी तिपहिया थे। इनमें से अधिकतर तिपहिया वाहन किसी ब्रांड के नहीं हैं और स्थानीय स्तर पर बने हैं। इनसे सड़कों पर भीड़ जरूर बढ़ रही है, लेकिन लोगों को सस्ती यात्रा भी मिल पा रही है। कारों, दोपहिया वाहनों या बसों जैसी अन्य श्रेणियों में ईवी की संख्या बहुत कम है। नए पंजीकृत होने वाले इन वाहनों में से केवल 5-6 प्रतिशत ही ईवी थे।

विज्ञान कहता है कि पेट्रोल और डीजल कारों को शक्ति देने वाले आंतरिक दहन इंजनों (आईसी इंजन) को हटाने से गाड़ी के पाइप से निकलने वाला जहरीला धुआं खत्म हो सकता है। साथ ही, ईंधन जलने से निकलने वाली कार्बन गैसें (जो गर्मी रोकती हैं) भी बहुत कम हो जाएंगी। दुनिया भर में जो ट्रेंड दिख रहा है, उसके मुताबिक आईसी इंजन वाली गाड़ियों से इलेक्ट्रिक गाड़ियों की तरफ जाना तय है, क्योंकि आने वाले दशकों में कार्बन और प्रदूषण कम करने के नियम और सख्त होंगे। इलेक्ट्रिक कारें नई पीढ़ी की तकनीक पर आधारित हैं, जो आई इंजन वाली गाड़ियों से कहीं ज्यादा सरल है। ई-कारों की

Slow Murder Continues_Hindi.indd 126 16/07/25 11:25 AM

बनावट ज्यादा जटिल नहीं होती। आईसी इंजन वाली गाड़ी में लगभग 2,000 पुर्जे होते हैं, जबकि एक ई-कार में सिर्फ 20 चलने वाले पुर्जे होते हैं। कम पुर्जे होने की वजह से ई-कार का रखरखाव बहुत आसान और सस्ता होता है। सरल तकनीक होने से कार के नियमित रखरखाव की परेशानी और लागत कम हो जाती है। इलेक्ट्रिक वाहन भारत स्टेज-6 (बीएस VI) उत्सर्जन मानकों को पूरा करने वाले बेहद जटिल डीजल वाहन से बहुत अलग होते हैं।

डीजल कारों में पहले से ही कुछ जटिल तकनीकें होती थीं जैसे, ईंधन को सीधे इंजन में भेजने के लिए कॉमन रेल डायरेक्ट इंजेक्शन, इंजन की शक्ति बढ़ाने के लिए टर्बोचार्जर, इंजन से निकलने वाली कुछ गैसों को वापस इंजन में भेजने के लिए एग्जॉस्ट गैस रीसर्कुलेशन और प्रदूषण कम करने के लिए एडवांस्ड डीजल ऑक्सीडेशन कैटालिस्ट। अब बीएस-6 के सख्त प्रदूषण नियमों को पूरा करने के लिए डीजल कारों में और भी जटिल सिस्टम लगाए गए हैं। डीजल के धुएं में मौजूद कालिख के छोटे कणों को रोकने के लिए डीजल पार्टिकुलेट ट्रैप और नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसी गैसों को नियंत्रित करने के लिए सेलेक्टिव कैटालिटिक रिड्यूसिंग सिस्टम है, जिसमें नियमित तौर पर अलग से यूरिया डालना पड़ता है। नए डीजल इंजन में ऐसी ही और भी कई जटिल तकनीकें हैं।

अगर ईवी को चार्ज करने में इस्तेमाल होने वाली बिजली और बैटरी निर्माण में होने वाले कार्बन उत्सर्जन को भी शामिल कर लें, तब भी पेट्रोल और डीजल वाहनों की तुलना में इलेक्ट्रिक वाहनों से उत्सर्जन कम होगा। इलेक्ट्रिक वाहन ऊर्जा को गति में बदलने के मामले में भी अधिक कुशल होते हैं। ईवी ग्रिड से मिलने वाली 59 प्रतिशत- 62 प्रतिशत विद्युत ऊर्जा पहियों को चलाने में इस्तेमाल कर पाते हैं, जबकि पेट्रोल वाहन पेट्रोल में मौजूद ऊर्जा का केवल 17 प्रतिशत -21 प्रतिशत ही पहियों को चलाने में इस्तेमाल कर पाते हैं। यह तर्क भी दिया जा सकता है कि ईवी के लिए बिजली बनाने से भी प्रदूषण होता है, लेकिन प्रदूषण की मात्रा इस पर निर्भर करती है कि बिजली कैसे बनाई जा रही है, जैसे कोयले से या सौर ऊर्जा से। भारत का लक्ष्य है कि 2030 तक उसकी कुल बिजली उत्पादन क्षमता का लगभग 40 प्रतिशत हिस्सा गैर-जीवाश्म ईंधन (जैसे सौर, पवन ऊर्जा) से आए। यूरोप में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि पेट्रोल या डीजल वाहन उतने ही बड़े इलेक्ट्रिक वाहन की

Slow Murder Continues_Hindi.indd 127 16/07/25 11:25 AM

तुलना में तीन गुना ज्यादा कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ते हैं, इसमें ईवी की चार्जिंग से जुड़ा कार्बन फुटप्रिंट भी शामिल है।

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, रुड़की और इंटरनेशनल काउंसिल ऑन क्लीन ट्रांसपोर्टेशन ने हाल ही में एक अध्ययन किया। इस अध्ययन में पाया गया कि भारत में बैटरी इलेक्ट्रिक वाहन (बीईवी) पेट्रोल और डीजल कारों (आईसी इंजन वाले) की तुलना में प्रति किलोमीटर 38 प्रतिशत तक कम कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ते हैं। अध्ययन के मुताबिक, कारों से होने वाले प्रदूषण में 75 फीसदी फर्क की 3 प्रमुख वजहें हैं- बिजली उत्पादन में कार्बन की मात्रा, प्रयोगशाला परीक्षण की धारणाएं और वास्तविक दुनिया में अलग ड्राइविंग परिस्थितियां। यानी बिजली ऐसे स्रोतों से आ रही है, जो कोयला जलाते हैं, तो इलेक्ट्रिक कारें भी अप्रत्यक्ष रूप से ज्यादा प्रदूषण करेंगी। लैब में कारों का परीक्षण असली दुनिया से अलग होता है। इसलिए टेस्ट में कम उत्सर्जन दिखता है, लेकिन असलियत में ज्यादा हो सकता है। ट्रैफिक, सड़क की हालत, ड्राइविंग स्टाइल जैसे कारण भी कार की परफॉर्मेंस और प्रदूषण स्तर को प्रभावित करते हैं। यह रिसर्च भारत में चलने वाली कारों (यात्री वाहनों) से उनके पूरे जीवनकाल में निकलने वाले ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन पर की गई पहली बड़ी और समग्र समीक्षाओं में से एक है। भारत में पहले किए गए 6 बड़े अध्ययनों को एक साथ मिलाकर विश्लेषण किया गया। इसमें पता लगाया गया कि कारों से प्रदूषण किन-किन कारणों से होता है और उसे कैसे कम किया जा सकता है।

अध्ययन में पाया गया कि बिजली उत्पादन के तरीके और उसकी दक्षता में अंतर के कारण प्रति किलोमीटर उत्सर्जन में 368 ग्राम सीओ2ई तक का बड़ा फर्क आ सकता है। यह उतना ही ज्यादा है, जितना प्रति किलोमीटर 2 से 3 पेट्रोल कारों को चलाने से प्रदूषण होता है। अध्ययन ने इस बात पर जोर दिया कि बीईवी (बैटरी इलेक्ट्रिक वाहन) "लाइफ साइकिल जीएचजी उत्सर्जन" के मामले में पेट्रोल/डीजल (आईसी इंजन) और हाइब्रिड इलेक्ट्रिक वाहनों (एचईवी) से लगातार बेहतर प्रदर्शन करते हैं। बीईवी के फायदे सबसे अच्छे तब सामने आते हैं, जब विश्लेषण में ऊर्जा खपत की अवास्तविक धारणाओं से बचा जाता है और वास्तविक दुनिया के प्रदर्शन को शामिल किया जाता है। शोध में चेतावनी दी गई है कि हमें स्वच्छ बिजली ग्रिड का इंतजार करते हुए

Slow Murder Continues_Hindi.indd 128 16/07/25 11:25 AM

Slow Murder Continues_Hindi.indd 129 16/07/25 11:25 AM

ईवी अपनाने में देरी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि आज खरीदे गए पेट्रोल/डीजल वाहन 10-15 साल तक सड़कों पर रहेंगे और लगातार प्रदूषण फैलाते रहेंगे, जबकि इलेक्ट्रिक वाहनों को ग्रिड में धीरे-धीरे होने वाले सुधारों का फायदा मिलेगा। अध्ययन में यह भी बताया गया कि कई मूल्यांकनों में भूमि-उपयोग परिवर्तन (जैसे फसल उगाने के लिए जंगल काटना) को शामिल नहीं किया जाता, जिससे जैव ईंधन से होने वाले उत्सर्जन को कम आंका जाता है। उदाहरण के लिए, डीजल उत्पादन से होने वाले उत्सर्जन में प्रति किलोमीटर 8 से 22 ग्राम सीओ2 तक अंतर आ सकता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि भूमि-उपयोग परिवर्तन को शामिल किया गया है या नहीं।

आईसीसीटी के इंडिया मैनेजिंग डायरेक्टर अमित भट्ट उत्सर्जन कम करने में बीईवी (बैटरी इलेक्ट्रिक वाहनों) के महत्व पर जोर देते हुए कहते हैं, "इलेक्ट्रिक वाहन, पेट्रोल-डीजल (आईसीई) वाहनों से ज्यादा कुशल होते हैं। जैसे-जैसे भारत में बिजली बनाने में कोयले का इस्तेमाल कम होगा और स्वच्छ ऊर्जा बढ़ेगी, ये वाहन और भी ज्यादा साफ होते जाएंगे। इसलिए बैटरी इलेक्ट्रिक वाहनों को अपनाने में देरी करने से आईसीई वाहनों से लंबे समय तक प्रदूषण बढ़ते रहने का खतरा बना रहेगा।" आईसीसीटी की शोधकर्ता और इस शोध की सह-लेखिका सुनीता अनूप ने सुझाव दिया कि भविष्य में जब भी भारत में वाहनों के "पूरे जीवनकाल के उत्सर्जन' का आकलन किया जाए, तो उसमें वाहन के जीवनकाल के दौरान विकसित हो रहे बिजली ग्रिड, वास्तविक दुनिया में ऊर्जा उपयोग और जैव ईंधन से होने वाले भूमि-उपयोग उत्सर्जन को शामिल किया जाना चाहिए, ताकि स्वच्छ परिवहन नीतियों को बेहतर ढंग से सूचित किया जा सके।" वह कहती हैं कि "यह दिखाता है कि हम आज जो मानकर चलते हैं, वह कल के जलवायु प्रभाव को तय करता है।" वहीं, आईसीसीटी की शोधकर्ता और इस शोध की सह-लेखिका नमिता सिंह कहती हैं, "भारत का "नेट-जीरो" (जितना प्रदूषण छोड़ें, उतना ही खत्म करें) लक्ष्य बैटरी इलेक्ट्रिक वाहनों (बीईवी) को तेजी से अपनाए बिना अधूरा है। इन वाहनों की प्रदूषण कम करने की पूरी क्षमता को समझने के लिए आकलन के दौरान विकसित हो रहे ग्रिड मिक्स को ध्यान में रखना चाहिए और बिजली क्षेत्र को कार्बन-मुक्त करने के लिए सरकार के चल रहे प्रयासों को शामिल करना चाहिए।"

हाल ही में इलेक्ट्रिक वाहनों के क्षेत्र में दो बड़ी बातें हुई हैं, जिनसे लोगों की बहुत रुचि बढ़ी है। सरकार ने मार्च 2024 में एक नई ईवी नीति की घोषणा की है। इसका मकसद दुनिया भर से कंपनियों को भारत में ईवी बनाने के लिए निवेश करने के लिए आकर्षित करना है, खासकर इलेक्ट्रिक कारों में "वैल्यू एडिशन" (जैसे भारत में ही ज्यादा से ज्यादा पुर्जे बनाने) को बढ़ावा देना। दूसरा है प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद (ईएसी-पीएम) के अध्यक्ष बिबेक देबरॉय और निदेशक देवी प्रसाद मिश्रा द्वारा लिखे गए एक वर्किंग पेपर में दिया गया एक बहुत महत्वपूर्ण सुझाव, जिसमें ऑटो कंपनियों के लिए हर साल इलेक्ट्रिक वाहनों का उत्पादन लक्ष्य तय करने की बात कही गई है। नई ईवी नीति के बारे में ऑटो उद्योग की प्रतिक्रियाएं मिली-जुली हैं। कुछ को विदेशी कंपनियों से प्रतिस्पर्धा और आयातित मॉडलों से दिक्कत हो सकती है। ईएसी-पीएम के सालाना ईवी कोटा तय करने के विचार को अभी भी बड़े पैमाने पर समर्थन की जरूरत है, ताकि यह बड़ी सफलता साबित हो और भारत में ईवी क्रांति ला सके।

नई ईवी नीति के तहत विदेशी कंपनियों को भारत में निवेश करने के लिए कम से कम 4,150 करोड़ रुपए लगाने होंगे। इन कंपनियों को तीन साल के अंदर भारत में मैन्युफैक्चरिंग प्लांट लगाने होंगे और पांच साल में कुल उत्पादन में 50 प्रतिशत तक स्थानीय (घरेलू) पुर्जों का उपयोग करना होगा। 35,000 डॉलर यानी लगभग 29 लाख रुपए या उससे अधिक कीमत वाले आयातित इलेक्ट्रिक वाहनों पर लगने वाली कस्टम ड्यूटी (आयात शुल्क) 100-70 प्रतिशत से घटाकर सिर्फ 15 प्रतिशत कर दी जाएगी। यह छूट पांच साल के लिए होगी। कुल आयात पर फीस में मिलने वाली छूट 6,484 करोड़ रुपए तक सीमित होगी (जो उत्पादन-लिंक्ड प्रोत्साहन योजना के तहत मिलने वाली प्रोत्साहन राशि के बराबर या दोनों में से जो भी कम हो)। यह नीति कंपनियों को शुरुआत में पूरी तरह से बनी हुई ईवी (सीबीयू) को कम शुल्क पर आयात करने की अनुमति देती है, बशर्ते वे बाद में भारत में विनिर्माण इकाई स्थापित करें। अगर कंपनी 8,000 लाख डॉलर का निवेश करती है, तो उसे पांच साल में अधिकतम 40,000 ईवी आयात करने की अनुमति होगी, जिसमें एक साल में 8,000 से ज्यादा इलेक्ट्रिक वाहन नहीं हो सकते। इस नीति का मुख्य लक्ष्य दुनिया की बड़ी कार कंपनियों को भारत में लाना और भारत को ईवी उत्पादन

Slow Murder Continues_Hindi.indd 131 16/07/25 11:25 AM

और निर्यात का केंद्र (हब) बनाना है।

अभी यह साफ नहीं है कि यह नई नीति असल में कैसे काम करेगी और इसे अपनाने वाली कंपनियां (विदेशी निर्माता) इस पर कैसी प्रतिक्रिया देंगी। बाजार में नई प्रतिस्पर्धा आने की अटकलें लगाई जा रही हैं। बाजार के जानकार मानते हैं कि यह नीति महंगी और लग्जरी ईवी कारों के सेगमेंट में नए मॉडल लाएगी। भारत में इस सेगमेंट की बाजार हिस्सेदारी कम है और इसमें अभी बहुत कम घरेलू मॉडल उपलब्ध हैं। अभी यह नहीं पता है कि सरकार का स्थानीयकरण (भारत में पुर्जे बनाने) का लक्ष्य आखिर में सस्ती कारों के बाजार और बड़ी संख्या वाले बाजार को कैसे प्रभावित करेगा, जहां अभी घरेलू कंपनियों का दबदबा है। बताया जा रहा है कि भारतीय कंपनियां इस नई प्रतिस्पर्धा को लेकर चिंतित हैं। उनका मानना है कि अभी यह ईवी उत्पादन का शुरुआती दौर है, उत्पादन की लागत बहुत ज्यादा है, ईवी का उत्पादन अभी कम मात्रा में हो रहा है और भारत में ईवी का बाजार अभी पूरी तरह विकसित नहीं हुआ है।

भारतीय निर्माताओं को विदेशी निवेशकों से प्रतिस्पर्धा करने के लिए तेजी से बेहतर और नई तकनीकें लानी होंगी। विदेशी निवेशकों को पांच साल के अंदर 50 प्रतिशत स्थानीय उत्पादन का लक्ष्य पूरा करना होगा, जिससे वे स्थानीय स्तर पर भी मजबूत होंगे। जो भारतीय कंपनियां अभी तक ईवी बनाने को लेकर हिचकिचा रही थीं, उन्हें अब तेजी से काम करना होगा। यह नई नीति केवल ईवी को बढ़ावा देने के लिए नहीं है, बल्कि यह सरकार की एक बड़ी रणनीति का हिस्सा है। इसका उद्देश्य स्थानीय विनिर्माण को बढ़ावा देना है, ताकि प्रदूषण कम हो और देश को बड़ा आर्थिक लाभ मिले। पहले से ही सरकार ने "एडवांस्ड केमिस्ट्री बैटरी" के लिए उत्पादन से जुड़े प्रोत्साहन (पीएलआई) और राज्य स्तर पर ईवी नीतियां लागू की हैं, जिनमें स्थानीय उत्पादन इकाइयों को कई छूट और लाभ दिए गए हैं। लेकिन, इन प्रोत्साहनों के सफल होने और बाजार की निरंतर वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए अब भी ज्यादा प्रभावी कदम उठाने की जरूरत है ताकि बाजार की अनिश्चितता कम हो सके।

प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद (ईएसी-पीएम) के कार्यकारी पत्र में दिया गया सुझाव कि कंपनियों के लिए हर साल ईवी बिक्री का लक्ष्य

Slow Murder Continues_Hindi.indd 132 16/07/25 11:25 AM

तय किया जाए, बहुत जरूरी और महत्वपूर्ण है। सिर्फ "फास्टर एडॉप्शन एंड मैन्युफैक्चरिंग ऑफ (हाइब्रिड एंड) इलेक्ट्रिक व्हीकल्स (एफएएमई)" जैसी सरकारी योजनाओं और राज्य स्तर पर दिए जा रहे प्रोत्साहनों पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं है। ये प्रोत्साहन सिर्फ मांग पैदा करते हैं, जो लगातार बढ़ने वाला बड़ा बाजार बनाने के लिए काफी नहीं है। ईएसी-पीएम के वर्किंग पेपर में बताया गया है कि ईवी अपनाने में कई बाधाएं हैं, जिन्हें दूर करने के लिए और ज्यादा उपाय करने चाहिए। इन बाधाओं में अग्रिम लागत, "रेंज एंग्जायटी" यानी इस बात की चिंता कि चार्जिंग स्टेशन कहां मिलेंगे और गाड़ी की बैटरी कितनी चलेगी, बाजार में ईवी के कम मॉडल उपलब्ध होना, यह नहीं पता होना कि पुरानी ईवी की दोबारा बिक्री पर कितनी कीमत मिलेगी और प्रौद्योगिकी के विकास का शुरुआती चरण होना शामिल हैं।

ईवी को लगातार बढ़ावा देने के लिए सरकार को निर्माताओं के लिए कुछ निश्चित लक्ष्य (रेगुलेटरी टारगेट) तय करने चाहिए, जिसमें उन्हें एक निश्चित संख्या में शून्य-उत्सर्जन वाले वाहन (ईवी) बनाने और बेचने हों। अगर हम सिर्फ ईवी खरीदने वालों को छूट देंगे तो बाजार में ईवी के कम मॉडल होंगे। इससे लोगों को उन गिने-चुने मॉडलों के लिए आपस में प्रतिस्पर्धा करनी पड़ेगी, जिससे उनकी कीमतें बढ़ सकती हैं। लेकिन, अगर सरकार निर्माताओं के लिए हर साल अपने कुल उत्पादन का एक निश्चित हिस्सा ईवी के रूप में बनाने और बेचने का आदेश देती है और साथ ही उन्हें ईंधन दक्षता का लक्ष्य भी पूरा करना पड़ता है तो इससे ईवी की लागत कम हो सकती है। ऐसा इसलिए होगा क्योंकि कंपनियों को अपने लक्ष्यों को पूरा करने के लिए बाजार में प्रतिस्पर्धा करनी पड़ेगी। इससे नए आविष्कार और नए मॉडलों को बढ़ावा मिलेगा जिससे उपभोक्ताओं के लिए विकल्प बढ़ेंगे और उनका विश्वास बढ़ेगा। यह तरीका असल में घरेलू निर्माताओं के हित में काम करेगा।

आमतौर पर लोग सोचते हैं कि ऑटोमोबाइल उद्योग सरकार के ऐसे अनिवार्य उत्पादन लक्ष्य को स्वीकार नहीं करेगा। लेकिन, नई दिल्ली के "सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट" ने 2022 में एक सर्वे किया, जिसमें पता चला कि वाहन निर्माता कंपनियां (ओईएम) असल में शून्य-उत्सर्जन वाहन (जेडईवी) यानी बिना प्रदूषण वाले वाहन बनाने के लिए ऐसे अनिवार्य लक्ष्यों के विरोध में नहीं हैं, बस उन्हें लक्ष्य थोड़े कम चाहिए। उनकी पसंद अलग-

Slow Murder Continues_Hindi.indd 133 16/07/25 11:25 AM

अलग सेगमेंट (जैसे दोपहिया, कार) में बदलती रहती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि उन्हें उस सेगमेंट में उन्हें कितनी वृद्धि की उम्मीद है। दोपहिया और तिपहिया निर्माता कंपनियां थोड़े ऊंचे लक्ष्य (जेडईवी नियमों के लिए) को भी स्वीकार करने को तैयार हैं, जबकि कार निर्माता कंपनियां बहुत कम या न्यूनतम लक्ष्य चाहती हैं। भले ही शुरुआत छोटे लक्ष्य से की जाए, लेकिन जल्दी करना जरूरी है। इससे वास्तविकता का अंदाजा लग जाएगा, खासकर तब जब सोसाइटी ऑफ इंडियन ऑटोमोबाइल मैन्युफैक्चरर्स (एसआईएएम) खुद कहती है कि वह 40 प्रतिशत इलेक्ट्रिक वाहन लाने का इरादा रखती है और दूसरी तरफ भारत सरकार खुद 2030-2040 तक बड़ी इलेक्ट्रिक वाहन क्रांति का सपना देख रही है। यह कदम आईना दिखाने वाला साबित हो सकता है और सभी सरकारी नीतियों को पूरी गति से लागू करने में मदद भी करेगा।

अगर सरकार ईवी निर्माताओं के लिए "शून्य उत्सर्जन वाहन आपूर्ति आदेश" (यानी एक निश्चित संख्या में ईवी बनाना अनिवार्य करने) और अन्य नियामक लक्ष्य तय करती है। साथ ही ईंधन दक्षता के मानक मजबूत करती है और क्रेडिट ट्रेडिंग जैसे तरीके लाती है, तो इससे पहले से मौजूद सभी नीतियां जैसे लोगों को ईवी खरीदने पर छूट, उत्पादन से जुड़ी प्रोत्साहन योजनाएं और राज्य स्तर की नीतियां ज्यादा प्रभावी ढंग से काम करेंगी और ईवी क्रांति तेजी से आगे बढ़ेगी। जब कंपनियां बड़ी मात्रा में इलेक्ट्रिक वाहन बनाएंगी तो उनकी लागत कम हो जाएगी। इससे धीरे-धीरे सरकार पर भी सब्सिडी का बोझ कम होगा और ईवी के लिए यह पहल राजस्व-तटस्थ बन सकेगी।

जब ईवी बाजार की वृद्धि तय और निरंतर होगी, तो इससे भारत के बैटरी विकास कार्यक्रमों में भी तेजी आएगी। इसमें बड़े पैमाने पर बैटरी सेल का उत्पादन, बेहतर बैटरी तकनीकों का व्यावसायिक उपयोग, नई तरह की बैटरी केमिस्ट्री का विकास, महत्वपूर्ण खनिजों की एक मजबूत, भरोसेमंद और सस्ती आपूर्ति श्रृंखला बनाना और भारत में उच्च स्तर की तकनीकी तैयारी शामिल हैं। चाहे स्थानीय उत्पादन की बात हो या विदेशी निवेश लाने की या फिर या घरेलू विनिर्माण के लिए विदेशों से खनिज सुरक्षित करना और देश में खनन करना हो, इन बड़े निवेशों को आकर्षित करना और टिकाऊ बनाना तभी संभव है, जब सरकार की ओर से उद्योग को एक स्पष्ट और दीर्घकालिक नीति

Slow Murder Continues_Hindi.indd 134 16/07/25 11:25 AM

मिले। यानी ऐसा नियम जो कहे कि उन्हें कितने प्रतिशत जेडईवी बनाने होंगे। इससे उद्योग को भविष्य का भरोसा मिलेगा और वे बड़ी योजनाओं में निवेश करने में हिचकिचाएंगे नहीं। यह पूरी व्यवस्था को गति देने वाला कदम साबित हो सकता है।

वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने अपने बजट भाषण में इस बात पर जोर दिया कि भारत में इलेक्ट्रिक वाहन का स्थानीय स्तर पर उत्पादन हो और बैटरी बनाने के लिए कच्चे माल की सुरक्षा हो। यह इस बात का संकेत है कि सरकार भारत में ईवी उत्पादन के इर्द-गिर्द औद्योगिक विकास और रोजगार पैदा करने पर और अधिक गंभीरता से ध्यान दे रही है। यह एक अच्छा मौका है, जहां जलवायु परिवर्तन से लड़ने और हवा को साफ रखने के प्रयासों को एक ऐसी औद्योगिक रणनीति से जोड़ा जा सकता है, जिससे ऑटोमोबाइल सेक्टर में स्वच्छ ऊर्जा की तरफ बदलाव तेजी से आए। बजट प्रस्ताव में सार्वजनिक परिवहन (जैसे इलेक्ट्रिक बसों) को भी विद्युतीकरण से जोड़ा गया है, ताकि ऊर्जा और प्रदूषण दोनों में ज्यादा से ज्यादा बचत हो सके। केंद्रीय बजट में खर्च की मुख्य प्राथमिकताएं इस प्रकार हैं :

- ईवी बैटरी बनाने के लिए इस्तेमाल होने वाले 35 "कैपिटल गुड्स" (मशीनरी और उपकरण) पर कस्टम ड्यूटी (आयात शुल्क) में छूट दी गई है। मोटर, कंट्रोलर और अन्य जरूरी पुर्जों को देश में ही बनाने के लिए भी समर्थन मिलेगा। ईवी विनिर्माण को "स्वच्छ तकनीक विनिर्माण" कार्यक्रमों के साथ जोड़ा जाएगा।

- दोपहिया और भारी वाहनों (जैसे ट्रक, बसों) के विद्युतीकरण को बढ़ाने के लिए "पीएम-ई-ड्राइव" योजना के लिए 4,000 करोड़ रुपए का एक बड़ा बजट आवंटित किया गया है।

- पीएम ई-बस सेवाः "पीएम ई-बस सेवा भुगतान सुरक्षा तंत्र" स्थापित किया गया है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सार्वजनिक परिवहन एजेंसियां (जैसे राज्य परिवहन निगम) इलेक्ट्रिक बसों को खरीद सकें और चला सकें, और उनके संचालन के दौरान ऑपरेटरों को समय पर भुगतान मिल सके। इससे शहरों में सार्वजनिक परिवहन को कार्बन-मुक्त करने में मदद मिलेगी।

- "एडवांस्ड केमिस्ट्री सेल" यानी बेहतर बैटरी के उत्पादन से जुड़ी प्रोत्साहन (पीएलआई) योजनाओं को लगातार समर्थन मिलता रहेगा।

Slow Murder Continues_Hindi.indd 135 16/07/25 11:25 AM

इस बार, ईवी से जुड़े कई अलग-अलग पहलुओं (जैसे विनिर्माण, बैटरी, कच्चे माल) पर एक साथ मिलकर काम किया जा रहा है, ताकि पूरे उद्योग का स्थानीयकरण किया जा सके। इन सभी प्रोत्साहनों और आवंटनों का कारण "आर्थिक सर्वेक्षण 2024" में बताया गया है। सर्वेक्षण में दोहराया गया है कि सड़क परिवहन से होने वाले प्रदूषण (जो पूरे परिवहन क्षेत्र के उत्सर्जन का लगभग 75 प्रतिशत है) को कम करने के लिए इलेक्ट्रिक मोबिलिटी बहुत जरूरी है, ताकि भारत 2070 तक "नेट-जीरो" के लक्ष्य को पूरा कर सके। सर्वे में इलेक्ट्रिक वाहनों से जुड़ी रणनीति को जोखिम मुक्त करने के लिए स्थानीय विनिर्माण के तत्काल विस्तार की आवश्यकता पर जोर दिया है। इसके साथ ही ईवी के उत्पादन में आयात पर अत्यधिक निर्भरता पर गहरी चिंता जताई गई है, खासकर उन देशों से जिनसे भारत का व्यापार घाटा बड़ा है। ऐसे में चीन जैसे देशों के प्रभुत्व को कम करने के लिए प्रौद्योगिकी और कच्चे माल के प्रसंस्करण में तेजी से आत्मनिर्भरता लाने का आह्वान किया गया है।

सर्वेक्षण में एफएएमई इंडिया ऑटो कंपोनेंट्स और बैटरी के लिए पीएलआई योजना और भारत में इलेक्ट्रिक यात्री कारों के विनिर्माण की योजना जैसी सभी सरकारी योजनाओं को सफल बनाने के लिए घरेलू आपूर्ति श्रृंखलाओं को मजबूती से जोड़ने की बात कही गई है। यदि कच्चे माल की उपलब्धता की समस्या को हल नहीं किया गया, तो जरूरी खनिजों की कमी का खतरा बढ़ सकता है। सर्वेक्षण बताता है कि एक इलेक्ट्रिक वाहन बनाने के लिए, पेट्रोल/डीजल कार की तुलना में लगभग छह गुना ज्यादा खनिजों की जरूरत होती है और ये खनिज भारत में ही प्रोसेस करने के लिए उपलब्ध होने चाहिए। सर्वेक्षण ने आईएमएफ (अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष) का हवाला देते हुए कहा है कि यदि महत्वपूर्ण खनिजों का व्यापार बाधित होता है, तो 2030 तक ईवी और नवीकरणीय ऊर्जा में होने वाला निवेश एक सामान्य बाजार की तुलना में 30 प्रतिशत तक कम हो सकता है।

अनुमान है कि भारत में लिथियम-आयन बैटरी का बाजार 2030 तक हर साल 23 प्रतिशत की दर से बढ़ेगा। इतनी तेजी से बढ़ने वाले उद्योग के लिए यह जरूरी है कि बैटरी बनाने के लिए जरूरी सामान की आपूर्ति श्रृंखला को सुरक्षित किया जाए। खनन मंत्रालय ने 33 ऐसे खनिजों की पहचान की है जिनकी सुरक्षा जरूरी है। लेकिन, इन 33 में से 24 खनिजों की आपूर्ति में

Slow Murder Continues_Hindi.indd 136 16/07/25 11:25 AM

Slow Murder Continues_Hindi.indd 137 16/07/25 11:25 AM

रुकावट का खतरा बहुत ज्यादा है, क्योंकि वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला पर चीन का दबदबा है।

अगर ईवी क्रांति का मुख्य लक्ष्य आपूर्ति श्रृंखला को सुरक्षित करना है और बजट में भी इस पर ध्यान दिया गया है, तो हमें पूरी तरह से आत्मनिर्भर तंत्र बनाना होगा। इसके लिए हमें उन्नत बैटरी तकनीकों (जैसे सोडियम-आयन और सॉलिड-स्टेट बैटरी) में ज्यादा निवेश करना होगा और अनुसंधान और विकास की क्षमता बढ़ानी होगी। हमें अपनी तकनीकों के "बौद्धिक संपदा" (पेटेंट आदि) को सुरक्षित करना होगा और बैटरी रीसाइक्लिंग (पुनर्चक्रण) को बढ़ावा देना होगा, ताकि सामग्री सुरक्षा बनी रहे। सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट का कहना है कि हमें ऐसी "स्थानीयकरण रणनीति" अपनानी चाहिए जिस पर तेजी से अमल किया जा सके। यानी बैटरी और सेल बनाने के कार्यक्रमों पर ध्यान देना चाहिए, ताकि भारत में इस क्षेत्र में क्षमता और योग्यता विकसित हो सके। इससे हम ईवी क्रांति को तेजी से आगे बढ़ा पाएंगे। "राष्ट्रीय बैटरी विकास कार्यक्रम" से कई फायदे होंगे, जैसे बड़े पैमाने पर बैटरी सेल का उत्पादन हो पाएगा, बैटरी की परिपक्व तकनीकों का व्यावसायिक उपयोग हो सकेगा, नई तरह की बैटरी केमिस्ट्री विकसित हो सकेगी, बैटरी के पुर्जों को दोबारा इस्तेमाल करके सामग्री सुरक्षा मजबूत की जा सकेगी और ऐसी तकनीकें विकसित हो सकेंगी जो व्यावसायिक इस्तेमाल के लिए तैयार हों और बाजार में सफल हों।

सिर्फ बजट आवंटन काफी नहीं है, बल्कि सरकार को नई बजटीय पहल के साथ-साथ, राष्ट्रीय ईवी नीतियों को और भी मजबूत बनाना होगा, ताकि निश्चित समय-सीमा के अंदर ईवी को अपनाने के लिए अनिवार्य नियम और लक्ष्य तय हो सकें, ईवी निर्माताओं के लिए एक निश्चित मात्रा में शून्य-उत्सर्जन वाले वाहन बनाना और बेचना अनिवार्य किया जाए, वाहनों के लिए ईंधन दक्षता के सख्त नियम बनाए जाएं, ताकि बाजार में ईवी की तरफ एक मजबूत रुझान पैदा हो। अगर घरेलू बाजार में ईवी की सुनिश्चित मांग नहीं होगी, तो स्थानीय उत्पादन को बढ़ाने का जो लक्ष्य रखा गया है, वह पूरी तरह से सफल नहीं हो पाएगा।

नए बजट में इलेक्ट्रिक बस कार्यक्रमों के लिए मिल रहे लगातार समर्थन को भूलना नहीं चाहिए। "पीएम ई-बस सेवा" योजना कई शहरों और कस्बों में

Slow Murder Continues_Hindi.indd 138 16/07/25 11:25 AM

बस सेवाओं को बेहतर बनाने का एक बड़ा मौका है। आर्थिक सर्वेक्षण में इस बात पर स्पष्ट रूप से जोर दिया गया है कि ऊर्जा परिवर्तन को सफल बनाने और आयात पर निर्भरता कम करने के लिए सार्वजनिक परिवहन कितना महत्वपूर्ण है। इस विचार को आगे बढ़ाना चाहिए। सर्वेक्षण में कहा गया है कि "सार्वजनिक परिवहन नेटवर्क का विस्तार करना विदेशी आपूर्ति श्रृंखलाओं पर निर्भरता को कम करने का एक और तरीका है, जिनकी ई-मोबिलिटी को जरूरत होती है।" सिर्फ निजी ई-वाहनों की बजाय सार्वजनिक परिवहन पर जोर देना ज्यादा न्यायसंगत हो सकता है। इससे साफ-सुथरी और टिकाऊ परिवहन प्रणाली का फायदा हर वर्ग के लोगों तक पहुंच सकेगा। यह कदम भारत को एक ज्यादा न्यायसंगत और मजबूत ऊर्जा परिवर्तन की ओर ले जाएगा, यानी ऐसा बदलाव जिसमें सभी शामिल हों और कोई पीछे न छूटे। अब यह देखना होगा कि भारत में ई-वाहनों का बदलाव कितनी तेजी से होता है, स्थानीय उत्पादन और तकनीक को किस तरह आगे बढ़ाया जाता है।

यह बिल्कुल साफ है कि अब भारत के पास इलेक्ट्रिक वाहन कार्यक्रम को विकसित करने से पीछे हटने की कोई गुंजाइश नहीं है। यह एक आत्मनिर्भर औद्योगिक नीति है। इस नीति के कई महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं, जैसे जलवायु परिवर्तन से निपटना और हवा को साफ करना, देश का औद्योगिक विकास करना और ऑटोमोबाइल क्षेत्र में स्वच्छ ऊर्जा की ओर बदलाव लाना। हम जिस जहरीली हवा सांस लेते हैं, उसमें सबसे ज्यादा योगदान वाहनों का होता है। प्रदूषण की समस्या सिर्फ अलग-अलग तरह की गाड़ियों से नहीं है, बल्कि सड़कों पर गाड़ियों की बढ़ती संख्या से भी है। ज्यादा गाड़ियां होने से ट्रैफिक जाम (भीड़भाड़) होता है और ट्रैफिक जाम से भी प्रदूषण बढ़ता है।

वायु प्रदूषण नियंत्रण के लिए दोहरी रणनीति अपनानी होगी। पहले तो इलेक्ट्रिक या पेट्रोल-डीजल से कम प्रदूषण वाले दूसरे वाहनों को अपनाना होगा और सड़कों पर गाड़ियों की कुल संख्या को कम करना होगा। जब 2000 के दशक की शुरुआत में दिल्ली ने सीएनजी को अपनाया, तो उसका मुख्य लक्ष्य सबसे ज्यादा प्रदूषण फैलाने वाले वाहन थे, जैसे कि बसें, टैक्सियां और ऑटो-रिक्शा। ये सार्वजनिक और व्यावसायिक वाहन किसी भी शहर खासकर दिल्ली में सबसे ज्यादा दूरी तय करते हैं। प्रदूषण का विज्ञान यह बताता है कि गाड़ी जितनी ज्यादा चलेगी, उतना ही ज्यादा प्रदूषण फैलाएगी।

Slow Murder Continues_Hindi.indd 139 16/07/25 11:25 AM

पुराने वाहनों को नए सीएनजी वाहनों से बदलने के लिए जो सरकारी सब्सिडी दी गई थी, उसका मुख्य लक्ष्य सार्वजनिक परिवहन प्रणाली को बेहतर बनाना था। इसका मतलब था कि लोगों को आने-जाने के लिए ज्यादा सुविधा मिले, न कि सिर्फ सड़कों पर और ज्यादा गाड़ियां आ जाएं।

दिल्ली की सीएनजी क्रांति की कहानी में कुछ गलतियां हुईं और ऐसी नीतिगत गलतियों को दोहराया नहीं जाना चाहिए, क्योंकि ये गलतियां साफ हवा के लिए किए गए प्रयासों को बेकार कर देती हैं और जनता के पैसे को बर्बाद करती हैं। सीएनजी क्रांति के बाद के 20 सालों में दिल्ली अपने सार्वजनिक परिवहन को उतना बेहतर नहीं कर पाई है कि वह सड़कों पर गाड़ियों की बढ़ती संख्या को रोक सके। दिल्ली में हर दिन लगभग 1,800 नए निजी वाहन बढ़ते हैं, जिनमें से 500 से ज्यादा निजी कारें होती हैं। पूरे देश में हर दिन 10,000 से ज्यादा निजी कारें सड़कों पर आती हैं। सड़कों पर इतनी ज्यादा गाड़ियां आने से नए फ्लाईओवर और सड़कों के जाल के बावजूद, हमें ट्रैफिक जाम में फंसना पड़ता है और गाड़ियों की गति कम हो जाती है। ट्रैफिक में बिताए गए घंटों और बढ़ते वायु प्रदूषण के बीच सीधा संबंध है, यह बात अब साबित हो चुकी है।

सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट के एक और अध्ययन में पता चला कि बसें भी उसी ट्रैफिक जाम में फंसी रहती थीं। बसों के लगातार देरी से चलने के कारण, लोग निजी वाहनों की तरफ जाने लगे, क्योंकि वे ज्यादा भरोसेमंद होते हैं। इससे बसों में यात्रियों की संख्या कम हो गई। दिल्ली मेट्रो, जिसकी अब बहुत अच्छी पहुंच है, वह भी नुकसान में है। इसका एक बड़ा कारण "लास्ट-माइल कनेक्टिविटी" की कमी है, यानी मेट्रो स्टेशन से घर या ऑफिस तक पहुंचने के लिए कोई आसान साधन न मिलना। साथ ही, मेट्रो की लागत और इससे जुड़ी परेशानियां भी एक कारण है। ■

Slow Murder Continues_Hindi.indd 140 16/07/25 11:25 AM

राष्ट्रीय प्राथमिकता

वायु प्रदूषण नियंत्रण के तमाम कारगर उपायों के बावजूद अब भी बहुत सी खामियां हैं जिन्हें बिना देरी दूर करने की आवश्यकता है

भारत में वायु प्रदूषण की समस्या बेहद गंभीर है, जिससे निपटने के लिए तुरंत राष्ट्रीय स्तर पर कदम उठाए जाने चाहिए। भारत में दशकों से हवा की गुणवत्ता को सुधारने के लिए कानून और नीतियां बनाई गई हैं। वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 और राष्ट्रीय परिवेशी वायु गुणवत्ता मानक (एनएएक्यूएस) जैसे कानून बहुत पहले से हैं। फिर भी देशभर में वायु गुणवत्ता सुधारने के लिए कोई स्पष्ट और ठोस कार्यनीति नहीं बनाई गई। अब तक सरकार ने सिर्फ अलग-अलग क्षेत्रों (जैसे उद्योग, वाहन, ऊर्जा आदि) के लिए उत्सर्जन को नियंत्रित करने के नियम बनाए हैं, लेकिन वायु प्रदूषण से निपटने के लिए किए गए इन उपायों को जोड़कर एक संपूर्ण और कार्यक्षम योजना नहीं बनाई गई है, जो पूरे देश में वायु गुणवत्ता के मानकों को सुनिश्चित कर सके।

भारत में वायु गुणवत्ता प्रबंधन के लिए स्पष्ट रणनीति न होने के कारण दशकों से इस पर बहस हो रही है कि हवा की गुणवत्ता के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए दुनिया के सबसे अच्छे तौर-तरीके कैसे अपनाए जाएं। अमेरिका और

Slow Murder Continues_Hindi.indd 141 16/07/25 11:25 AM

यूरोप जैसे कई देशों में इस तरह के दृष्टिकोण के लिए बने कानूनी ढांचे का अध्ययन किया गया। उदाहरण के तौर पर यूरोप में "एयर क्वालिटी डायरेक्टिव" नाम का एक नियम है। यह नियम बताता है कि हवा में अलग-अलग प्रदूषक (जैसे धूल-कण, गैसें) कितनी मात्रा में हो सकते हैं। साथ ही यह नियम यह भी बताता है कि इन सीमाओं का पालन करने के लिए कितनी छूट मिल सकती है और कितनी समय-सीमा में उन्हें पूरा करना है। यूरोपीय संघ के हर देश को उन क्षेत्रों और शहरी समूहों को तय करना होता है, जहां ये प्रदूषण की सीमाएं लागू होंगी। सदस्य देशों की यह पूरी जिम्मेदारी है कि तय समय-सीमा के बाद किसी भी क्षेत्र या शहरी समूह में प्रदूषण की सीमाएं पार न हों। इसी तरह अमेरिका में भी जिन इलाकों में राष्ट्रीय परिवेशी वायु गुणवत्ता मानक पूरे नहीं हुए थे और स्वच्छ वायु अधिनियम के नियमों का उल्लंघन किया गया था, उन्हें समय-सीमा के साथ हवा की गुणवत्ता सुधारने के लक्ष्य दिए गए। भारत को भी वायु गुणवत्ता प्रबंधन के लिए इसी तरह एक राष्ट्रीय ढांचे की जरूरत है, जिसमें नियमों का पालन सुनिश्चित करने की स्पष्ट रणनीति हो।

पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय (एमओईएफसीसी) ने जनवरी 2019 में राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम (एनसीएपी) शुरू किया। यह पहली बार है कि भारत सरकार ने हवा को साफ करने के लक्ष्य तय किए हैं। यह कार्यक्रम देशभर के उन 131 शहरों पर केंद्रित है, जहां हवा में धूल और अन्य कणों की मात्रा लगातार राष्ट्रीय परिवेशी वायु गुणवत्ता मानकों (एनएएक्यूएस) से ज्यादा रहती है। इन शहरों को "नॉन-अटेनमेंट सिटी" कहा जाता है। इन शहरों को 2017 के स्तर से 2024 तक हवा में प्रदूषित कणों की मात्रा को 20-30 प्रतिशत तक कम करना था। अब इस लक्ष्य को बदलकर 2019-20 के स्तर से 2025-26 तक 40 प्रतिशत की कमी करने का लक्ष्य रखा गया है। वायु गुणवत्ता में सुधार के लिए यह प्रदर्शन पर आधारित फंडिंग का भी पहला उदाहरण है। शहरों को हवा की गुणवत्ता सुधारने के लिए पैसे तभी मिलेंगे, जब वे वास्तव में सुधार करके दिखाएंगे।

हवा को साफ करने के लिए बनाई गई योजनाओं को पूरा करने के लिए सरकार ने बहुत सारा पैसा लगाया है। इस धन प्रवाह के तीन प्रमुख तरीके हैं। पहला राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम के तहत पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय (एमओईएफसीसी) की तरफ से 82 शहरों को सीधे दिया गया

Slow Murder Continues_Hindi.indd 142 16/07/25 11:25 AM

फंड। दूसरा, 15वें वित्त आयोग की तरफ से 10 लाख से अधिक आबादी वाले 42 शहरों और सात शहरी समूहों (एग्लोमेरेशन) को मिला अनुदान, जिसे मिलियन-प्लस सिटीज चैलेंज फंड भी कहा जाता है। तीसरा, अभिसरण (कन्वर्जेंस) फंडिंग, इसके तहत अलग-अलग सरकारी योजनाओं के लिए तय किए गए फंड को भी वायु प्रदूषण कम करने के लक्ष्यों के साथ जोड़ा जा रहा है। एमओईएफसीसी की 2023-24 की रिपोर्ट के अनुसार, वित्तीय वर्ष 2019-20 से 2025-26 तक 131 शहरों के लिए कुल 19,711 करोड़ रुपए तय किए गए हैं। इसमें से लगभग 3,172.00 करोड़ रुपए एनसीएपी के तहत 82 शहरों को मिले हैं और लगभग 16,539.00 करोड़ रुपए 15वें वित्त आयोग से अनुदान के तहत 42 मिलियन-प्लस शहरों और सात शहरी समूहों को मिले हैं।

शुरुआत में 102 शहरों को “नॉन-अटेनमेंट सिटी” के रूप में चुना गया था। बाद में इस सूची में 22 और शहर जोड़े गए। इनमें से 42 मिलियन-प्लस शहर या बड़े शहरी समूह हैं। इन 42 मिलियन-प्लस शहरों में से 34 शहर एनसीएपी की “नॉन-अटेनमेंट सिटी” की सूची में शामिल हैं। इसके साथ ही, 8 और नए मिलियन-प्लस शहरों को भी कार्यक्रम में शामिल किया गया, हालांकि वे पहले “नॉन-अटेनमेंट सिटी” की लिस्ट में नहीं थे। बाद में आसनसोल और रानीगंज को मिलाकर एक इकाई ही मान लिया गया जिसके परिणामस्वरूप “नॉन-अटेनमेंट सिटीज” की संख्या 131 हो गई। 8 नए मिलियन-प्लस शहरों में फरीदाबाद, मेरठ, चेन्नई, वसई-विरार, जबलपुर, रांची, जमशेदपुर और राजकोट शामिल हैं। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने एनसीएपी के तहत 82 शहरों को हर साल पीएम 10 की मात्रा में 3-15 प्रतिशत की कमी करने का लक्ष्य दिया है। इसका अंतिम लक्ष्य 2026 तक कुल 40 प्रतिशत की कमी लाना है। 15वें वित्त आयोग से फंड पाने वाले 49 शहरों को भी हर साल पीएम 10 की मात्रा में 15 प्रतिशत की कमी करने और “अच्छी वायु गुणवत्ता वाले दिनों” की संख्या बढ़ाने का लक्ष्य दिया गया है। “अच्छी वायु गुणवत्ता वाले दिन” वे होते हैं, जब वायु गुणवत्ता सूचकांक (एक्यूआई) 200 से कम होता है।

“राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम” (एनसीएपी) के तहत मिलने वाला पैसा राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों (एसपीसीबी) के जरिए संबंधित सरकारी विभागों तक पहुंचता है। 15वें वित्त आयोग से मिलने वाला पैसा पहले राज्य के वित्त मंत्रालयों तक जाता है और फिर वहां से शहरी स्थानीय निकायों (यूएलबी)

Slow Murder Continues_Hindi.indd 143 16/07/25 11:25 AM

तक पहुंचता है। इन दोनों तरह की फंडिंग का मिलना शहरों के प्रदर्शन पर निर्भर करता है। हालांकि प्रदर्शन की जांच के तरीके समय के साथ बदलते रहे हैं, लेकिन अभी शहरों को हवा में पीएम 10 (पार्टिकुलेट मैटर 10) के स्तर में सुधार दिखाना जरूरी है। इसके अलावा, 15वें वित्त आयोग से पैसा पाने वाले शहरों को "अच्छी हवा वाले दिनों" (जब वायु गुणवत्ता सूचकांक 200 से कम हो) की संख्या में भी बढ़ोतरी दिखानी होगी। यह पैसा एक अतिरिक्त अनुदान (सप्लीमेंटल ग्रांट) के रूप में दिया जाता है, जो शहर की कार्य योजनाओं और सूक्ष्म कार्य योजनाओं में स्वीकृत कामों के लिए होता है। शहरों से यह भी उम्मीद की जाती है कि वे उन अन्य सरकारी योजनाओं और कार्यक्रमों में हुई प्रगति की रिपोर्ट करें, जिन्हें केंद्र या राज्य सरकारें फंड करती हैं। इन्हें "अभिसरण फंडिंग" (कन्वर्जेंस फंडिंग) कहा जाता है। इसका मतलब यह है कि हवा को साफ करने के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए सभी संबंधित क्षेत्रीय योजनाओं को एक साथ मिलकर काम करना चाहिए।

2024 तक भारत के 24 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों ने अपनी-अपनी राज्य कार्य योजनाएं बना ली थीं। साथ ही 131 शहरों ने भी अपनी शहर कार्य योजनाएं तैयार कर ली हैं। राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय एक ऐसी कार्य योजना बनाना चाहता है, जिसमें विभिन्न मंत्रालयों की योजनाओं और कार्यक्रमों को एक साथ जोड़ा जा सके। इस राष्ट्रीय योजना में सात प्रमुख मंत्रालय शामिल होंगे, जिनमें विद्युत मंत्रालय, सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय, आवास और शहरी कार्य मंत्रालय, नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय, भारी उद्योग मंत्रालय और स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय शामिल हैं।

राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम (एनसीएपी) के प्रदर्शन का आकलन करने के लिए 2024 में सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट (सीएसई) ने प्रदर्शन-आधारित योजना और फंडिंग की एक त्वरित समीक्षा की। इसका उद्देश्य यह समझना था कि कार्यक्रम में क्या कमियां हैं और इसे और भी मजबूत और बड़ा बनाने के लिए क्या चाहिए। पूरे देश में फैले वायु प्रदूषण और उससे जुड़ी सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्याओं को देखते हुए इस कार्यक्रम को राष्ट्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर और मजबूत करने की जरूरत है। ऐसा

Slow Murder Continues_Hindi.indd 144 16/07/25 11:25 AM

करने से यह कार्यक्रम और ज्यादा प्रभावी ढंग से लागू हो पाएगा, अलग-अलग क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर काम करने के लिए ज्यादा संसाधन जुटाए जा सकेंगे। लगातार काम जारी रखने और उसके लिए पैसा जुटाने के लिए यह जरूरी है कि कार्यक्रम के अभी चल रहे चरण से सीखा जाए। यानी, जो काम हो चुका है, उससे क्या सीखा और भविष्य में क्या बेहतर कर सकते हैं।

पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम के तहत फंडिंग के अगले चरण के लिए राज्य सरकारों के साथ बातचीत शुरू कर दी है। मंत्रालय एनसीएपी कार्यक्रम के तहत एक "वायु गुणवत्ता चुनौती कोष" (एयर क्वालिटी चैलेंज फंड) स्थापित करने का प्रस्ताव कर रहा है, जिसे शहरों को उनकी आबादी और प्रदूषण भार के आधार पर आवंटित किया जाएगा। इस योजना के तहत, शहरों को वायु प्रदूषण कम करने के लिए कुछ खास नियमों और कार्यों को पूरा करने की प्रतिबद्धता दिखानी पड़ सकती है। फंड का पैसा हर साल इस आधार पर दिया जाएगा कि प्रदूषण कम करने के लिए जो लक्ष्य तय किए गए थे, उनमें शहरों का प्रदर्शन कैसा रहा। नए मानदंड में कुछ अतिरिक्त "सुधार-आधारित चुनौतियां" भी होंगी। यानी, शहरों को प्रदूषण कम करने के साथ कुछ सुधार भी लाने होंगे। इसलिए, भविष्य में किसी भी फंडिंग पहल के लिए अब तक के अनुभव से सीख लेना बहुत जरूरी है।

शहरों को स्वच्छ हवा के लिए काफी पैसा दिया गया है, लेकिन वे इस पैसे का उतना इस्तेमाल नहीं कर पा रहे हैं, जितना करना चाहिए था। राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम वाले शहरों में पैसे का उपयोग 15वें वित्त आयोग से फंड पाने वाले शहरों की तुलना में बहुत कम है। मई 2024 में हुई "राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम कार्यान्वयन समिति" की 16वीं बैठक की रिपोर्ट के अनुसार, वित्तीय वर्ष 2019-20 से 3 मई 2024 तक, कुल 131 शहरों को एनसीएपी और 15वें वित्त आयोग दोनों योजनाओं के तहत लगभग 10,566.47 करोड़ रुपए दिए गए थे। लेकिन कुल मिलाकर फंड का उपयोग उम्मीद से कम रहा। 82 एनसीएपी शहरों ने जारी किए गए 1,615.47 करोड़ रुपए में से केवल 831.42 करोड़ रुपए (यानी सिर्फ 51 प्रतिशत) का उपयोग किया था। वहीं, 42 मिलियन-प्लस शहरों और 7 शहरी समूहों (जो 15वें वित्त आयोग से फंड पाते हैं) ने जारी किए गए 8,951 करोड़ रुपए में से 5,974.73 करोड़ रुपए

Slow Murder Continues_Hindi.indd 145 16/07/25 11:25 AM

का उपयोग किया, जो लगभग 67 प्रतिशत था। ये आंकड़े दिखाते हैं कि वायु प्रदूषण कम करने के लिए उठाए जा रहे कदमों का पैमाना और गति अभी तक संतोषजनक नहीं है। स्पष्ट रूप से उपलब्ध फंड का उपयोग लक्ष्यों से कम हो रहा है, खासकर छोटे एनसीएपी कस्बों में। इसलिए, यह समझना बहुत जरूरी है कि पैसा खर्च करने की प्रक्रिया क्यों धीमी है, पैसा कैसे खर्च किया जा रहा है और योजनाओं को बनाने और लागू करने में क्या-क्या कमियां हैं।

प्रदर्शन-आधारित फंडिंग को संभव बनाने के लिए केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) ने एक निगरानी और रिपोर्टिंग व्यवस्था बनाई है, ताकि यह जाना जा सके कि पैसे का उपयोग सही तरीके से हो रहा है या नहीं। यह व्यवस्था राष्ट्रीय हरित अधिकरण (एनजीटी) के निर्देश पर भी बनाई गई है। सीपीसीबी ने प्रगति को ट्रैक करने के लिए विस्तृत क्षेत्र-वार संकेतक प्रदान किया है। सभी संबंधित शहरों से अपेक्षा की जाती है कि वे हर तिमाही में इनमें से प्रत्येक संकेतक पर हुई प्रगति की रिपोर्ट करें। ये संकेतक कई क्षेत्रों को कवर करते हैं, जिनमें वायु गुणवत्ता निगरानी, प्रदूषण स्रोत का आकलन, वायु गुणवत्ता पर लोगों को जागरूक करना, सड़क धूल, निर्माण और विध्वंस (सीएंडडी) कचरा, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और उद्योगों के साथ ही वाहनों से होने वाला प्रदूषण भी शामिल है। वाहन प्रदूषण में सड़क पर चल रहे पुराने वाहन, सार्वजनिक परिवहन, बिना मोटर वाले वाहन (जैसे साइकिल), पार्किंग और माल ढोने वाले वाहन शामिल हैं। इन सभी क्षेत्रों को मिलाकर 258 संकेतक बनाए गए हैं, जिन्हें अलग-अलग श्रेणियों में बांटा गया है। जैसे, वायु गुणवत्ता से संबंधित क्षमता निर्माण, निगरानी नेटवर्क और स्रोत विभाजन के लिए 12 संकेतक तय किए गए हैं। इसी तरह, जन जागरुकता के लिए 7, सड़कों की धूल के लिए 23, निर्माण और ध्वस्तीकरण के लिए 13, वाहनों से संबंधित 42 संकेतक और उद्योगों के लिए 119 संकेतक तय किए गए हैं। वायु गुणवत्ता डेटा के लिए 9 संकेतक हैं, जबकि अपशिष्ट और बायोमास के लिए 33 संकेतक बनाए गए हैं, जिसमें नगरपालिका का ठोस अपशिष्ट भी शामिल है।

शहरों को अपने कार्यों की प्रगति की रिपोर्ट सीधे पोर्टल फॉर रेगुलेशन ऑफ एयर पॉल्यूशन इन नॉन अटेनमेंट सिटीज (पीआरएएनए) पोर्टल पर देनी होती है, जिसे केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) ने बनाया है। पीआरएएनए एक ऑनलाइन पोर्टल है, जहां वे शहर जिन्हें लगातार खराब

Slow Murder Continues_Hindi.indd 146 16/07/25 11:25 AM

हवा के कारण "नॉन-अटेनमेंट सिटी" कहा गया है, उन्हें यह बताना होता है कि उन्होंने वायु प्रदूषण को कम करने के लिए क्या-क्या काम किए हैं और कितना सुधार हुआ है। पीआरएएनए एक "सिंगल-विंडो प्लेटफॉर्म" है यानी एक ही जगह से सारा काम हो जाता है। यह शहर-वार प्रदूषण के स्तर और प्रदूषण कम करने के लिए उठाए गए कदमों की वास्तविक समय की जानकारी देता है। राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (एसपीसीबी) और शहरी स्थानीय निकायों (यूएलबी) के पास पीआरएएनए पोर्टल तक सीधी पहुंच है, ताकि वे अपनी रिपोर्ट जमा कर सकें। पीआरएएनए पोर्टल में जो जानकारी भरी जाती है, वही शहरों के प्रदर्शन मूल्यांकन का आधार बनती है।

हर तीन महीने में शहरों को पीआरएएनए पोर्टल पर अपनी रिपोर्ट देनी होती है। इसमें उन्हें कई चीजें बतानी पड़ती हैं, जैसे उन्हें जो लक्ष्य दिए गए थे, उन सभी के लिए उन्होंने क्या कार्रवाई की है, प्रत्येक संकेतक के मुकाबले उन्होंने कितनी प्रगति की है, अगर लक्ष्य से कोई विचलन हुआ है, तो उसका कारण बताना होता है, हर काम को करने के लिए कितना फंड आवंटित किया गया, कितना जारी हुआ, कितना इस्तेमाल हुआ और भविष्य में कितने फंड की जरूरत है, इसका पूरा ब्यौरा देना होता है। शहरों को अपनी रिपोर्ट के साथ सबूत, जानकारी और सहायक दस्तावेज भी देने होते हैं, ताकि उनके द्वारा की गई कार्रवाई का सत्यापन हो सके। यह पूरी प्रक्रिया बहुत विस्तृत और जटिल है, जिसके लिए शहरों को एक व्यवस्थित और संगठित तरीके से काम करने की जरूरत है।

राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम (एनसीएपी) के तहत शहरों को पैसा तभी मिलता है जब वे हवा में पीएम 10 के स्तर में सुधार करके दिखाते हैं। पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने 2022 में इसके समानांतर एक और कार्यक्रम शुरू किया, जिसका नाम है "स्वच्छ वायु सर्वेक्षण" (एसवीएस)। इस सर्वेक्षण में शहरों को उनके द्वारा लागू किए गए नीतिगत उपायों के आधार पर रैंक किया जाता है। शहरों को उनकी आबादी के हिसाब से तीन श्रेणियों में बांटा गया है- 10 लाख से अधिक आबादी वाले शहर, 3 लाख से 10 लाख के बीच आबादी वाले शहर और 3 लाख से कम आबादी वाले शहर। शहरों को कई क्षेत्रों में लागू की गई नीतियों के आधार पर अंक दिए जाते हैं, जैसे बायोमास, नगरपालिका का ठोस कचरा, सड़क पर उड़ने वाली धूल, निर्माण और विध्वंस

Slow Murder Continues_Hindi.indd 147 16/07/25 11:25 AM

से निकलने वाली धूल, वाहन और औद्योगिक उत्सर्जन, अन्य उत्सर्जन, जन जागरूकता और हवा में पीएम 10 की मात्रा में सुधार।

एनसीएपी के सभी शहरों का मूल्यांकन "स्वच्छ वायु सर्वेक्षण" (एसवीएस) के तहत भी किया जाता है। यह मूल्यांकन पीआरएएनए पोर्टल पर शहरों/शहरी स्थानीय निकायों द्वारा हर साल दी गई जानकारी और एक विशेष स्कोरिंग सिस्टम के आधार पर होता है। एसवीएस में शहरों को रैंक करने के लिए, हर क्षेत्र (जैसे उद्योग, वाहन) को कुछ वेटेज (महत्व) दिए गए हैं, और उनके लिए कुछ मात्रात्मक प्रदर्शन लक्ष्य (यानी, अंकों में मापने लायक लक्ष्य) तय किए गए हैं। यह मूल्यांकन ढांचा बहुत जरूरी है, क्योंकि यह स्वच्छ हवा के लिए किए जा रहे कामों को गति देता है, कार्रवाई के दायरे को बढ़ाता है और नियमों का पालन सुनिश्चित करता है। हालांकि ये मूल्यांकन ढांचे सही दिशा में उठाए गए कदम हैं, फिर भी कुछ गंभीर सवाल हैं। शहरों में प्रगति को मापने के लिए किन मापदंडों का उपयोग किया जा रहा है? और इन मापदंडों का वास्तविक वायु गुणवत्ता सुधार पर क्या असर होगा?

एनसीएपी 15वें वित्त आयोग और स्वच्छ वायु सर्वेक्षण (एसवीएस) जैसे अलग-अलग कार्यक्रमों के तहत शहरों का मूल्यांकन अलग-अलग मापदंडों के आधार पर किया जाता है। यह एक चुनौती हो सकती है, क्योंकि एकीकृत दृष्टिकोण की कमी है। रैंकिंग और प्रदर्शन मूल्यांकन कितना प्रभावी होगा, यह मूल्यांकन की विधि और प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति को ट्रैक करने के लिए तय किए गए बेंचमार्क पर निर्भर है। ये बेंचमार्क ही तय करते हैं कि कौन से काम किए जाएंगे, उनका दायरा क्या होगा और वे कितनी बड़ी मात्रा में किए जाएंगे, राज्यों की क्षमता यानी वे ऐसी योजनाएं बना पा रहे हैं या नहीं, जिनसे वास्तव में फर्क पड़ सके, सभी प्रमुख क्षेत्रों में प्राथमिकता वाले कामों का समान रूप से प्रसार हो रहा है और वे गहरे स्तर पर लागू हो रहे हैं, हवा की गुणवत्ता में सुधार को किस तरीके से ट्रैक किया जा रहा है।

सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट ने हाल की समीक्षा ने कुछ बड़ी कमियां बताई हैं। भले ही राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम (एनसीएपी) की योजना पीएम 10 और पीएम 2.5 दोनों तरह के कणों को कम करने की थी, लेकिन असल में केवल पीएम 10 की मात्रा को ही प्रदूषण कम करने के प्रदर्शन के लिए देखा जा रहा है। पीएम 10 धूल के बड़े कण होते हैं और

Slow Murder Continues_Hindi.indd 148 16/07/25 11:25 AM

ज्यादातर हवा से उड़ने वाली धूल से आते हैं। लेकिन, पीएम 2.5 पीएम 10 से भी छोटे कण होते हैं और ये ज्यादातर पेट्रोल, डीजल, कोयला जलाने जैसे दहन स्रोतों से निकलते हैं। ये बहुत ज्यादा हानिकारक होते हैं, क्योंकि ये फेफड़ों में गहराई तक चले जाते हैं, खून में मिल जाते हैं और शरीर के लगभग सभी अंगों को नुकसान पहुंचाते हैं। दुख की बात है कि पीएम 2.5 की तरफ ध्यान नहीं दिया जा रहा है। शुरुआत में पीएम 10 पर ध्यान देने का एक कारण यह था कि 131 "नॉन-अटेनमेंट सिटीज" में पीएम 2.5 को मापने के लिए पर्याप्त उपकरण नहीं थे। हालांकि, अब स्थिति बहुत बदल गई है। 15वें वित्त आयोग से फंड पाने वाले सभी मिलियन-प्लस शहरों (दस लाख से ज्यादा आबादी वाले) के पास अब पीएम 2.5 मॉनिटर हैं और वे तुरंत पीएम 2.5 से जुड़े प्रदर्शन-आधारित फंड के लिए योग्य हो सकते हैं।

पीएम 10 पर ज्यादा ध्यान देने से एनसीएपी और 15वें वित्त आयोग से मिलने वाले फंड का इस्तेमाल गलत तरीके से हो रहा है। एनसीएपी के तहत खर्च की जांच से पता चला है कि कुल फंड का 64 प्रतिशत हिस्सा सड़क बनाने और चौड़ा करने, गड्ढों की मरम्मत करने, पानी का छिड़काव करने और मशीनी स्वीपर खरीदने जैसे कामों में लगा है। ये सब काम ज्यादातर सड़क की धूल को कम करने के लिए होते हैं (जो पीएम 10 का मुख्य स्रोत हैं)। इसके मुकाबले, उन स्रोतों पर बहुत कम पैसा खर्च किया गया है, जिनसे ज्यादा हानिकारक प्रदूषण निकलता है (यानी दहन स्रोत जो पीएम 2.5 पैदा करते हैं)। पराली जलाने जैसे बायोमास (जैव पदार्थ) को नियंत्रित करने के लिए केवल 14.51 प्रतिशत फंड खर्च किया गया है। वाहन से होने वाले प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए 12.63 प्रतिशत और औद्योगिक प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए सिर्फ 0.61 प्रतिशत फंड का ही इस्तेमाल किया गया है। इसका मतलब है कि फंड का मुख्य ध्यान केवल सड़क की धूल को कम करने पर है। इतना ज्यादा पैसा सिर्फ सड़क की धूल को नियंत्रित करने के लिए ही लगा देना, दहन स्रोतों से निकलने वाले जहरीले प्रदूषण को नियंत्रित करने के प्रयासों को अधूरा और कम प्रभावी बना सकता है।

सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट के आकलन के अनुसार, कचरा जलाने और वाहनों से होने वाले प्रदूषण जैसे कुछ दहन स्रोतों को आंशिक रूप से "अभिसरण फंडिंग" (कन्वर्जेंस फंडिंग) के जरिए निपटाया जा रहा

Slow Murder Continues_Hindi.indd 149 16/07/25 11:25 AM

है। अभिसरण फंडिंग वह पैसा है जो अलग-अलग क्षेत्रीय योजनाओं (जैसे कचरा प्रबंधन, शहरी विकास, ईवी को बढ़ावा देने) के लिए तय किया गया है और इसे वायु प्रदूषण कम करने के लक्ष्यों के साथ जोड़ा जा रहा है। इसके तहत, स्वच्छ भारत मिशन (एसबीएम 2.0), अमृत, स्मार्ट सिटी कार्यक्रम, एफएएमई-II (इलेक्ट्रिक वाहनों के लिए) जैसी योजनाओं को फंडिंग की जाती है। यह तरीका महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह अलग-अलग क्षेत्रों के कामों और खर्चों को स्वच्छ हवा के लक्ष्यों से जोड़ता है। लेकिन, एनसीएपी और 15वें वित्त आयोग के तहत जो विशेष फंड दिया जा रहा है, उसे परिवहन, उद्योग, कचरा प्रबंधन और ठोस ईंधन के उपयोग जैसे ज्यादा प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में और अधिक उपायों से जोड़ने की जरूरत है। कहने का मतलब है कि इस समर्पित फंड का इस्तेमाल उन क्षेत्रों पर ज्यादा होना चाहिए, जहां से सबसे ज्यादा और हानिकारक प्रदूषण होता है।

शहरों में किए गए ज्यादातर अध्ययनों (जो ये बताते हैं कि हवा में प्रदूषण कहां से आता है) में सामने आया है कि सड़क की धूल वायु प्रदूषण का एक बड़ा हिस्सा होती है। यह धूल जहरीले पदार्थों को भी अपने साथ ले जा सकती है। इसलिए, सड़क की धूल को नियंत्रित करना जरूरी तो है, लेकिन यह प्रदूषण नियंत्रण के पूरे प्रयासों पर हावी नहीं होना चाहिए। यानी, सारा ध्यान सिर्फ धूल कम करने पर ही नहीं लगा देना चाहिए। प्रदूषण के स्रोत और उनकी मात्रा को समझने वाले अध्ययनों के परिणामों को वैज्ञानिक रूप से और गहराई से समझना भी जरूरी है।

वायु प्रदूषण से जुड़े विज्ञान ने अब काफी तरक्की कर ली है। 2015 में स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय की एक रिपोर्ट में कहा गया था कि हवा में प्रदूषण की कुल मात्रा (एंबिएंट कंसंट्रेशन) सार्वजनिक स्वास्थ्य जोखिम को पूरी तरह से नहीं बताती है। यह भी नहीं बताती कि कोई व्यक्ति कितने प्रदूषण के संपर्क में आया और उसके स्वास्थ्य पर क्या असर पड़ा। स्वास्थ्य जोखिम इस बात से तय होता है कि कोई व्यक्ति प्रदूषण के स्रोत के कितना करीब है, वह कितने समय तक प्रदूषण के संपर्क में रहा और उसने कितने प्रदूषक सांस के साथ लिए। इसलिए केवल हवा में प्रदूषण की मात्रा को नियंत्रित करना ही काफी नहीं है, बल्कि लोगों के प्रदूषण के संपर्क में आने को भी नियंत्रित करना बहुत जरूरी है। अमेरिका के हेल्थ इफेक्ट इंस्टीट्यूट

Slow Murder Continues_Hindi.indd 150 16/07/25 11:25 AM

जैसे अध्ययनों से पता चला है कि अलग-अलग प्रकार के कणों (पार्टिकुलेट मैटर) का स्वास्थ्य पर अलग-अलग असर होता है। उदाहरण के लिए, कोयला और डीजल जलाने से निकलने वाले कण हवा से उड़ने वाली धूल से ज्यादा हानिकारक होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी बहुत छोटे कणों (टिनियर पार्टिकल्स) को नियंत्रित करने की आवश्यकता पर जोर दिया है।

भविष्य में नीतिगत उपायों का पीएम 10 के स्तर पर क्या असर पड़ रहा है, यह पता लगाना मुश्किल होगा, क्योंकि पीएम 10 पर कई बाहरी कारकों का भी बहुत ज्यादा असर होता है। जैसे, शहर के बाहर से हवा से उड़कर आने वाली धूल, खेतों से उड़ने वाली ढीली मिट्टी, धूल भरी आंधी। हालांकि, पीएम 10 ज्यादातर कुछ खास धूल वाले स्रोतों से निकलता है, जैसे खनन (माइनिंग) और निर्माण कार्य (कंस्ट्रक्शन)। इसलिए, पीएम 10 की निगरानी करते समय हमें ज्यादातर उन्हीं स्रोतों पर ध्यान देना चाहिए, जहां से यह धूल निकलती है। अभी विश्व स्वास्थ्य संगठन भी अलग-अलग तरह की धूल और धूल भरी घटनाओं (जैसे आंधी) से निपटने और उनका हिसाब रखने के तरीकों का मूल्यांकन कर रहा है।

राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम (एनसीएपी) के तहत जो फंड प्रदर्शन के आधार पर दिया जाता है, उसके लिए पीएम 2.5 को मानक (बेंचमार्क) बनाना चाहिए। पीएम 2.5 हवा की गुणवत्ता में सुधार को मापने के लिए स्वास्थ्य की दृष्टि से ज्यादा महत्वपूर्ण संकेतक है। एक तुरंत अपनाई जाने वाली रणनीति के तौर पर सभी मिलियन-प्लस शहरों (दस लाख से ज्यादा आबादी वाले) का प्रदर्शन मूल्यांकन पीएम 2.5 से जोड़ा जाना चाहिए। इन सभी शहरों में पीएम 2.5 डेटा इकट्ठा करने के लिए रियल-टाइम मॉनिटर लगे हुए हैं, जो तुरंत जानकारी देते हैं। यही कारण है कि इन शहरों को एक्यूआई (वायु गुणवत्ता सूचकांक) के अनुसार अच्छे वायु गुणवत्ता वाले दिनों की संख्या में वृद्धि भी दिखानी जरूरी है, क्योंकि एक्यूआई भी रियल-टाइम डेटा पर आधारित होता है। विभिन्न शहरों से मिले पीएम 2.5 स्रोत विभाजन अध्ययनों की समीक्षा से पता चला है कि उत्तरी शहरों में पीएम 2.5 की मात्रा में एक बड़ा योगदान सड़क पर उड़ने वाली धूल का हो सकता है। लेकिन, ज्यादातर शहरों में, पीएम 2.5 के स्तर में दहन स्रोतों (उद्योग, वाहन और कचरा जलाना सहित) का योगदान काफी ज्यादा होता है।

नाइट्रोजन ऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड और अन्य गैसों से बनने वाले द्वितीयक प्रदूषकों का हिस्सा भी उतना ही महत्वपूर्ण है। ये सीधे नहीं निकलते, बल्कि हवा में अन्य गैसों के मिलने से बनते हैं। सर्दियों में जब ज्यादातर शहरों में प्रदूषण बहुत बढ़ जाता है तो सड़क की धूल का हिस्सा काफी कम हो जाता है। लेकिन, गाड़ी चलाने, कूड़ा जलाने आदि जैसे दहन स्त्रोतों से निकलने वाला प्रदूषण नाटकीय रूप से बढ़ जाता है। कुल पीएम 2.5 प्रदूषण में द्वितीयक कणों का हिस्सा काफी ज्यादा हो सकता है। उदाहरण के लिए दिल्ली में सर्दियों में यह 30 प्रतिशत तक पहुंच सकता है। अब सरकार को अपना ध्यान पीएम 2.5 पर केंद्रित करना चाहिए ताकि उद्योग, वाहन, खुले में कचरा जलाने, खाना पकाने के लिए ठोस ईंधन का इस्तेमाल करने, भस्मीकरण (इंसिनरेशन), डीजी सेट (जनरेटर) जैसे दहन स्त्रोतों से होने वाले उत्सर्जन को कम किया जा सके। जब शहरों के लिए पीएम 2.5 (सूक्ष्म कणों) को घटाने का लक्ष्य तय किया जाता है, तो इसका फायदा सिर्फ उसी शहर को नहीं, बल्कि पूरे क्षेत्र और “एयरशेड” को मिलता है। यह एक अंतरराष्ट्रीय मान्यता प्राप्त अच्छी रणनीति है। पीएम 2.5 और सेकेंडरी पार्टिकुलेट मैटर (जो हवा में रासायनिक क्रियाओं से बनते हैं) पर न सिर्फ शहर के भीतर के स्त्रोतों का असर होता है, बल्कि दूसरे शहरों या राज्यों से बहकर आई प्रदूषित हवा का भी असर पड़ता है। इसलिए, सिर्फ किसी एक शहर का प्रयास काफी नहीं है। जरूरी है कि शहरों और राज्यों की योजनाएं आपस में जुड़ी हुई हों और स्थानीय और क्षेत्रीय स्तर पर वायु गुणवत्ता सुधार के लक्ष्य एक साथ पूरे किए जाएं।

भविष्य में हवा की गुणवत्ता मापने के लिए ज्यादातर काम “रियल-टाइम मॉनिटरिंग” के जरिए होगा। यह स्थिति एक अच्छा मौका देती है कि सभी शहरों में हवा की गुणवत्ता में हुई प्रगति को मापने के लिए पीएम 2.5 को ही मुख्य मानक (बेंचमार्क) बनाया जाए। लेकिन, अगर इसे अभी ठीक से नहीं तय किया गया तो हवा साफ करने पर हो रहा काफी सारा खर्च और प्रयास उन बहुत जरूरी प्रदूषण स्त्रोतों से भटक जाएगा, जिनसे सबसे ज्यादा जहरीला धुआं निकलता है, जैसे उद्योग और वाहन। यानी अगर हमने पीएम 2.5 को सही तरीके से केंद्र में नहीं रखा, तो हमारी योजनाएं असली प्रदूषण स्त्रोतों पर असर नहीं डाल पाएंगी और संसाधनों का गलत इस्तेमाल होगा।

Slow Murder Continues_Hindi.indd 152 16/07/25 11:25 AM

कुछ शहरों ने सैक्टोरल एक्शन (जैसे- वाहनों, उद्योग, कूड़ा प्रबंधन पर कार्रवाई) को लेकर अच्छा काम किया है और एसवीएस (स्वच्छ वायु सर्वेक्षण) में अच्छी रैंक पाई है। लेकिन वास्तविक वायु गुणवत्ता, खासकर पीएम 10 को कम करने के मामले में यही शहर एनसीएपी (राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम) और 15वें वित्त आयोग के मूल्यांकन में खराब प्रदर्शन कर रहे हैं। यह साबित करने का कोई पक्का तरीका नहीं है कि जिन शहरों ने वायु प्रदूषण कम करने के लिए कदम उठाए उन्होंने वाकई में पीएम 10 (कणीय प्रदूषण) के स्तर को कम किया या नहीं। एक तरफ एनसीएपी और 15वां वित्त आयोग यह देखते हैं कि हवा में पीएम 10 की मात्रा कितनी घटी, दूसरी तरफ एसवीएस (स्वच्छ वायु सर्वेक्षण) यह देखता है कि शहरों ने कौन-कौन सी नीतियां लागू कीं और उनमें कितनी कार्रवाई थी। लेकिन, जब इन दोनों को तुलना करते हैं तो यह जरूरी नहीं कि जिन शहरों ने ज्यादा कार्रवाई की वहां पीएम 10 वाकई कम हुआ हो। इसका मतलब है कि कोई शहर योजना और कागजी कार्रवाई में आगे हो सकता है (एसवीएस में अच्छा स्कोर), लेकिन अगर हवा की गुणवत्ता में सुधार नहीं हुआ (पीएम 10 नहीं घटा) तो वह एनसीएपी या 15वें वित्त आयोग में नीचे रह जाता है। उदाहरण के लिए, 2022-23 में आगरा, दिल्ली, गाजियाबाद, मेरठ और जबलपुर ने 10 लाख से अधिक आबादी वाले शहरों ने एसवीएस के तहत अच्छा प्रदर्शन किया (यानी नीतिगत उपाय अच्छे से लागू किए)। लेकिन, पीएम 10 कम करने के मामले में एनसीएपी और 15वें वित्त आयोग श्रेणी में उनका प्रदर्शन खराब रहा। खासकर दिल्ली, जिसने एसवीएस में नीतिगत उपायों को लागू करने के लिए 9वां स्थान प्राप्त किया, वहीं एनसीएपी मूल्यांकन में पीएम 10 के स्तर में सुधार न करने के कारण शून्य अंक के साथ सबसे नीचे था।

यह विरोधाभास 0.3 से 10 लाख आबादी वाले शहरों में भी दिखाई देता है। अमरावती, गुंटूर और राजामहेंद्रवरम ने एसवीएस के तहत (कार्रवाई करने में) सबसे अच्छा प्रदर्शन किया, लेकिन एनसीएपी मूल्यांकन में वे पीएम 10 सुधार न करने के कारण सबसे नीचे रहे और उन्हें शून्य अंक मिले। इसी तरह, 3 लाख से कम आबादी वाले कला अंब, अंगुल और तालचर जैसे छोटे शहरों ने एसवीएस के तहत (कार्रवाई करने में) शीर्ष स्थान प्राप्त किया, लेकिन एनसीएपी श्रेणी में वे सबसे नीचे रहे। हालांकि, ऐसे कई शहर भी हैं,

Slow Murder Continues_Hindi.indd 153 16/07/25 11:25 AM

जिन्होंने एसवीएस और एनसीएपी/15वें वित्त आयोग दोनों कार्यक्रमों के तहत बहुत अच्छा प्रदर्शन किया है। 2022-23 में 10 लाख से अधिक आबादी वाले इंदौर, श्रीनगर, भोपाल और त्रिची ने एसवीएस और एनसीएपी/15वें वित्त आयोग दोनों में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया। 0.3 से 10 लाख आबादी वाले मुरादाबाद, फिरोजाबाद, उज्जैन और बरेली एसवीएस और एनसीएपी दोनों में शीर्ष पर रहे। 3 लाख से कम आबादी वाले छोटे शहर परवाणू और रायबरेली एसवीएस और एनसीएपी दोनों मूल्यांकनों में शीर्ष पर रहे।

दूसरी ओर, पीएम 10 के सालाना स्तर में बहुत ज्यादा बदलाव आ सकता है और इसका बड़ा कारण मौसम संबंधी कारक होते हैं। धूल भरी आंधी या हवा से उड़ने वाली अन्य धूल के कारण पीएम 10 का स्तर कम या ज्यादा हो सकता है। इसलिए, पीएम 10 के स्तर में बदलाव को देखकर यह कहना मुश्किल है कि उद्योग, परिवहन, कचरा और ठोस ईंधन जैसे प्रमुख क्षेत्रों में की गई कार्रवाइयों का इस पर कितना असर हुआ है। पीएम 10 में सालाना बदलाव पर मौसम, धूल भरी आंधी और लू (हीटवेव) का बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ता है। इसलिए, यह देखना बहुत जरूरी है कि प्रदूषण को प्रभावी ढंग से कम करने के लिए किन खास क्षेत्रों में कितने बड़े पैमाने पर और किस तरह की कार्रवाई की जरूरत है। इस बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं है कि शहरों और बड़े क्षेत्रों में नीतिगत उपाय कितने बड़े पैमाने पर और कितनी गहराई से लागू किए गए हैं, ताकि यह समझा जा सके कि हवा की गुणवत्ता में सुधार क्यों और कैसे हो रहा है। अगर यह जानकारी नहीं जुटाई गई तो यह खतरा बना रहता है कि वायु गुणवत्ता में जो सुधार दिख रहा है, उसका गलत श्रेय नीतियों को मिल जाए, जबकि असल में वह मौसमी बदलावों की वजह से हुआ हो। इसलिए वायु गुणवत्ता में हो रहे बदलावों के पीछे कौन किन कार्रवाइयों का योगदान है, उनके पैमाने और प्रकृति को स्पष्ट रूप से बताना जरूरी है।

वर्तमान में प्रदूषण नियंत्रण के लिए किए जा रहे कामों का ज्यादा ध्यान धूल नियंत्रण पर है। इससे परिवहन, उद्योगों, घरों और ढाबों में ठोस ईंधन के इस्तेमाल जैसे महत्वपूर्ण दहन स्रोतों को अक्सर पर्याप्त प्राथमिकता नहीं मिलती, जिससे इन क्षेत्रों में बड़े कदम नहीं उठाए जा पाते। शहरों की अपनी-अपनी कार्य योजनाएं होती हैं और नगर निगम की सीमाएं तय होती हैं। इस वजह से ज्यादातर बड़े औद्योगिक स्रोत और बिजली संयंत्र शहर की कार्य

Slow Murder Continues_Hindi.indd 154 16/07/25 11:25 AM

योजनाओं के दायरे से बाहर रह जाते हैं। शहरों के उन इलाकों में मौजूद छोटे और मध्यम स्तर के उद्योगों (जो शहरी नियमों के अनुसार नहीं हैं) पर भी अक्सर ध्यान नहीं दिया जाता। सीएसई की त्वरित समीक्षा से पता चला है कि इन क्षेत्रों को प्रदूषण कम करने के लिए समग्र रूप से कार्रवाई में तेजी लाने में सबसे ज्यादा चुनौती का सामना करना पड़ता है। इन क्षेत्रों में काम धीमा होने के कई कारण हैं, जैसे कार्रवाई को समर्थन देने के लिए पर्याप्त फंड वाली विशेष योजनाओं की कमी, प्रौद्योगिकी बदलाव और डिजाइन में सुधार की कमी और नई नीतियों की जटिलता।

शहरों द्वारा दी जाने वाली प्रगति रिपोर्ट में सीपीसीबी की तरफ से परिवहन क्षेत्र के लिए तय किए गए संकेतकों पर बहुत कम जानकारी होती है। ये संकेतक सड़क पर होने वाले उत्सर्जन को नियंत्रित करने, पुराने वाहनों को हटाने, वाहनों को बिजली से चलाने, सार्वजनिक परिवहन को बेहतर बनाने, बिना मोटर वाले परिवहन को बढ़ावा देने और पार्किंग नीतियों को बेहतर बनाने से संबंधित हैं। ये रणनीतियां अभी तक कार्यान्वयन, फंडिंग, और रिपोर्टिंग के लिए पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हुई हैं, न तो संख्यात्मक रूप से और न ही गुणात्मक रूप से।

सड़क पर चलने वाले वाहनों से होने वाले प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए अभी जो उपाय अपनाए जा रहे हैं, वे बेहद सीमित और पुराने ढर्रे के हैं। उदाहरण के लिए पीयूसी सर्टिफिकेट और चालान जैसी कार्रवाई ही मुख्य रूप से की जा रही है। पुराने वाहनों को हटाने की थोड़ी-बहुत कोशिशें जरूर हुई हैं, लेकिन अब तक इसे लेकर कोई ठोस स्क्रैपेज या फ्लीट रिन्यूअल पॉलिसी नहीं अपनाई गई है, जबकि सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय (एमओआरटीएच) की तरफ से इनके लिए नोटिफिकेशन पहले ही जारी हो चुके हैं। कई राज्यों ने अपने शहरों के क्लीन-एयर एक्शन प्लान में रिमोट सेंसिंग जैसी उन्नत निगरानी का प्रस्ताव भी दिया है, लेकिन यह योजना अभी तक शुरू नहीं हो पाई है, क्योंकि इसके लिए जरूरी केंद्रीय नियम एमओआरटीएच ने अभी तक अधिसूचित नहीं किए हैं। सबसे बड़ी चिंता यह है कि पुराने भारी वाणिज्यिक वाहनों को हटाने के लिए भी अब तक कोई स्पष्ट रणनीति नहीं बन पाई है, जबकि ये वाहन प्रदूषण में बहुत बड़ा योगदान देते हैं।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) ने पार्किंग नीति को भी प्रदूषण

नियंत्रण का हिस्सा माना है। लेकिन ज्यादातर शहर इस नीति को ठीक से समझ ही नहीं सके हैं। शहर इस नीति को गलत तरीके से "सप्लाई साइड मैनेजमेंट" के रूप में ले रहे हैं यानी "लोगों को ज्यादा से ज्यादा पार्किंग चाहिए, तो और पार्किंग बना दो।" इसलिए वे केवल यही रिपोर्ट करते हैं कि मल्टी-लेवल पार्किंग बनाई गई है, कितनी नई जगह पार्किंग के लिए तय की गई है। लेकिन असली उद्देश्य यह नहीं है। देश की कई प्रमुख नीतियां जैसे, राष्ट्रीय शहरी परिवहन नीति (एनयूटीपी), राष्ट्रीय ट्रांजिट ओरिएंटेड डेवलपमेंट (टीओडी) पॉलिसी, राष्ट्रीय सतत आवास मिशन और आवास और शहरी कार्य मंत्रालय के सर्विस लेवल बेंचमार्क, इन सभी का मकसद यही है कि पार्किंग की डिमांड को कम किया जाए, न कि सिर्फ उसकी सप्लाई बढ़ाई जाए। शहरों को चाहिए कि वे सिर्फ कुछ इलाकों में ही पार्किंग को कानूनी मान्यता दें, गैर-कानूनी पार्किंग पर सख्ती से जुर्माना लगाएं, पार्किंग की कीमतें समय और भीड़ के हिसाब से बदलें, फ्री पार्किंग बंद करें और पूरे इलाके के लिए प्लान बनाएं कि कहां पार्किंग होनी चाहिए और कहां नहीं। शहर स्तर पर इस बारे में कोई स्पष्टता नहीं है कि आखिर हवा को साफ करने के लिए पार्किंग का क्या महत्व है। शहरों को यह समझना जरूरी है कि पार्किंग नीति का सही प्रबंधन वायु प्रदूषण को घटा सकता है।

अगर किसी औद्योगिक शहर को "नॉन-अटेनमेंट सिटी" की सूची में शामिल किया गया है तो वहां नियंत्रण उपाय, निरीक्षण और रिपोर्टिंग जैसे कुछ अतिरिक्त कदम रिपोर्ट किए जाते हैं। लेकिन ये कदम हर शहर में एक जैसे नहीं होते और न ही ये व्यापक या विस्तार से लागू किए जाते हैं। औद्योगिक प्रदूषण नियंत्रण का काम ज्यादातर सामान्य तरीके से ही चलता रहता है और इसकी रिपोर्टिंग बहुत कम होती है। उस क्षेत्र में प्रदूषण नियंत्रण की रिपोर्ट अक्सर चिमनी से निकलने वाले धुएं की जांच, उल्लंघन करने पर चालान और बंद करने के नोटिस, स्वच्छ औद्योगिक ईंधन को बढ़ावा देने के लिए स्वीकृत ईंधन सूची की अधिसूचना जैसी बातों पर आधारित होती है। लेकिन, इन रिपोर्टों में उद्योगों में ईंधन बदलने की वास्तविक स्थिति और उसका पैमाना, प्रदूषण नियंत्रण के लिए नई तकनीक अपनाने की स्थिति और विभिन्न प्रकार के उद्योगों द्वारा अपनाई गई स्वच्छ प्रक्रियाओं की जानकारी जैसी महत्वपूर्ण बातें शामिल नहीं होतीं। बड़े, मध्यम और छोटे उद्योगों की विस्तृत स्थिति, और

Slow Murder Continues_Hindi.indd 156 16/07/25 11:25 AM

'पालतू'

"उच्च स्तर" और "मध्यम स्तर" प्रदूषण श्रेणियों के उद्योगों की जानकारी आमतौर पर उपलब्ध नहीं होती। शहर की प्रगति रिपोर्ट में स्वीकृत ईंधन सूची के प्रभाव और स्वच्छ ईंधन व प्रौद्योगिकी परिवर्तन को तेजी से अपनाने के लिए की गई किसी भी बड़ी कार्रवाई के बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है।

प्रदूषण स्रोतों के आकलन से यह लगातार सामने आ रहा है कि घरों और खुले ढाबों में खाना पकाने के लिए इस्तेमाल होने वाले ठोस ईंधन (जैसे लकड़ी, कोयला, गोबर के उपले) का वायु प्रदूषण पर बहुत बड़ा असर पड़ता है। यह उत्सर्जन और हवा में प्रदूषण की मात्रा का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। सीपीसीबी की समिति द्वारा इंडो-गैंगेटिक के मैदानी इलाकों के 7 राज्यों के लिए बनाई गई प्रदूषण के स्रोतों की सूची में यह सबसे बड़े प्रदूषकों में से एक के रूप में उभरा है। भले ही केंद्र सरकार की "उज्ज्वला योजना" जैसे कार्यक्रमों ने देश भर में एलपीजी के उपयोग को बढ़ाया है, फिर भी वास्तविक और बड़ा बदलाव लाने के लिए बहुत कुछ करने की जरूरत है। पश्चिम बंगाल जैसे कुछ उदाहरण हैं, जहां कोलकाता में ठोस ईंधन वाले चूल्हों को एलपीजी चूल्हों से बदलने के कदम उठाए जा रहे हैं और प्रदूषण कम करने के लिए "धुआं रहित चूल्हे" भी बांटे जा रहे हैं।

15वें वित्त आयोग के तहत चल रही वर्तमान फंडिंग प्रणाली 2025-26 में खत्म हो जाएगी। अभी यह स्पष्ट नहीं है कि "राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम" के लिए केंद्र सरकार का आवंटन कितना बढ़ाया जा सकता है, और अगले चरण में प्रस्तावित "चैंपियन फंड" को कैसे बनाया और फंड किया जाएगा। एक "चैलेंज फंड" (चुनौती कोष) शुरू करने का प्रस्ताव भी है। संभावना है कि यह फंड कुछ खास क्षेत्रीय रणनीतियों (जैसे किसी विशेष प्रकार के प्रदूषण को कम करने के लिए) के लिए आरक्षित होगा। इस फंड को राज्यों भर में बड़े पैमाने पर लागू करने के लिए अच्छी तरह से डिजाइन करने की आवश्यकता है। यानी, इसकी योजना ऐसी होनी चाहिए कि यह प्रभावी ढंग से काम कर सके और इसका दायरा बड़ा हो।

अगले चरण में वायु प्रदूषण को कम करने के लिए भविष्य में पैसा जुटाने और उसे सही जगह लगाने के लिए एक ज्यादा व्यवस्थित तरीका अपनाना जरूरी है। कम से कम 2030 तक सभी मौजूदा और नई योजनाओं के लिए सालाना बजट के अनुमानों में तालमेल बिठाना चाहिए। जो योजनाएं बनाई जा

Slow Murder Continues_Hindi.indd 158 16/07/25 11:25 AM

रही हैं, उन्हें सिर्फ अलग-अलग कामों पर नहीं, बल्कि लक्ष्य आधारित बनाना जरूरी है। यानी जो लक्ष्य केंद्र और राज्य सरकारों ने तय किए हैं, उनके साथ जुड़े नियम, नीतियां और प्रदर्शन के पैमाने, इन सभी से नई योजनाएं मेल खानी चाहिए। सिर्फ कुछ छोटे काम करने से नहीं चलेगा, बल्कि अब ऐसी नई योजनाएं बनानी होंगी जो पूरे क्षेत्र (शहर, राज्य) में बड़े स्तर पर लागू हो सकें और लंबे समय तक असर डालें। नई सरकारी योजनाएं केवल साधन या बजट के आधार पर नहीं, बल्कि स्पष्ट दीर्घकालिक लक्ष्यों और मानकों से जुड़ी हों, तभी वे असरदार होंगी और वायु प्रदूषण जैसी समस्याओं पर सटीक और टिकाऊ समाधान दे सकेंगी।

कुछ नए अध्ययनों से पता चला है कि एनसीएपी का असर उतना प्रभावशाली नहीं रहा है। पिछले 8 सालों में वायु प्रदूषण कम करने के लिए सामूहिक रूप से लगभग 1,000 करोड़ रुपए मिलने के बावजूद 16 भारतीय शहर अभी भी दुनिया के 50 सबसे प्रदूषित शहरों में शामिल हैं। इस जानकारी ने एनसीएपी के प्रदर्शन को सवालों के घेरे में ला दिया है। पर्यावरणविदों का कहना है कि भारत के अब तक के सबसे महंगे और दुनिया के सबसे बड़े वायु प्रदूषण नियंत्रण कार्यक्रमों में से एक एनसीएपी की प्रभावशीलता पर और भी सवाल उठ गए हैं। इसका कारण यह है कि "सबसे प्रदूषित" शीर्ष 50 शहरों की सूची में शामिल 19 भारतीय शहरों में यह कार्यक्रम लागू ही नहीं हो पाया है। एनसीएपी के प्रदर्शन की जानकारी देने वाले पीआरएएनए पोर्टल के अनुसार, 14 मार्च 2025 तक उन "नॉन-अटेनमेंट सिटी" (जो लंबे समय से प्रदूषित पाए गए हैं) को 11,541 करोड़ रुपए जारी किए गए थे।

वायु गुणवत्ता प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में काम करने वाली स्विस कंपनी आईक्यूएयर के एक अध्ययन में चौंकाने वाले परिणाम सामने आए हैं। यह अध्ययन दुनिया भर के 138 देशों और क्षेत्रों के 8,954 जगहों पर लगे 40,000 से ज्यादा वायु गुणवत्ता निगरानी स्टेशनों से इकट्ठा किए गए पीएम 2.5 डेटा पर आधारित था। डेटा के गहरे विश्लेषण से पता चला कि दुनिया के 50 सबसे प्रदूषित शहरों में शामिल 35 भारतीय शहरों में से 10 शहर ऐसे थे जो राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम के साथ-साथ "स्मार्ट सिटी" भी थे। यह निष्कर्ष देश में अपनाए जा रहे "शहरी विकास मॉडल" पर गंभीर सवाल उठाता है। यानी, अगर सरकार के सबसे बड़े प्रदूषण नियंत्रण कार्यक्रम और

Slow Murder Continues_Hindi.indd 159 16/07/25 11:25 AM

सबसे महत्वाकांक्षी शहरी विकास कार्यक्रम के तहत आने वाले शहर भी इतने प्रदूषित हैं, तो कहीं कुछ गलत है।

आईक्यूएयर के आर्मेन अराराडियन ने बताया, "2024 में भारत में पीएम 2.5 के स्तर में 7 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गई। 2023 में इसका औसत स्तर 54.4 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर था, जो 2024 में घटकर 50.6 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर रह गया। इसके बावजूद दुनिया के दस सबसे ज्यादा प्रदूषित शहरों में से 6 भारत में हैं। भारत अब दुनिया का पांचवां सबसे प्रदूषित देश है। भले ही यह पिछले साल के तीसरे स्थान से नीचे आया हो, लेकिन वायु प्रदूषण अब भी एक गंभीर स्वास्थ्य समस्या बना हुआ है, जिससे लोगों के औसत जीवनकाल में लगभग 5.2 साल की कमी आ रही है।" वह कहते हैं, "2024 में भी प्रदूषण की गंभीर घटनाएं जारी रहीं, खासकर उत्तर भारत में। जनवरी में दिल्ली और हिमाचल प्रदेश में हवा की गुणवत्ता बेहद खराब रही। हिमाचल प्रदेश के दक्षिण-पश्चिमी हिस्से में मौजूद बद्दी शहर में जनवरी के दौरान पीएम 2.5 का औसत स्तर 165 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर रिकॉर्ड किया गया। अक्टूबर में मणिपुर में हवा की गुणवत्ता में तेजी से गिरावट आई, जबकि नवंबर में दिल्ली, पंजाब, चंडीगढ़, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश में प्रदूषण का स्तर काफी बढ़ गया। पराली जलाने से पीएम 2.5 के स्तर में बढ़ोतरी हुई और यह प्रदूषण के चरम स्तर के दौरान 60 प्रतिशत प्रदूषण की वजह था। कुल मिलाकर भारत के 35 प्रतिशत शहरों में पीएम 2.5 का सालाना स्तर डब्ल्यूएचओ के दिशानिर्देश से दस गुना ज्यादा था।" राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम जैसे सरकारी कदमों के बावजूद नीतियों के सही तरीके से लागू न होने और कमजोर इंफ्रास्ट्रक्चर के कारण समस्याएं बनी रहीं।

पटना और चंडीगढ़ इस बात के प्रमुख उदाहरण हैं। दोनों शहर एनसीएपी और स्मार्ट सिटी प्रोग्राम का हिस्सा हैं। 2017-18 से अब तक पटना ने वायु प्रदूषण नियंत्रण के लिए आवंटित 299 करोड़ रुपए में से 233 करोड़ रुपए खर्च किए। वहीं, चंडीगढ़ ने 33 करोड़ में से लगभग 30 करोड़ रुपए खर्च किए। इसके बावजूद इन दोनों शहरों में वायु प्रदूषण कम होने के बजाय और बढ़ गया। पीएम 10 वह मुख्य प्रदूषक है, जिसे एनसीएपी के तहत हवा की गुणवत्ता मापने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। 2023-24 में पटना में पीएम 10 का स्तर 2017-18 की तुलना में 3 प्रतिशत बढ़ा, जबकि चंडीगढ़ में 2

Slow Murder Continues_Hindi.indd 160 16/07/25 11:25 AM

प्रतिशत की बढ़ोतरी दर्ज की गई। वहीं, एनसीएपी में शामिल ओडिशा स्थित अंगुल भारत के 50 सबसे ज्यादा प्रदूषित शहरों में शुमार रहा, जहां पीएम 10 सबसे ज्यादा 72 प्रतिशत तक बढ़ गया। हालांकि, ग्लोबल टॉप 50 सूची में शामिल एनसीएपी शहरों ने पिछले सात सालों में पीएम 10 प्रदूषण में औसतन 16 प्रतिशत तक कमी दर्ज की है।

वायु प्रदूषण के विशेषज्ञ मानते हैं कि एनसीएपी की दिशा पूरी तरह सही नहीं रही। अब इसे बेहतर रूप में यानी एनसीएपी 2.0 के रूप में आगे बढ़ाने की जरूरत है। वायु प्रदूषण विशेषज्ञ और एन्वायरोकैटलिस्ट्स के संस्थापक सुनील दहिया कहते हैं, "यह चिंता का विषय है कि एनसीएपी में पांच साल से ज्यादा समय से शामिल कई शहर अब भी दुनिया के 50 सबसे प्रदूषित शहरों की सूची में बने हुए हैं। उतनी ही गंभीर बात यह भी है कि कुछ ऐसे भारतीय शहर जो अभी तक एनसीएपी में शामिल नहीं हुए हैं, वे भी इस सूची का हिस्सा हैं।" उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि एनसीएपी की तुरंत दोबारा समीक्षा होनी चाहिए और इसमें ज्यादा शहरों और इलाकों को शामिल किया जाना चाहिए। प्रदूषण को कम करने के लिए एक साफ और मजबूत योजना तैयार की जानी चाहिए, जिसे तय समय सीमा के अंदर लागू किया जा सके। अगर एनसीएपी में शामिल कुछ शहरों में प्रदूषण बढ़ा है तो इसका मतलब है कि साफ हवा के लिए जो पैसे खर्च किए गए, वे सही और जरूरी कामों पर ठीक से नहीं लगाए गए। और अगर वे शहर भी ज्यादा प्रदूषित हो रहे हैं जो एनसीएपी में शामिल ही नहीं हैं, तो इसका मतलब है कि प्रदूषण फैलने से रोकने के लिए क्षेत्रीय या "एयरशेड" आधारित कोई योजना नहीं बनाई गई, जिसकी वजह से प्रदूषण के नए-नए केंद्र बनते जा रहे हैं।

एनसीएपी के सलाहकार और बोस संस्थान के वैज्ञानिक अभिजीत चटर्जी ने बताया कि एनसीएपी का पूरा ध्यान पीएम 10 को कम करने पर है। इसलिए निर्माण और तोड़फोड़ से निकलने वाली धूल और सड़क की धूल को भी नियंत्रित करने को प्राथमिकता दी गई है। अभिजीत ने कहा, "जहां बड़े धूल कणों पर ध्यान दिया गया, वहीं बायोमास और ठोस कचरे को जलाने से निकलने वाले छोटे कणों पर ध्यान नहीं दिया गया। इस वजह से पीएम 2.5 का स्तर कंट्रोल से बाहर जा रहा है।" आईआईटी दिल्ली के सेंटर फॉर एटमॉस्फेरिक साइंसेस के वैज्ञानिक सग्निक डे ने कहा, "वायु प्रदूषण सिर्फ उन

Slow Murder Continues_Hindi.indd 161 16/07/25 11:25 AM

शहरों तक सीमित नहीं है जो प्रदूषण नियंत्रण के मानकों को पूरा नहीं कर पाते। सैटेलाइट से मिली जानकारी से यह साफ होता है कि पूरा इंडो-गैंगेटिक क्षेत्र प्रदूषण से प्रभावित है। आंकड़े यह भी बताते हैं कि प्रदूषण नियंत्रण के मानकों को पूरा न कर पाने वाले शहरों में प्रदूषण का एक बड़ा हिस्सा उन शहरों के बाहर से आता है। इसलिए जब तक अलग-अलग क्षेत्रों के लिए इलाकों के हिसाब से विशेष उपाय सख्ती से लागू नहीं किए जाते और उनकी जिम्मेदारी तय नहीं की जाती, वायु प्रदूषण के खिलाफ लड़ाई नहीं जीती जा सकती।

भारत में 2016 से वायु प्रदूषण खासकर पार्टिकुलेट मैटर (पीएम) में कमी देखी गई है। लेकिन जनवरी 2025 में *साइंस एडवांसेज* नाम की एक लोकप्रिय पत्रिका में छपी एक स्टडी के मुताबिक, यह गिरावट सरकार की एनसीएपी जैसी प्रमुख योजना की वजह से नहीं हुई है, जिसे खास तौर पर वायु प्रदूषण से निपटने के लिए बनाया गया था। शोधकर्ताओं ने अपनी रिपोर्ट में लिखा, "हम 2016-2018 से पीएम 2.5 के औसत स्तर में गिरावट देख रहे हैं, खासकर उत्तर भारत में। लेकिन यह कमी न तो मौसम में बदलाव की वजह से है और न ही एनसीएपी की वजह से।"

स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के डोएर स्कूल ऑफ सस्टेनेबिलिटी की वैज्ञानिक आयाको कावानो ने कहा, "भारत में वायु प्रदूषण के असर को समझने के लिए एक्सपोजर डेटा की भारी कमी है। इस डेटा के बिना पूरे देश या एक बड़ी आबादी पर पड़ने वाले प्रभावों का ठीक से स्टडी करना मुश्किल है।" इस चुनौती से निपटने के लिए शोधकर्ताओं ने मशीन लर्निंग तकनीक का इस्तेमाल किया और 2005 से 2023 तक भारत में हर दिन पीएम 2.5 के स्तर का विश्लेषण किया। यह डेटा सैटेलाइट (रिमोट सेंसिंग) के जरिए जुटाया गया था। कावानो के मुताबिक, यह डेटा अब शोधकर्ताओं और नीति-निर्माताओं को भारत में वायु प्रदूषण के असर को बेहतर ढंग से समझने और उसके लिए ठोस कदम उठाने में मदद कर सकता है।

विश्लेषण में पाया गया कि 2005-2010 की तुलना में 2011 से 2016 के बीच भारत के ज्यादातर हिस्सों में पीएम 2.5 की मात्रा में काफी बढ़ोतरी हुई। इसमें सिर्फ जम्मू-कश्मीर, पंजाब और राजस्थान अपवाद थे। 2017 से 2022 के दौरान यह वृद्धि मध्यम हो गई (यानी बढ़ने की दर कम हुई)। पीएम 2.5 के स्तर में सबसे ज्यादा कमी जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली

Slow Murder Continues_Hindi.indd 162 16/07/25 11:25 AM

और राजस्थान में देखी गई। ये निष्कर्ष पिछले अध्ययनों से मेल खाते हैं, जिनमें यह पाया गया था कि शहरी इलाकों में 2017-2019 की तुलना में 2020 में पीएम 2.5 का स्तर 43 प्रतिशत कम हुआ था। भारत में कुछ अन्य वायु गुणवत्ता नियंत्रण नीतियों, जैसे बीएस-VI उत्सर्जन मानकों को लागू करना और दिल्ली के पास कुछ बिजली संयंत्रों को बंद करना ने भी इस गिरावट में योगदान दिया हो सकता है। विश्लेषण में शामिल किए गए शहरों में नई दिल्ली के औसत निवासी को लगातार पीएम 2.5 का सबसे ज्यादा "जनसंख्या-भारित औसत" (यानी जहां ज्यादा लोग रहते हैं, वहां प्रदूषण ज्यादा) झेलना पड़ा। 2022 में यह 88.67 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर था, जो भारत के सालाना राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता दिशानिर्देश (40 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर) से दोगुने से भी ज्यादा है। कोलकाता और मुंबई के निवासियों ने भी पीएम 2.5 के ऐसे स्तरों का अनुभव किया जो राष्ट्रीय सीमाओं से ज्यादा थे। फिर भी अध्ययन से पता चला कि सभी बड़े शहरों (मेगा-सिटी) के निवासियों ने 2016-2018 से पीएम 2.5 के संपर्क में मध्यम गिरावट का अनुभव किया है। मुंबई में सबसे ज्यादा 10 प्रतिशत की गिरावट देखी गई। उसके बाद 2020 और 2022 के बीच नई दिल्ली में 8 प्रतिशत की गिरावट आई।

2016 से 2022 तक पीएम 2.5 की मात्रा में जो कमी आई, वह शायद दक्षिणी भारत में बारिश और हवा में नमी जैसे मौसम संबंधी बदलावों के कारण आंशिक रूप से हुई थी, लेकिन उत्तरी भारत में ऐसा नहीं था। 2015 से पहले प्रदूषक की उच्च सघनता का मुख्य कारण बढ़ती मानवीय गतिविधियां थीं, न कि मौसम से जुड़े हालात। टीम ने यह भी जांच की कि एनसीएपी को लागू करने से पीएम 2.5 की मात्रा पर कितना असर पड़ा है। उन्होंने एनसीएपी शुरू होने से पहले और बाद में उन इलाकों की तुलना की, जहां एनसीएपी लागू था और जहां नहीं था। उन्हें इस बात का कोई सबूत नहीं मिला कि एनसीएपी ने 2021 और 2022 में पीएम 2.5 की मात्रा को कम करने में कोई योगदान दिया। इसकी बजाय पीएम 2.5 में यह गिरावट कोविड-19 महामारी के दौरान लगे लॉकडाउन, भारत में अन्य वायु गुणवत्ता नियंत्रण नीतियों जैसे बीएस-VI उत्सर्जन मानकों को लागू करने (जो वाहनों को प्रदूषण सीमा का पालन करने के लिए बाध्य करते हैं) और दिल्ली के पास बिजली संयंत्रों का बंद होने जैसे कारणों से हो सकती है। ■

Slow Murder Continues_Hindi.indd 163 16/07/25 11:25 AM

अनुलग्नक

Slow Murder Continues_Hindi.indd 164 16/07/25 11:25 AM

1

भारत में नए वाहनों के पंजीकरण की वार्षिक प्रवृत्ति, 2000-2024

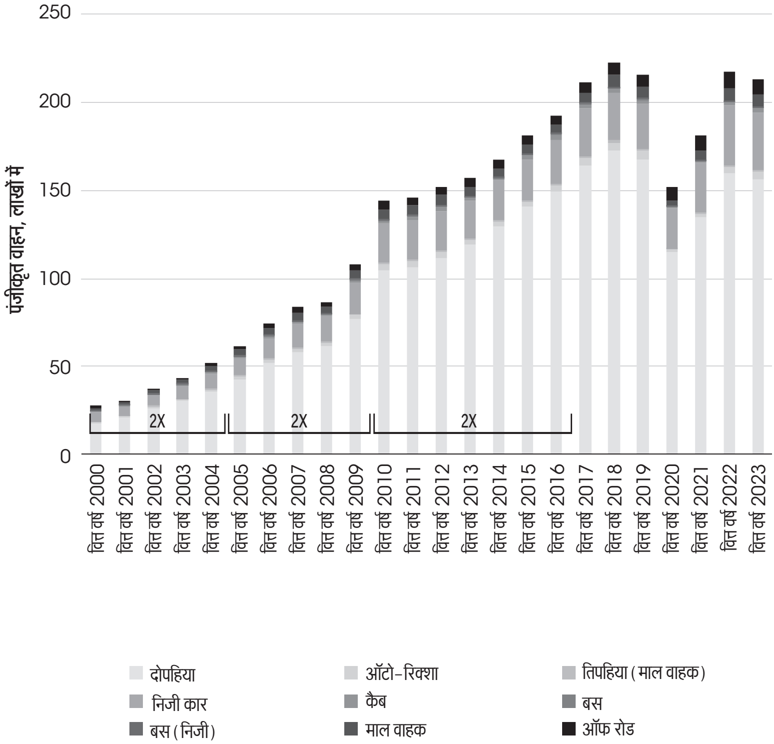

स्रोत : वाहन डेटाबेस, 2024

Slow Murder Continues_Hindi.indd 165 16/07/25 11:25 AM

2

शहरी आबादी और शहरी फैलाव बढ़ने के साथ शहरों में यात्राओं की संख्या में और यात्रा की दूरी बढ़ रही है। उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि शहरों में प्रति व्यक्ति औसत यात्रा दर में पिछले 10 वर्षों में 17.5 प्रतिशत और औसत यात्रा की दूरी में 28.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसका सीधा मतलब है कि यात्रा की मांग और यात्रा की दूरी में वृद्धि। ऐसे में यदि निजी वाहनों पर निर्भरता बढ़ती रही तो इससे प्रदूषण और कार्बन दोनों में वृद्धि होगी

पिछले दशक में प्रति व्यक्ति यात्रा दर

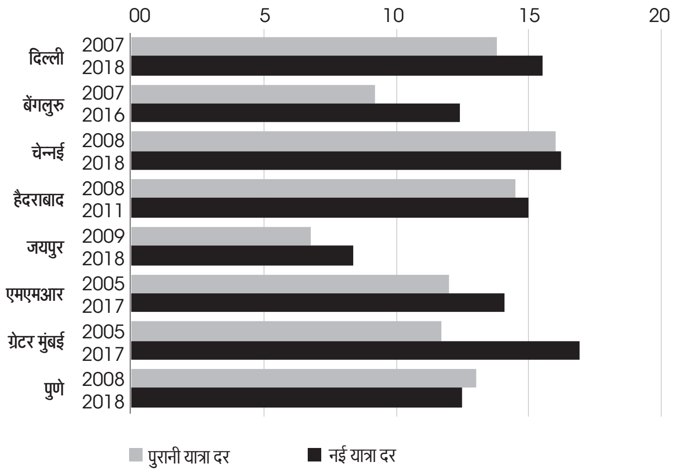

स्रोत : संबंधित शहर के सीएमपी और सीटीटीएस अध्ययन, एनआईयूए, आईआईटी–दिल्ली, विल्बर–स्मिथ एसोसिएट्स

3

पिछले दशक में प्रति व्यक्ति यात्रा दूरी

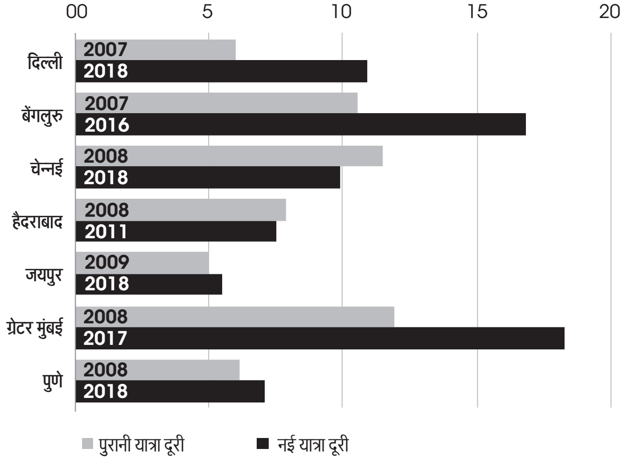

स्रोत: संबंधित शहर के सीएमपी और सीटीटीएस अध्ययन, एनआईयूए, आईआईटी-दिल्ली, विल्बर-स्मिथ एसोसिएट्स

4

भारतीय शहर आवागमन के लिए निजी वाहनों पर बड़े पैमाने पर निर्भर

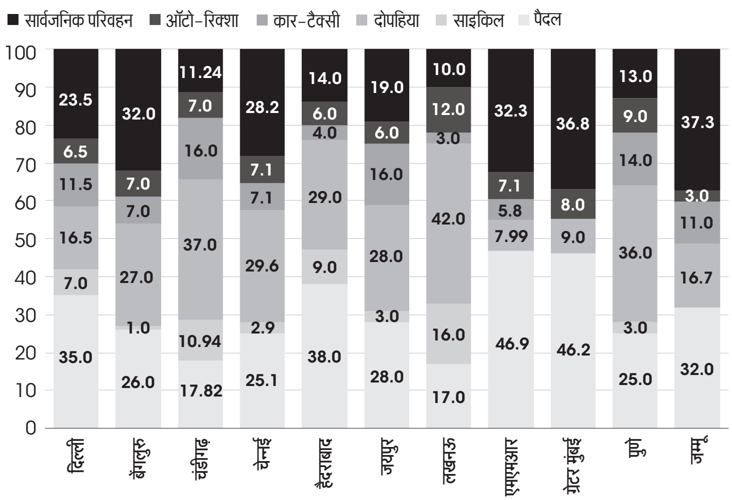

स्रोत: संबंधित शहर के सीएमपी और सीटीटीएस अध्ययन, एनआईयूए, आईआईटी-दिल्ली, विल्बर-स्मिथ एसोसिएट्स

Slow Murder Continues_Hindi.indd 167 16/07/25 11:25 AM

5

एनसीएपी: निधि उपयोग वित्त वर्ष 2019-20 से 2023-24 (करोड़ रुपए में)

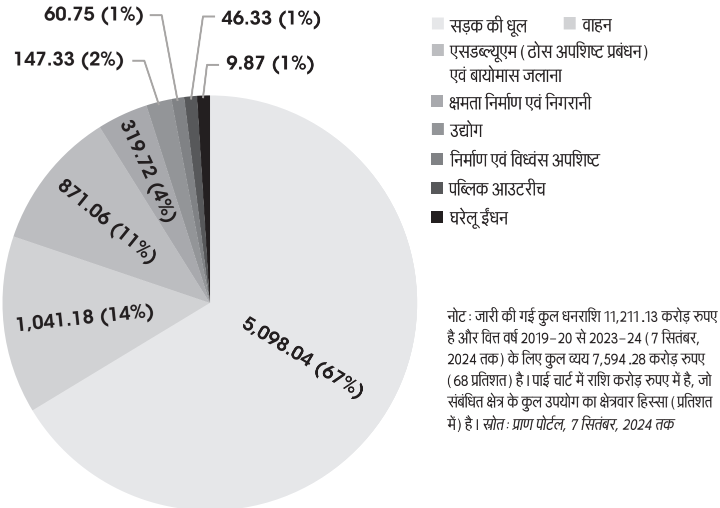

नोट : जारी की गई कुल धनराशि 11,211.13 करोड़ रुपए है और वित्त वर्ष 2019–20 से 2023–24 (7 सितंबर, 2024 तक) के लिए कुल व्यय 7,594.28 करोड़ रुपए (68 प्रतिशत) है। पाई चार्ट में राशि करोड़ रुपए में है, जो संबंधित क्षेत्र के कुल उपयोग का क्षेत्रवार हिस्सा (प्रतिशत में) है। *स्रोत : प्राण पोर्टल, 7 सितंबर, 2024 तक*

6

नए वार्षिक पंजीकरण में विद्युत वाहनों का रुझान, 2015-2024

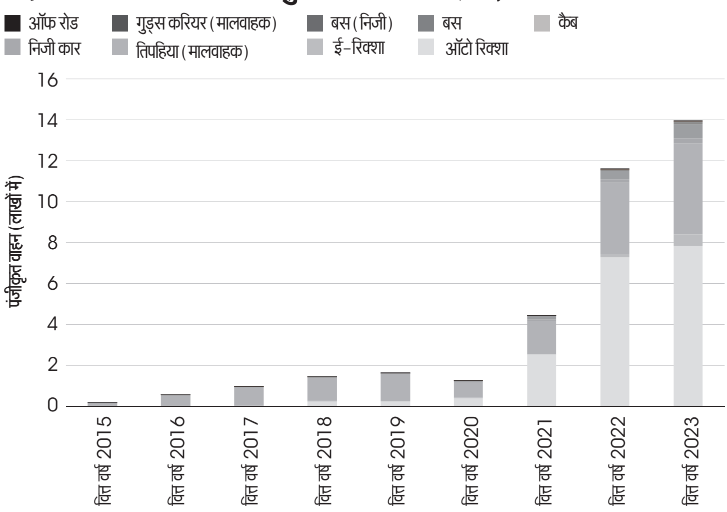

स्रोत : वाहन डेटाबेस

7

भारत काम पर कैसे जाता है

शहरी भारत में 23 प्रतिशत कामकाजी आबादी पैदल ही काम पर जाती है, जबकि ग्रामीण भारत में यह आंकड़ा 22 प्रतिशत है

यात्रा की प्राथमिकताएं (मिलियन में)

	शहरी	ग्रामीण	कुल
पैदल	26.7	18.5	45.3
साइकिल	15.1	11.2	26.3
मोपेड/स्कूटर/मोटरसाइकिल	19.1	6.4	25.5
कार/जीप/वैन	4.2	1.3	5.5
टेम्पो/ऑटो रिक्शा/टैक्सी	3.9	2.1	6
बस	13.2	9.7	22.9
ट्रेन	4.8	2.2	7
जल परिवहन	0.2	0.3	0.5
अन्य	0.7	0.6	1.3
यात्रा नहीं	27.7	32.5	60.2
परिवहन के सभी साधन	**115.7**	**84.7**	**200.4**

8

राज्य बस परिवहन का प्रदर्शन

भारत के 56 राज्य परिवहन उपक्रम पुरानी बसें, बढ़ता घाटा और घटते यात्री जैसी समस्याओं का सामना कर रहे हैं

नगण्य हिस्सा
1951 में भारत के पंजीकृत वाहनों में बसों की हिस्सेदारी 11.11 प्रतिशत से घटकर 2020 में 0.07 प्रतिशत रह गई

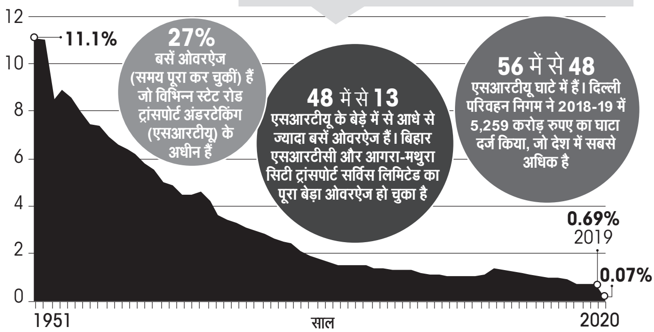

स्रोत: केंद्रीय सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्रालय द्वारा जून 2023 को जारी रिव्यू ऑफ द परफॉर्मेंस ऑफ स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट अंडरटेकिंग्स फॉर 2017-18 एंड 2018-19 और रोड ट्रांसपोर्ट ईयरबुक 2018-19 और 2019-20

Slow Murder Continues_Hindi.indd 169 16/07/25 11:25 AM

9

एनसीएपी कार्यक्रम अंतर्गत नॉन अटेनमेंट शहरों में वायु गुणवत्ता की प्रवृत्ति

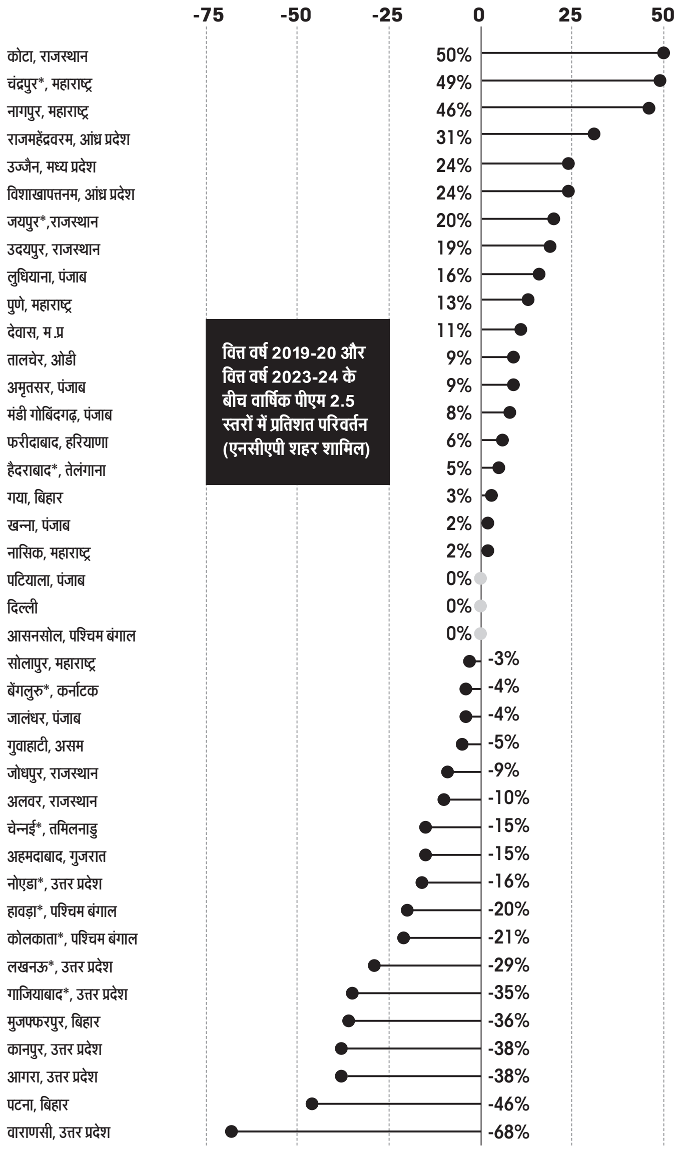

Slow Murder Continues_Hindi.indd 170 16/07/25 11:25 AM

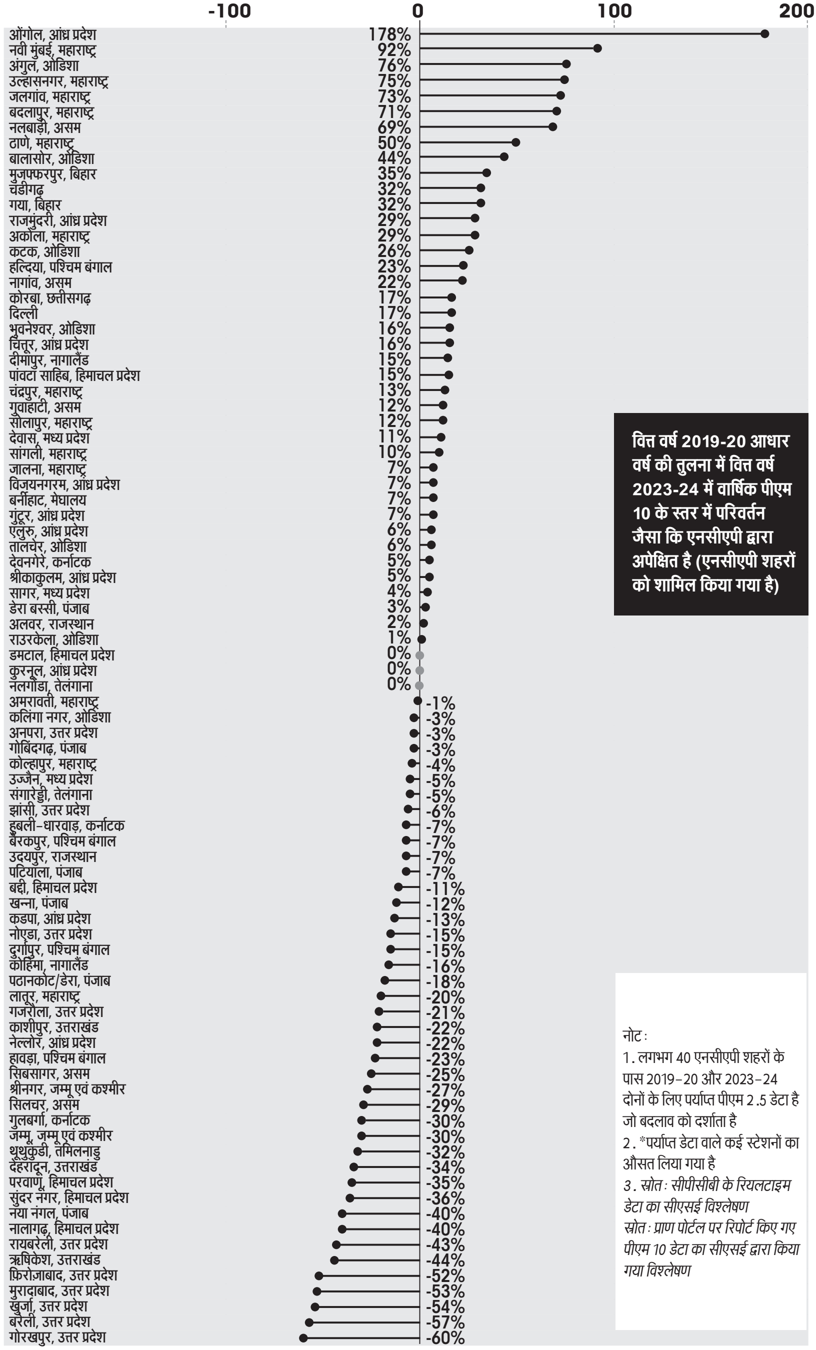
-100
0
100
200
ओंगोल, आंध्र प्रदेश 178%
नवी मुंबई, महाराष्ट्र 92%
अंगुल, ओडिशा 76%
उल्हासनगर, महाराष्ट्र 75%
जलगांव, महाराष्ट्र 73%
बदलापुर, महाराष्ट्र 71%
नलबाड़ी, असम 69%
ठाणे, महाराष्ट्र 50%
बालासोर, ओडिशा 44%
मुज़फ्फरपुर, बिहार 35%
चंडीगढ़ 32%
गया, बिहार 32%
राजमुंदरी, आंध्र प्रदेश 29%
अकोला, महाराष्ट्र 29%
कटक, ओडिशा 26%
हल्दिया, पश्चिम बंगाल 23%
नागांव, असम 22%
कोरबा, छत्तीसगढ़ 17%
दिल्ली 17%
भुवनेश्वर, ओडिशा 16%
चित्तूर, आंध्र प्रदेश 16%
दीमापुर, नागालैंड 15%
पांवटा साहिब, हिमाचल प्रदेश 15%
चंद्रपुर, महाराष्ट्र 13%
गुवाहाटी, असम 12%
सोलापुर, महाराष्ट्र 12%
देवास, मध्य प्रदेश 11%
सांगली, महाराष्ट्र 10%
जालना, महाराष्ट्र 7%
विजयनगरम, आंध्र प्रदेश 7%
बर्नीहाट, मेघालय 7%
गुंटूर, आंध्र प्रदेश 7%
एलुरु, आंध्र प्रदेश 6%
तालचेर, ओडिशा 6%
देवनगेरे, कर्नाटक 5%
श्रीकाकुलम, आंध्र प्रदेश 5%
सागर, मध्य प्रदेश 4%
डेरा बस्सी, पंजाब 3%
अलवर, राजस्थान 2%
राउरकेला, ओडिशा 1%
डमटाल, हिमाचल प्रदेश 0%
कुरनूल, आंध्र प्रदेश 0%
नलगोंडा, तेलंगाना 0%
अमरावती, महाराष्ट्र -1%
कलिंगा नगर, ओडिशा -3%
अनपरा, उत्तर प्रदेश -3%
गोबिंदगढ़, पंजाब -3%
कोल्हापुर, महाराष्ट्र -4%
उज्जैन, मध्य प्रदेश -5%
संगारेड्डी, तेलंगाना -5%
झांसी, उत्तर प्रदेश -6%
हुबली-धारवाड़, कर्नाटक -7%
बैरकपुर, पश्चिम बंगाल -7%
उदयपुर, राजस्थान -7%
पटियाला, पंजाब -7%
बद्दी, हिमाचल प्रदेश -11%
खन्ना, पंजाब -12%
कडपा, आंध्र प्रदेश -13%
नोएडा, उत्तर प्रदेश -15%
दुर्गापुर, पश्चिम बंगाल -15%
कोहिमा, नागालैंड -16%
पठानकोट/डेरा, पंजाब -18%
लातूर, महाराष्ट्र -20%
गजरौला, उत्तर प्रदेश -21%
काशीपुर, उत्तराखंड -22%
नेल्लोर, आंध्र प्रदेश -22%
हावड़ा, पश्चिम बंगाल -23%
सिबसागर, असम -25%
श्रीनगर, जम्मू एवं कश्मीर -27%
सिलचर, असम -29%
गुलबर्गा, कर्नाटक -30%
जम्मू, जम्मू एवं कश्मीर -30%
थूथुकुडी, तमिलनाडु -32%
देहरादून, उत्तराखंड -34%
परवाणू, हिमाचल प्रदेश -35%
सुंदर नगर, हिमाचल प्रदेश -36%
नया नंगल, पंजाब -40%
नालागढ़, हिमाचल प्रदेश -40%
रायबरेली, उत्तर प्रदेश -43%
ऋषिकेश, उत्तराखंड -44%
फ़िरोज़ाबाद, उत्तर प्रदेश -52%
मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश -53%
खुर्जा, उत्तर प्रदेश -54%
बरेली, उत्तर प्रदेश -57%
गोरखपुर, उत्तर प्रदेश -60%
वित्त वर्ष 2019-20 आधार वर्ष की तुलना में वित्त वर्ष 2023-24 में वार्षिक पीएम 10 के स्तर में परिवर्तन जैसा कि एनसीएपी द्वारा अपेक्षित है (एनसीएपी शहरों को शामिल किया गया है)
नोट :
1. लगभग 40 एनसीएपी शहरों के पास 2019-20 और 2023-24 दोनों के लिए पर्याप्त पीएम 2.5 डेटा है जो बदलाव को दर्शाता है
2. *पर्याप्त डेटा वाले कई स्टेशनों का औसत लिया गया है
3. स्रोत : सीपीसीबी के रियलटाइम डेटा का सीएसई विश्लेषण
स्रोत : प्राण पोर्टल पर रिपोर्ट किए गए पीएम 10 डेटा का सीएसई द्वारा किया गया विश्लेषण

10

जहरीली हवा

साल 2019 में वायु प्रदूषण के कारण 1.67 मिलियन भारतीयों की मौत हो गई। इनमें से आधी से अधिक मृत्यु केवल पांच राज्यों–उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, पश्चिम बंगाल और राजस्थान में हुई। वायु प्रदूषण से 36,803 बिलियन अमेरिकी डॉलर की क्षति हुई जो भारत की जीडीपी का 1.36 प्रतिशत है

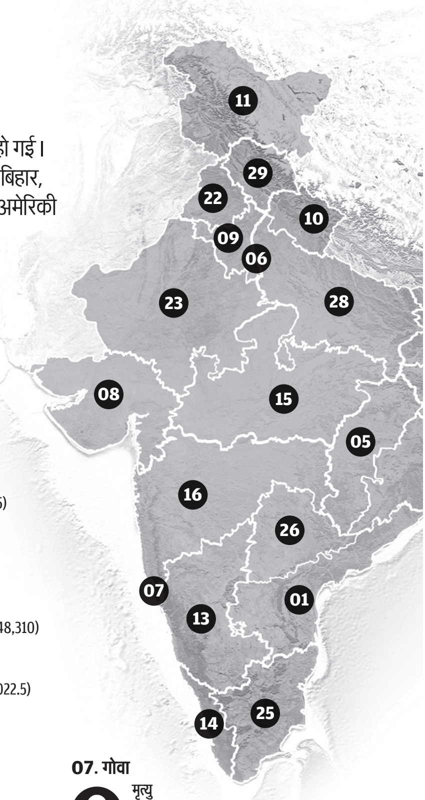

00 वायु प्रदूषण से हुई मृत्यु (रेंज)
00 वायु प्रदूषण से मृत्यु का प्रतिशत (कुल मृत्यु में) 2019 में (रेंज)
00 वायु प्रदूषण से आर्थिक क्षति, अमेरिकी डॉलर में (रेंज)
00 राज्य की जीडीपी में क्षति का प्रतिशत (रेंज)

01. आंध्र प्रदेश

मृत्यु
62,808 (50,176-77,486)
15.6% (13.6-17.6)
आर्थिक क्षति
1,349.50 (968.9-1,817.8)
1.09% (0.79-1.47)

02. अरुणाचल प्रदेश

मृत्यु
789 (631-999)
11% (9.4-13.0)
आर्थिक क्षति
26 (17.6-36.5)
0.74% (0.50-1.04)

03. असम

मृत्यु
657 (483.1-864.7)
1.42% (1.04-1.87)
आर्थिक क्षति
5,130.30 (3,816.0-6,616.1)
2.15% (1.60-2.77)

04. बिहार

मृत्यु
126,460 (105,308-148,310)
18.8% (16.4-21.1)
आर्थिक क्षति
1,552.80 (1,153.4-2,022.5)
1.95% (1.45-2.54)

05. छत्तीसगढ़

मृत्यु
41,519 (34,890-48,091)
16.9% (14.9-18.8)
आर्थिक क्षति
690 (512.1-893.8)
1.55% (1.15-2.01)

06. दिल्ली

मृत्यु
17,248 (14,625-20,057)
18.2% (16.4-19.8)
आर्थिक क्षति
1,206.50 (906.2-1,554.8)
1.08% (0.81-1.39)

07. गोवा

मृत्यु
1,396 (1,059-1,784)
13.3% (11.0-15.5)
आर्थिक क्षति
79.9 (55.5-110.0)
0.72% (0.50-1.00)

08. गुजरात

मृत्यु
87,811 (71,947-104,322)
18.9% (16.7-20.9)
आर्थिक क्षति
2,859.60 (2,157.9-3,667.0)
1.33% (1.00-1.71)

09. हरियाणा

मृत्यु
34,119 (28,096-40,443)
19% (16.9-20.7)
आर्थिक क्षति
1,566.30 (1,187.9-2,009.1)
1.49% (1.13-1.91)

10. हिमाचल प्रदेश

मृत्यु
10,383 (8,377-12,510)
18.5% (15.7-21.2)
आर्थिक क्षति
253.8 (187.8-331.4)
1.16% (0.86-1.51)

11. जम्मू-कश्मीर व लद्दाख

मृत्यु
15,997 (13,108-19,295)
20.2% (17.3-22.7)
आर्थिक क्षति
252.2 (188.1-326.7)
1.14% (0.85-1.48)

12. झारखंड

मृत्यु
33,136 (27,642-38,553)
16.7% (14.5-18.9)
आर्थिक क्षति
543.3 (398.2-7,14.9)
1.24% (0.91-1.63)

13. कर्नाटक

मृत्यु
89,184 (72,283-106,651)
16.6% (14.4-18.6)
आर्थिक क्षति
2,680.70 (2,006.0-3,459.2)
1.22% (0.91-1.58)

Slow Murder Continues_Hindi.indd 172 16/07/25 11:25 AM

14. केरल

मृत्यु
36,392 (29,015-44,371)
14.3% (12.2-16.3)
आर्थिक क्षति
1,090.50 (808.0-1,420.7)
0.98% (0.72-1.27)

15. मध्य प्रदेश

मृत्यु
112,009 (92,397-131,581)
18.7% (16.2-20.8)
आर्थिक क्षति
1,970.50 (1,479.8-2,541.8)
1.7% (1.28-2.20)

16. महाराष्ट्र

मृत्यु
139,118 (113,462-166,562)
16.7% (14.9-18.5)
आर्थिक क्षति
3,975.40 (3,003.6-5,079.6)
1.06% (0.80-1.35)

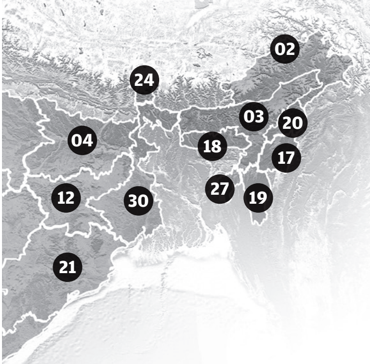

17. मणिपुर

मृत्यु
40.5 (28.8-54.7)
1.08% (0.77-1.46)
आर्थिक क्षति
5,130.30 (3,816.0-6,616.1)
2.15% (1.60-2.77)

18. मेघालय

मृत्यु
1,874 (1,504-2,321)
11.7% (10.0-14.2)
आर्थिक क्षति
39.2 (27.0-54.7)
0.8% (0.55-1.11)

19. मिजोरम

मृत्यु
770 (584-949)
11.3% (9.4-13.3)
आर्थिक क्षति
22.4 (15.3-31.3)
0.7% (0.48-0.98)

20. नागालैंड

मृत्यु
1,281 (1,016-1,566)
12.6% (11.0-14.2)
आर्थिक क्षति
33.6 (23.0-46.9)
0.86% (0.59-1.20)

21. ओडिशा

मृत्यु
43,409 (33,936-55,732)
12.7% (10.9-15.6)
आर्थिक क्षति
806.6 (573.6-1,088.1)
1.14% (0.81-1.53)

22. पंजाब

मृत्यु
41,090 (33,548-48,366)
18.8% (17.2-20.5)
आर्थिक क्षति
1,148.90 (862.2-1,474.4)
1.52% (1.14-1.96)

23. राजस्थान

मृत्यु
113,361 (89,003-135,976)
21.2% (17.2-24.0)
आर्थिक क्षति
2,294.30 (1,673.8-2,996.2)
1.7% (1.24-2.22)

24. सिक्किम

मृत्यु
488 (386-607)
14.4% (12.2-16.7)
आर्थिक क्षति
25.5 (18.0-34.7)
0.67% (0.47-0.91)

25. तमिलनाडु

मृत्यु
84,587 (68,951-102,758)
13.8% (12.2-15.6)
आर्थिक क्षति
2,529.10 (1,856.6-3,310.4)
1.06% (0.78-1.39)

26. तेलंगाना

मृत्यु
35,364 (27,587-45,295)
15.5% (13.7-17.3)
आर्थिक क्षति
1,115.90 (792.7-1,508.2)
0.91% (0.64-1.22)

27. त्रिपुरा

मृत्यु
4,925 (3,944-6,028)
19% (16.5-21.3)
आर्थिक क्षति
91.1 (66.1-121)
1.26% (0.92-1.68)

28. उत्तर प्रदेश

मृत्यु
349,926 (286,430-411,973)
19.5% (16.7-21.8)
आर्थिक क्षति
5,130.30 (3,816.0-6,616.1)
2.15% (1.60-2.77)

29. उत्तराखंड

मृत्यु
16,989 (13,858-20,537)
18.6% (16.2-20.8)
आर्थिक क्षति
526.6 (392.8-682.7)
1.5% (1.12-1.94)

अन्य छोटे केंद्र शासित प्रदेश

मृत्यु
2,688 (2,160-3,358)
13.3% (12.0-14.8)
आर्थिक क्षति
120.3 (85.5-163.7)
0.79% (0.56-1.07)

30. पश्चिम बंगाल

मृत्यु
122,833 (100,633-143,817)
20.8% (18.3-22.8)
आर्थिक क्षति
2,125.30 (1,622.8-2,676.8)
1.26% (0.96-1.59)

स्रोत: लैंसेट में दिसंबर 2020 में प्रकाशित हेल्थ एंड इकॉनोमिक इंपैक्ट ऑफ एयर पॉल्यूशन इन द इंडियन स्टेट्स: ग्लोबल बर्डन ऑफ डिसीज स्टडी 2019, यूनियन हेल्थ एंड फैमिली वेलफेयर,

Slow Murder Continues_Hindi.indd 173 16/07/25 11:25 AM

11
पूंजीगत नुकसान

2022 में वायु प्रदूषण के कारण एक भारतीय की औसत जीवन प्रत्याशा में 3 वर्ष और 6 महीने की कमी आने का अनुमान है। दिल्ली सबसे गंभीर स्थिति का सामना कर रही है, जहां की आबादी की जीवन प्रत्याशा में 7 वर्ष और 9 महीने की गिरावट आने की आशंका है। 28 में से 18 राज्यों की राजधानियों के निवासियों की जीवन प्रत्याशा में राज्य के औसत की तुलना में अधिक गिरावट आने की आशंका है, क्योंकि वायु प्रदूषण भारत में मृत्यु दर का प्रमुख जोखिम कारक है। उदाहरण के लिए, लखनऊ जिले के एक निवासी की जीवन प्रत्याशा में 6 वर्ष और 5 महीने की कमी आ सकती है— जो उत्तर प्रदेश के राज्य औसत (5 वर्ष और 11 महीने) से 6 महीने अधिक है

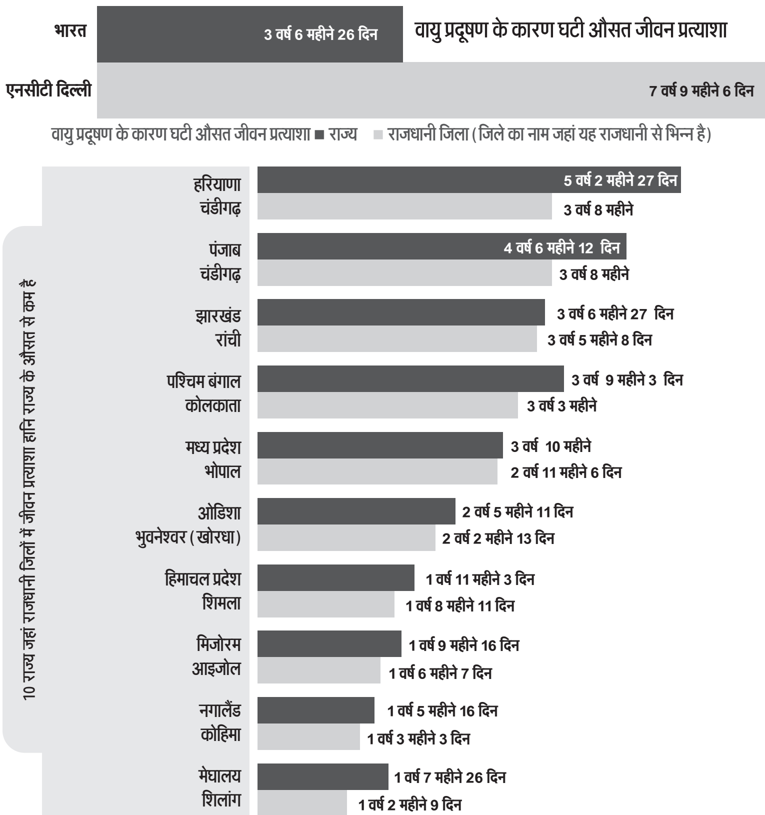

स्रोत: यह विश्लेषण 2024 में अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय में एनर्जी पॉलिसी इंस्टीट्यूट द्वारा जारी जिला-स्तरीय वायु गुणवत्ता जीवन सूचकांक (एक्यूएलआई) पर आधारित है।

सूचकांक पीएम 2 .5 वायु प्रदूषण और जीवन प्रत्याशा के बीच संबंध का अनुमान लगाता है, जिससे उपयोगकर्ता जीवन प्रत्याशा में होने वाले लाभ को देख सकते हैं जो वे अनुभव कर सकते हैं यदि उनका समुदाय विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) पीएम 2 .5 वार्षिक औसत दिशानिर्देश को पूरा करता है।

सभी गणनाएं 2022 के लिए औसत वार्षिक पीएम 2 .5 स्तरों पर आधारित हैं और उनकी तुलना विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुशंसित पीएम 2 .5 स्तरों से की जाती है, जो 5 माइक्रोग्राम प्रति घनमीटर है

Slow Murder Continues_Hindi.indd 174 16/07/25 11:25 AM

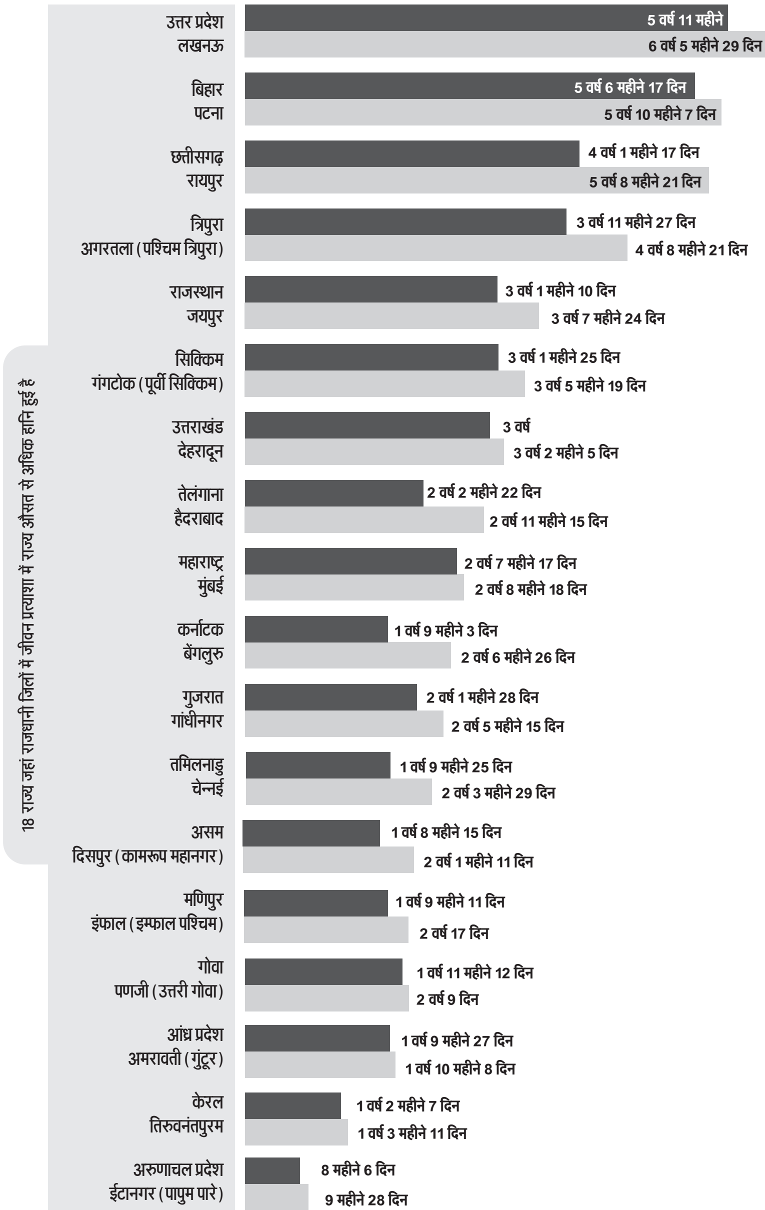
18 राज्य जहां राजधानी जिलों में जीवन प्रत्याशा में राज्य औसत से अधिक हानि हुई है
उत्तर प्रदेश
लखनऊ
5 वर्ष 11 महीने
6 वर्ष 5 महीने 29 दिन
बिहार
पटना
5 वर्ष 6 महीने 17 दिन
5 वर्ष 10 महीने 7 दिन
छत्तीसगढ़
रायपुर
4 वर्ष 1 महीने 17 दिन
5 वर्ष 8 महीने 21 दिन
त्रिपुरा
अगरतला (पश्चिम त्रिपुरा)
3 वर्ष 11 महीने 27 दिन
4 वर्ष 8 महीने 21 दिन
राजस्थान
जयपुर
3 वर्ष 1 महीने 10 दिन
3 वर्ष 7 महीने 24 दिन
सिक्किम
गंगटोक (पूर्वी सिक्किम)
3 वर्ष 1 महीने 25 दिन
3 वर्ष 5 महीने 19 दिन
उत्तराखंड
देहरादून
3 वर्ष
3 वर्ष 2 महीने 5 दिन
तेलंगाना
हैदराबाद
2 वर्ष 2 महीने 22 दिन
2 वर्ष 11 महीने 15 दिन
महाराष्ट्र
मुंबई
2 वर्ष 7 महीने 17 दिन
2 वर्ष 8 महीने 18 दिन
कर्नाटक
बेंगलुरु
1 वर्ष 9 महीने 3 दिन
2 वर्ष 6 महीने 26 दिन
गुजरात
गांधीनगर
2 वर्ष 1 महीने 28 दिन
2 वर्ष 5 महीने 15 दिन
तमिलनाडु
चेन्नई
1 वर्ष 9 महीने 25 दिन
2 वर्ष 3 महीने 29 दिन
असम
दिसपुर (कामरूप महानगर)
1 वर्ष 8 महीने 15 दिन
2 वर्ष 1 महीने 11 दिन
मणिपुर
इंफाल (इम्फाल पश्चिम)
1 वर्ष 9 महीने 11 दिन
2 वर्ष 17 दिन
गोवा
पणजी (उत्तरी गोवा)
1 वर्ष 11 महीने 12 दिन
2 वर्ष 9 दिन
आंध्र प्रदेश
अमरावती (गुंटूर)
1 वर्ष 9 महीने 27 दिन
1 वर्ष 10 महीने 8 दिन
केरल
तिरुवनंतपुरम
1 वर्ष 2 महीने 7 दिन
1 वर्ष 3 महीने 11 दिन
अरुणाचल प्रदेश
ईटानगर (पापुम पारे)
8 महीने 6 दिन
9 महीने 28 दिन

12

2021 में वायु प्रदूषण को प्राथमिक जोखिम कारक मानते हुए 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मौतें

वायु प्रदूषण के कारण 2021 में पांच वर्ष से कम उम्र के कम से कम 1,69,382 बच्चों की मृत्यु हुई। इनमें से लगभग 67 प्रतिशत मौतें केवल चार राज्यों—उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान में हुईं

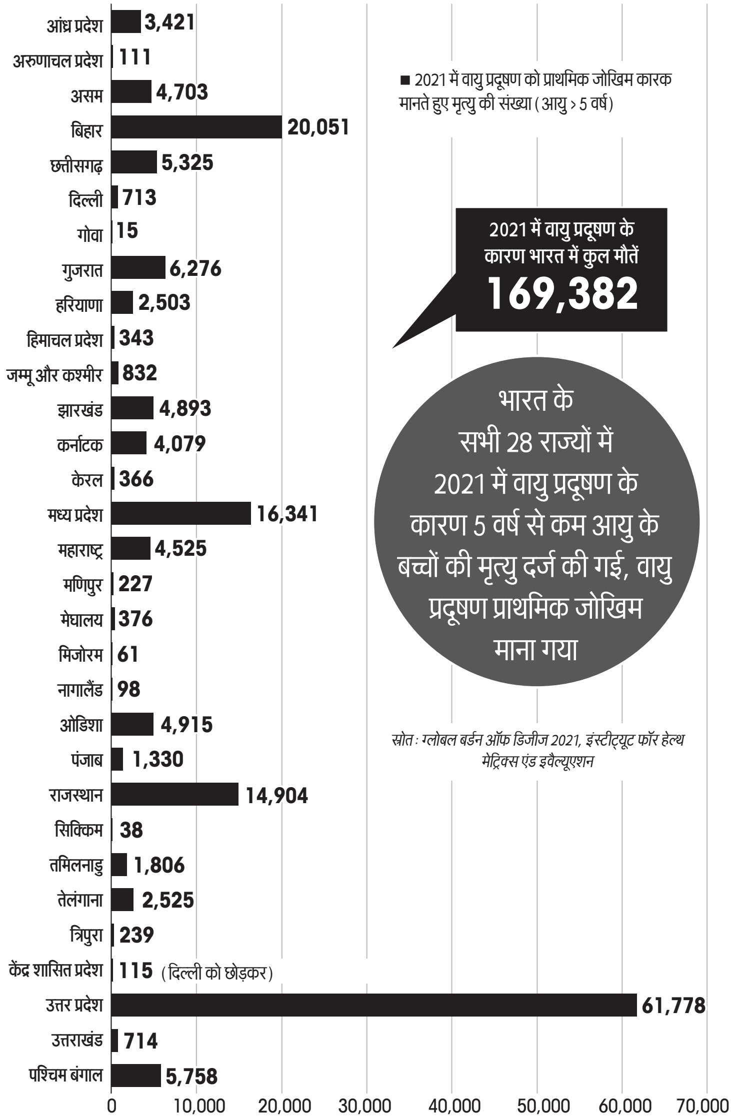

Slow Murder Continues_Hindi.indd 176 16/07/25 11:25 AM

13

2023 के दौरान राज्य की राजधानियों में परिवेशी (एंबिएंट) वायु गुणवत्ता

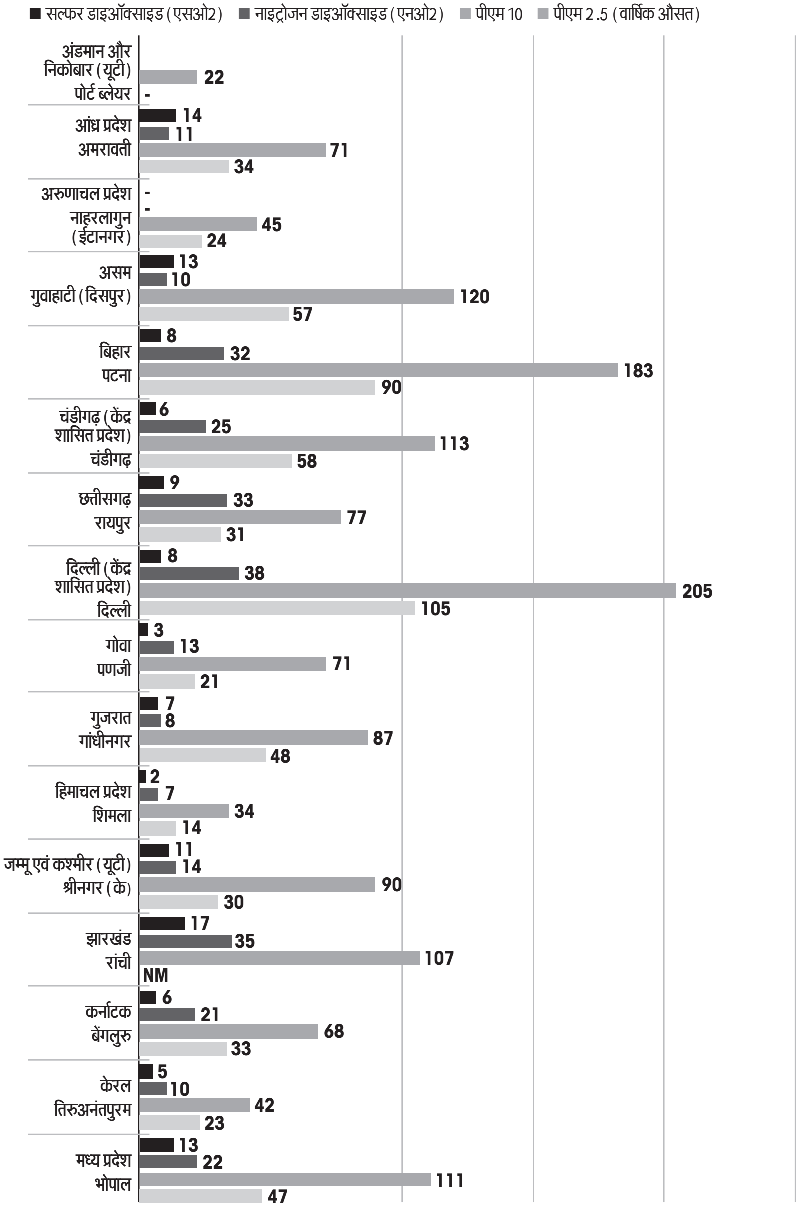

Slow Murder Continues_Hindi.indd 177 16/07/25 11:25 AM

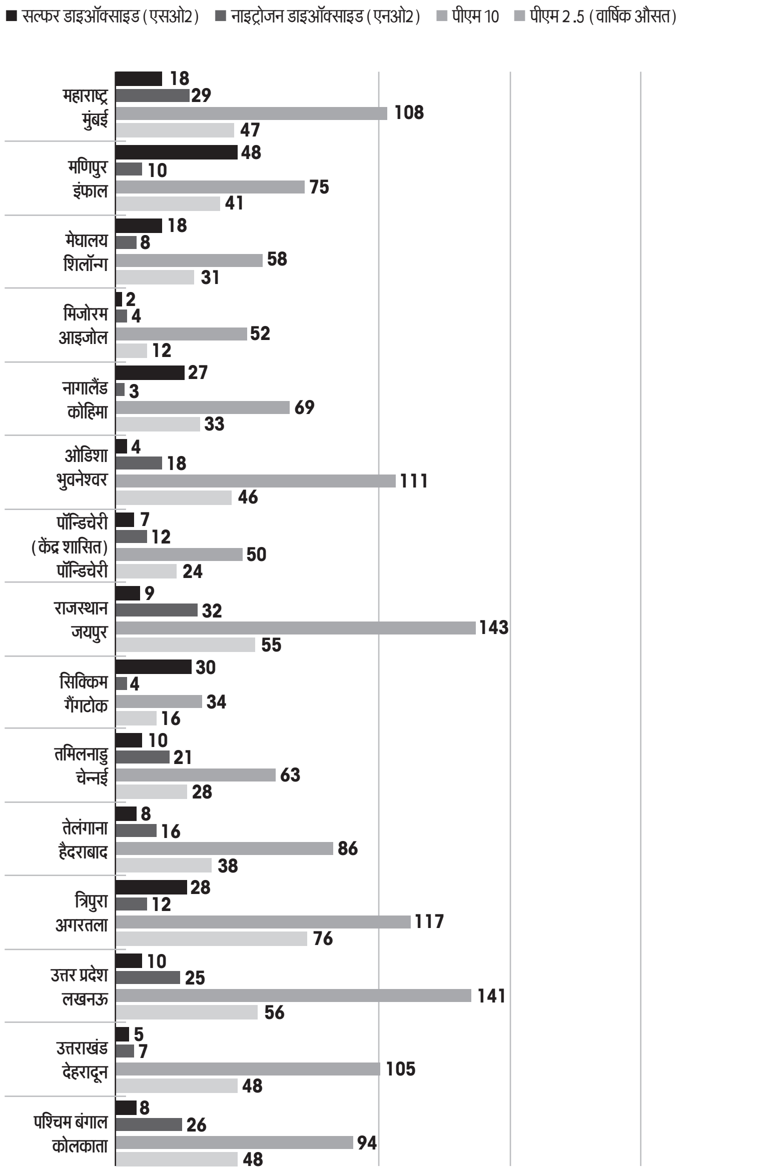

नोट : असम की राजधानी दिसपुर गुवाहाटी का एक उपनगर है जिसका डेटा उपलब्ध है ; नाहरलागुन के लिए डेटा उपलब्ध है जो अरुणाचल प्रदेश के ईटानगर के एक हिस्से के रूप में आता है

स्रोत : केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

Slow Murder Continues_Hindi.indd 178 16/07/25 11:25 AM

"भारत में हर सांस धीरे–धीरे ही सही लेकिन निश्चित रूप से मौत के करीब ले जाती है"

दुनिया की सबसे बड़ी आबादी वाले देश भारत में लगभग हर नागरिक जीवन की सबसे बुनियादी क्रिया यानी सांस लेने के दौरान घातक वायु प्रदूषण के संपर्क में आता है, जो उनके स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डालता है और बीमारियों के बोझ को बढ़ाता है। यह धारणा कि वायु प्रदूषण केवल "बड़े शहरों की समस्या है" अब तेजी से टूट रही है। आंकड़े स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि छोटे शहर और औद्योगिक क्षेत्र अब भारत के वायु प्रदूषण संकट की अग्रिम पंक्ति में हैं। यहां तक कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी वायु प्रदूषण का खतरनाक स्तर दर्ज हो रहा है। एक कड़वा सच यह है कि भारत के लोग प्रदूषित हवा के कारण अपनी जिंदगी को छोटा कर रहे हैं। यह पुस्तक भारत के सबसे बड़े सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट की व्यापक पड़ताल करती है।